# तिरुप्पावै

## आण्डाळ - गोदा देवी

एवं

## आळ्वार दिव्य सूक्तियाँ - 108
## उत्तर के दिव्य क्षेत्र - 11

सुबोध हिन्दी व्याख्या/भावानुवाद समेत ।

आण्डाळ - रंग मन्नार, श्री विल्लिपुत्तूर ।

संकलन कर्ता, व्याख्या एवं अनुवाद

पा. वेंकटाचारी

॥ श्रीः ॥

# तिरुप्पावै- (व्रत प्रबन्ध)

## आण्डाळ - (गोदा देवी)

## एवं

# आळ्वार दिव्य सूक्तियाँ - 108

## उत्तर के दिव्य क्षेत्र (11)

सुबोध हिन्दी व्याख्या/भावानुवाद समेत
(पूर्वाचार्यों की व्याख्या के आधार पर)

यह पुस्तक तिरुमलै-तिरुपति देवस्थान, तिरुपति की "लेखकों को सहाय., योजना" के अंतर्गत, वित्तीय सहायता प्राप्त प्रकाशन ।

चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध से संकलन

संकलन कर्ता, व्याख्या एवं अनुवाद-

**पा. वेंकटाचारी**

**श्री सेवा भारती**

64, गाँधी रोड़, चूलैमेडु,

मद्रास - 600 094 फोन : 420369

**चतु:सहस्र दिव्य प्रबन्ध माला - पुष्प 5**

पुस्तक का नाम : **तिरुप्पावै (व्रत प्रबन्ध) (आण्डाळ - गोदा देवी)**
**एवं आळ्वार दिव्य सूक्तियाँ - 108**
उत्तर के दिव्यक्षेत्र - 11
सुबोध हिन्दी व्याख्या / भावानुवाद समेत
(पूर्वाचार्यों की व्याख्या के आधार पर)

प्रकाशन का उद्देश्य : नालायिर (चतु:सहस्र) दिव्य प्रबन्धम्, 12 आळ्वारों के द्वारा अनुगृहीत दिव्य सूक्तियों के पठन-पाठन का प्रोत्साहन एवं लोकप्रियता का संवर्धन, जिसका मूल आधार भक्ति एवं आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिक, (भक्ति) सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आदान- प्रदान, (तमिळ-हिन्दी) उसका पोषण एवं संवर्धन, जो हमारे देश की भावात्मक राष्ट्रीय एकता का एक प्रबल साधन एवं महत्वपुर्ण शक्ति है।

लेखक/प्रकाशक के संपर्क का पता : **पा. वेंकटाचारी,**
**श्री सेवा भारती,**
64, गाँधी रोड,
चूलैमेडु, मद्रास 600 094.
फोन : 420369

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ / सितंबर 1995

मुद्रक : **श्री मारुति लेसर प्रिंटर्स**
174, पीटर्स रोड, मद्रास - 600 014
फोन : 8522656

मूल्य : **रु. 66.00**

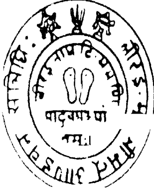
# विषय सूची

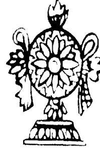
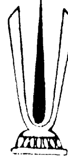
पृष्ठ सं.

## समर्पण

मेरे परम पूज्य
माता पिताजी एवं
परम पूज्य
आचार्यों के
चरणकमलों में
भक्ति-पूर्वक समर्पित
दिव्य पुष्प

पा. वेंकटाचारी





Srimathe Ranga Ramanuja Mahadesikaya Namaha
Srimathe Srinivasa Ramanuja Mahadesikaya Namaha
Srimathe Vedantha Ramanuja Mahadesikaya Namaha
Srimathe Ranganatha Mahadesikaya Namaha

Srimathe Srinivasa Mahadesikaya Namaha
Srimathe Nigamantha Mahadesikaya Namaha
Srimathe Bhagavathe Bashyakaraya Mahadesikaya Namaha

Sri Ranganatha Divyamani Padukabyam Namaha

---

**SRI RANGAM**
Srimad Andavan Ashramam

Camp
Date 26.05.94

श्रीमत् परमहंसेत्यादि
श्रीरंगम् श्रीमदाण्डवन्

## श्रीरंग रामानुज महादेशिकन द्वारा अनुगृहीत
## श्री मुखम्

श्रीमन्नारायण चरण नलिन युगल कैङ्कर्यैकदृष्टिमतां संजातोऽयमद्य रमणीयस्संदर्भः, येन बहुभाषाविशारदेन वेंकटाचार्येण भाषान्तरीकृत गोदानुगृहीत श्रीव्रतप्रबन्धनिरीक्षणेन ।

संहितोंकारावयवमकारार्थ जीवावश्यकर्तव्यता प्रत्यभिज्ञापकमिदं ग्रन्थरत्नम् । कर्त्रीचास्य गोशब्दवाच्य सकलपदार्थदान दक्षिणा गोदा हि । ग्रन्थोऽयं सकलोपनिषत्सारभूतः पूर्वाचार्याभिमतमतानुसारिण्या सरण्या भाषान्तरीकृतश्च निरन्तमत्यन्तं सुखावहो भवत्येव स्वान्तेभ्यः

इत्याशास्य क्रियते
**श्रीरङ्गनाथदिव्यमणिपादुकास्मृतिः**
**श्रीरङ्ग रामानुजयतिना**

श्रीमत् परमहम्सेत्यादि

श्रीरंगम् श्रीमदाण्डवन्

## श्रीरंग रामानुज महादेशिकन द्वारा अनुगृहीत

## श्री मुखम्

शुभगुणों से परिपूर्ण, भक्तिरूप ज्ञान के प्रदाता आळ्वारों की दिव्य-सूक्तियां, भगवान के कल्याण गुणों के अनुभव करने परम भोग्य हैं।

आळ्वार की दिव्य सूक्तियां वेद की अस्पष्ट बातों को भी स्पष्ट रूप से बतानेवाला परम औषध है। वेद में व्यक्त किए जानेवाला भगवान के परत्व को आळ्वारों की दिव्य सूक्तियों के द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं। बारह आळ्वारों के द्वारा मंगलाशासित 108 दिव्य क्षेत्र हैं, जो हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं और उसकी महिमा गाते हैं।

इस प्रकार महत्वपूर्ण दिव्य क्षेत्रों में उत्तर के 11 दिव्य क्षेत्र हैं। इन दिव्यक्षेत्रों की तीर्थ यात्रा के वक्त वहां दर्शन करने जाने वालों की सुविधा एवं दिव्य सूक्तियों के पाठ के लिए श्री वैष्णव संप्रदाय के महत्व एवं आळ्वारों के वैभव के प्रचार में लगे श्री वेंकटाचारी, श्री सेवा भारती आजकल तमिळ एवं हिन्दी में दिव्य सूक्तियों की व्याख्या एवं भावार्थ भी प्रकाशित करने की बात सुनकर श्रीमदाण्डवन बहुत प्रसन्न हैं। इस प्रकार बहुवर्ष हिन्दी के माध्यम से और कई पवित्र कैंकर्य करते हुए दृढगात्र रहने का आशीर्वाद देकर मंगलाशासन अनुग्रह करते हैं - श्रीमदाण्डवन

श्रीमदाण्डवन के आदेशानुसार

**विद्वान माधवाचार्यन्**

**श्रीकार्यम्**

# श्री अहोबिल मठम्

## मु. मद्रास

श्रीमते श्री लक्ष्मी नृसिहा परब्रह्मणे नम:
श्रीमते श्री लक्ष्मी नृसिहा दिव्य पादुका सेवक
श्रीवण् शठकोप श्री नारायण यतीन्द्र महादेशिकाय नम:

## श्रीमुखम्

श्री पार्थसारथी वेंङ्कटाचारी ने श्री वैष्णव संप्रदाय की सेवा में बारह दिव्य-सूरियों (आळ्वार) के वैभव एवं दर्शन हिन्दी में यथोचित प्रकाशित किये हैं, जिससे हिन्दी भाषियों को सफ़लता मिली और वे श्री वैष्णवश्री के परिचित बने ।

अब इनकी यह सेवा बढ रही है । श्री आचार्यजी ग्यारह श्री वैष्णव क्षेत्रों के, जो उत्तर भारत में प्रसिद्ध हैं, श्री आळ्वार मङ्गलाशासन सूक्तियों के हिन्दी परिवर्तन के शुभ कार्य में लगे हुए हैं । इन आळ्वार महात्माओं के मूल पद्य तमिळ् में भी अलग प्रकाशित किए जा रहे हैं ।

इस तरह के ग्रंथों के प्रकाशन से उत्तर भारत की जनता को श्री वैष्णव क्षेत्रों की झलक मिलती और आळ्वार महात्माओं की शोभन कृतियों में श्रद्धा बढ़ने का अवकाश मिलता है ।

भगवान श्री लक्ष्मी नरसिंह स्वामी के अनुग्रह से लोक क्षेम की यह चर्चा सफ़ल बनेगी । इनकी श्रीवैष्णव संप्रदाय की सेवा हमेशा के लिए अटल और सराहनीय रहेगी ।

श्री मदलहियसिंगर के अनुग्रह और नियमन के अनुसार-

14-3-95.

**प.च. गोपालाचार्य**
**श्री अहोबिलमठीय विद्वान**

VEDARTA, RATNAKARA VEDA BHUSHANA
VEDA VACHASPATHI
MAHAMAHIMOPADYAYA AGNIHOTRAM
RAMANUJA THATACHARIAR

Tamilnadu Temple Administration
Board Member

E-1, Sankar Narayana Flats,
57, Koppaiah Street,
Madras - 600 033.

Date : 26-06-95.

# SRIMUKHAM
## TIRUPPAVAI AND AZWAR PASURAMS (SONGS) OF NORTH INDIAN KSHETRAMS

Azwars of South India with their deep God-love, merge themselves in the God. Their experience is a complete one because they merged in Swarupa (Nature), Rupa (Shape), Guna (Quality) and Majesty (Vibhuti) etc., of God. For them life is not material one, but thoroughly divine. They see the world as divine incarnation. They get divine substance in all matters and divinity in all shrines which are worshipped by the people. giving up worldly affairs, they devote their thinking to the divinity and enjoy and spend a divine life.

ANDAL : The foster daughter of Periazwar even in her tender age, forgetting worldly life enjoyed Narayana with all his Avathars. Krishna Avathara is a special one for her enjoyment, because it is a popular one where divinity is enjoyed even by innocent people.

Andal took an episode for her experience, from the Krishna Avathara, where Gopies performed Vratha (Karthyayini Archanam) for getting good husband. Mutually awakening all Gopies, they went to Yamuna, took bath, observed Vratha. It was performed daily for thirty days, the first month of Hemantha Rithu (Margazhi). Awakening and singing of God's name has become main one. Andal adopted this episode for her merging in Krishna Avathara, by taking initiative in awakening others. She takes other Gopies with her who are merged in enjoying the divinity. So divine atmosphere is already there. A new point is awakening Krishna also. According to her thinking, awakening Krishna also is needed for fulfilling the Vratha.

Awakening of God became necessary because she wanted to take him (to Yamuna) to fulfill the Vratha. From theological point of view they wanted God to be vigilant. This episode inspired her to bring him to mind for the divine enjoyment.

Thiruppavai is a boon for Humanity in a simple way, bringing ideas of Krishnavatara in our mind. It is an enjoyment also for tender minds.

Awakening child/children is assigned to the ladies because their approach is loving and soft. So Andal pasurams by reading and meditating create Krishna Consciousness in our minds in a soft way.

This commentary of Thiruppavai in Hindi is very simple one, as it comes from real devotee of Krishna. This itself takes us to the Leela of Krishna.

A part of the book presents 108 pasurams of Azwars connected with Divya Desams of North India.

Pasurams of Periazwar, Thirumangaiazwar, Nammazwar, Kulasekara Azwar, Andal and others are included in this. There are 9 + 2 (11) Divya Desams in the North, among the 108 Divya Desams, sung by the Azwars. Azwars as usual utilising the shrines of Divya Desams - enjoy the divinity. Their enjoyment is very wide.

Though the shrines bring to the mind, various avathars of Narayana, it is interesting to note that for Vaishnava Saints, Avathars of Vishnu presents enormous material for their Divine experience.

As they actually enjoy divinity in general through the pasurams, they give importance to the shrines also. Beauty of God, and the beauty of the place attracts Azwars. From this we understand they visited the shrines and enjoyed divinity, which is already there.

Tamilnadu is well known for God-love. Some poets in the beginning praised liberal people, Virtuous person and kings. Later on they also devoted all their energy in praise of God and God only. Each and every pasuram serves as springs of divinity. As they renounced material world and their love centralised in Divinity, it gives the picture of Avathars and enjoying principles of Avathars. Ofcourse Azwar pasurams are in Tamil Language and Tamil scripts.

The great and ardent devotee Sri P. Venkatachari whose life is devoted for the propagation of God-love through the Azwar pasurams/songs presents the pasurams/songs in Hindi Language. Transliteration of Tamil pasurams — brings pure, original Rasa of the Azwars for readers easily.

**Ramanuja Thathachariar**

**ஔவை நடராசன்**
துணைவேந்தர்
தமிழ் பல்கலைக்கழகம், வாகை
தஞ்சாவூர் - 613 005

தொலைபேசி
அலுவலகம் : 20040
இல்லம் : 21741
தொலைநகலி
04362-20040

# பல்லாண்டு

நெடுங்காலமாகப் பாரத நாடு முழுவதும் பரந்தோங்கி வளர்ந்த மாட்சியுடையது வைணவ சமயமாகும். உயர்வற மதிநலம் அருளப்பெற்ற ஆழ்வார் பெருமக்களின் அருளிச் செயல்கள் வைணவ சமயத்துக்கு வாய்த்த பெருநிதியமாக - வைத்த மாநிதியாக மிளிர்கின்றது. வேதத்துக்கு வித்தாகவும் தெளியாத மறைநிலங்களைத் தெளிவிக்கும் திறவுகோலாகவும் அருளிச் செயல்கள் அமைகின்றன.

நாடோறும் வழிபாடாற்றியதோடு, உலகினில் தோற்றமாய் நின்று பெருமான் திருக்காட்சி வழங்கும் திருப்பதிகளுக்குச் சென்றும், சேவித்தும், நினைந்தும், ஆழ்வாராதியர் பாசுரத் தேன் மழை பொழிந்தனர். ஆழ்வார்களால் மங்களாசாசனம் பெற்ற திருப்பதிகளை நூற்றெட்டென அறுதியிட்டு நூற்றெட்டுத் திருப்பதி யந்தாதி பாடிவழங்கிய பெருமை, பிள்ளைப் பெருமாள் பிரானையே சாரும். கோவர்த்தனம், பிருந்தாவனம், ஆயர்பாடி எனச்சில திருப்பதிகளையும் சிலர் சேர்த்துக் கருதுவதுண்டு.

பிராட்டியாருக்குப் பெரிதும் உகந்த இலந்தைப் பழங்களால் பெயர் பெற்றது வதரிவனம். பக்தன் நெஞ்சைப் பாகாய் உருக்கும் பாசுரங்களைத் தமிழறிந்தார் மட்டுமன்றித் தரணியர் அனைவரும் அறிந்து நெகிழ வேண்டும் என்றும் தணியாப் பெருங்கருணை பூண்டவர் நம் விற்பன்னர் வேங்கடாசாரியார் ஆவர். இந்தி மொழிக் கல்வி, கலை பரப்பும் பணிமன்றமாகப் பல்லாண்டுகள் அருந் தொண்டாற்றி வரும் கல்வி நிலையத்தில் செயலாளராக நற்பணி யாற்றிய பெருமை பூண்டவர் திருமிகு. பா. வேங்கடாசாரியார் அவர்கள். ஆழ்வார் பாசுரங்களை இந்தி மொழியில் ஒலி பெயர்த்தும், மொழி பெயர்த்தும், பொருளுரைத்தும் வடநாட்டுத் திருப்பதிகளுக்குரிய பாசுரங்களைத் தொகுத்து வெளியிடுகின்றார்.

இந்தியக் குடியரசுத் தலைவர், பன்மொழிப் புலமையும், பல்கலை வளமையும் ஒருங்கே வாய்ந்த மேதகு சங்கர் தயாள் சர்மா நம் நூலாசிரியரைப் பாராட்டி மகிழ்ந்திருப்பது ஆசிரியருக்கு வாய்த்த பேறாகும். வாசித்தும், கேட்டும், வணங்கி வழி பட்டும், பூசித்தும், திருமால் நெறிக்கு நூலாலும் தொண்டாற்றிப் பொழுது போக்கும் நுண்ணறிவாளர், வேதாந்த வித்தகர் பா. வேங்கடாசாரியார் அவர்களைப் பாராட்டிப் பல்லாண்டு மொழிகிறேன்.

நாள் : 09.07.1995

**ஔவை நடராசன்.**

**औवै. नटराजन.**
तमिऴ् विश्वविद्यालय,
उप कुलपति
तमिऴ् विश्वविद्यालय,
वाहै, तंजाऊर - 613 005.

फोन : का. 20040
नि. 21741.
फेक्स - 04362 20040

# पल्लाण्डु
## जय विजयी भव

भारत भर, चिर काल से, व्यापक एवं चरम सीमा तक वर्धित, वैष्णव-धर्म अत्यन्त महिमा संपन्न धर्म है। अज्ञान (संशय, विपरीत ज्ञान) का निरसन कर ज्ञान - भक्ति का अनुग्रह प्राप्त आऴ्वार महापुरुषों के द्वारा अनुगृहीत दिव्य-सूक्रियां, वैष्णव धर्म के लिए प्राप्त निधि है। निक्षेप - वित्त के रूप में महत्वपूर्ण है। वेद के बीज रूप होने के साथ २, वेद की जो बातें अस्पष्ट थीं, (जिनको स्पष्ट समझ नहीं पाते थे) उन सब को स्पष्टीकरण करनेवाली कुंजी के रूप में, आऴ्वार द्वारा अनुगृहीत दिव्य सूक्तियां उपयुक्त पायी जाती हैं।

प्रतिदिन भगवान की भक्ति पूर्वक आराधना करने के साथ--साथ, जगत में अवतरित होकर, अर्चारूपी भगवान जहाँ-जहाँ दिव्य दर्शन देते हैं, उन दिव्य देशों में पहुंचकर, भगवान के दर्शन कर, ध्यान एवं मनन कर, आऴ्वारों ने दिव्य सूक्तियों की मधु - धारा वरसायी है।

आऴ्वारों के द्वारा मंगलाशासन प्राप्त दिव्य क्षेत्रों का (तिरुप्पति) एक सौ आठ (108) निर्धारित कर, नूर्ट्रेट्टुत् (108) तिरुप्पतियन्दादि गाकर प्रदान करने का श्रेय पिळ्ळै पॆरुमाळ् पिरान् को ही प्राप्त है। गोवर्धन, बृन्दावन, आयरपाडि आदि कतिपय दिव्य क्षेत्रों को भी कुछ लोग इनके अन्तर्गत सम्मिलित कर बताया करते हैं ।

महालक्ष्मी को बहुत प्रिय बेर (बदरि फल) से बदारिवन प्रसिद्ध है।

पाठ करनेवालों/अध्ययन करनेवालों के मन को चाशनी के रूप में पिघलानेवाले दिव्य सूक्तियों को, तमिऴ् भाषा भाषियों के अलावा "धरणी के समस्त जन, इसका ज्ञान (जानकारी) प्राप्त कर द्रवीभूत हों," इस विचार से कभी न मंदित करुणा से भूषित विद्वान हैं, श्री. पा. वेंकटाचारी।

हिन्दी भाषा शिक्षण, एवं संस्कृति का प्रचार करनेवाली उत्तम सेवा कार्य में कई वर्षों से कार्यरत शिक्षण संस्था में सचिव की हैसियत से उत्तम सेवा कर प्रतिष्ठा प्राप्त हैं श्री. पा. वेंकटाचारी।

वे आळ्वार की दिव्य सूक्तियों को हिन्दी भाषा में लिप्यन्तरित एवं अनुवाद कर, व्याख्या कर, उत्तर के दिव्य क्षेत्रों की दिव्य सूक्रियों का संकलन कर प्रकाशित कर रहे हैं।

भारत के राष्ट्रपति ने बहुभाषा विज्ञ एवं कई कला वैभव से एक साथ संपन्न महामहिम शंकर दयाल शर्मा जी बडी प्रसन्नता के साथ हमारे ग्रन्थकार की सराहना की है। यह हमारे ग्रंथकार को प्राप्त बडा सौभाग्य है।

अध्ययन कर, (पाठ कर) श्रवण कर, प्रणति कर, भक्ति के साथ आराधना कर, तिरुमाल भक्ति मार्ग के लिए, अपने ग्रंथों से, उत्तम सेवा करते हुए अपना समय बितानेवाले, अभिज्ञ श्रेष्ठ ज्ञानवाले, वेदान्त वित्तहर (पांडित्यपूर्ण ज्ञानी) पा. वेंकटाचारी को बधाई देकर पल्लाण्डु - बहुवर्ष जय विजयी भव - शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

09.07.1995.

**औवै नटराजन**
उप कुलपति
तमिळ् विश्वविद्यालय,
तंजाऊर

पा. वेंकटाचारी

64, गांधी रोड, चूलैमेडु,
मद्रास - 600 094
फोन : 420369

# लेखक का निवेदन

## तिरुप्पावै (श्री व्रत प्रबन्ध)

## आण्डाळ (गोदा देवी) द्वारा अनुगृहीत एवं

## आळ्वार दिव्य सूक्तियां - 108

(आळ्वार द्वारा मंगलाशासित उत्तर के दिव्य क्षेत्र (11) संबन्धी) सुबोध हिन्दी व्याख्या/भावानुवाद समेत। (पूर्वाचार्यों की व्याख्या के आधार पर। (चतुः सहस्र) नालायिर दिव्य प्रबन्धम् से संकलित)

भगवान की यह परम कृपा है कि धर्म के क्षीण होने पर उसकी संस्थापना एवं सुरक्षा के लिए वे समय-समय पर इस संसार में अवतार लेते हैं।

इसके अलावा, भगवान के संकल्प के अनुसार, समय-समय पर लोगों के आत्मोत्थान के लिए, उचित उपदेश देकर मार्गदर्शन करने, अवतार पुरुष भी इस संसार में अवतरित होते हैं।

ऋषि, मुनिगण, संत, महात्मा, आळ्वार, (दिव्य सूरि) आचार्यगण आदि इस कोटि में आते हैं। 12 आळ्वारों का अवतार दक्षिण भारत में हुआ। इनके अवतार के संबंध में श्रीमद्भागवत पुराण में भी उल्लेख है।

इसकी मान्यता है कि, इन बारह आळ्वारों में से कुछ सातवीं/आठवीं शताब्दी में रहते थे और कुछ इससे कुछ शताब्दी पहले। संप्रदाय के अनुसार यह मान्यता है कि कुछ आदि आळ्वारों का आविर्भाव कलियुग के आरम्भ काल में ही हुआ था।

ये आळ्वार भगवान के अर्चावतार में विशेष रूप से आकृष्ट थे और उसमें अपने भगवान का साक्षात् दर्शन पाते थे। भक्त एवं मानव समाज का कैंकर्य (सेवा) एवं भगवान के कल्याण गुणों की अनुभूति - भक्ति ही इनके जीवन का परम पवित्र लक्ष्य रहा।

वे अपने संचार के दौरान, विभिन्न क्षेत्रों के मंदिरों में भगवान के दर्शन करके, उनका मंगलाशासन (मंगलगान) करते थे। भगवान के दर्शन की अनुभूति से उनके मन में भक्ति की जो भावात्मक लहरें उठीं, वे ही भगवान के संकल्प से

तमिऴ् भाषा की सुन्दर गीतियों में (पाशुरंगळ) उनके श्रीमुख से प्रकट हुई । ये कुल 4000 पाशुरंगळ् (दिव्य सूक्तियां) चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्धम् में संगृहीत हैं । बारह आळ्वारों द्वारा मंगलाशासित क्षेत्रों को दिव्य देश कहने की परंपरा है ।

भारत में इस प्रकार 108 दिव्य देश हैं, जिनमें 11 दिव्य देशों को 'उत्तर के दिव्य देश' कहने का संप्रदाय है । इनमें 7 दिव्य देश (1) तिरुक्कण्डङ्कडिनगर (देवप्रयाग) (2) तिरुप्पिरिदि (जोषी मठ) (3) बदरिकाश्रम् (4) अयोध्या (5) नैमिषारण्य (6) मथुरा और (7) तिरुआयरपाडि (गोकुलम) उत्तर प्रदेश में; एक -द्वारका, गुजरात में और एक शालग्राम, नेपाल में स्थित है । इन नौ दिव्य देश संबन्धी दिव्य सूक्तियाँ लगभग 150 हैं । तिरुप्पति (तिरुवेंकटम) और शिंगवेळ्कुंड्रम (अहोबिलम) आंध्र में हैं । इन दो दिव्य देश संबन्धी दिव्य सूक्तियाँ लगभग 214 हैं ।

आळ्वारों की सूक्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से लेकर भारत के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच भक्ति, आध्यात्मिकता, साहित्य एवं संस्कृति का आदान - प्रदान होता आ रहा है । इससे भारत की आध्यात्मिक सांस्कृतिक, भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता सुदृढ बनी है, जिसका आधार प्रेम एवं भक्ति है ।

## प्रेरणा स्रोत

मेरे दास के पूज्य आचार्यवर विश्व-विख्यात श्रीमदाण्डवन, तिरुक्कुडन्दै श्रीमत्-वेदान्त रामानुज महादेशिकन स्वामीजी के श्री चरणों में आत्म-समर्पण (भरसमर्पण) का सौभाग्य, उनकी परम कृपा से प्राप्त कर, उनके अनुग्रह का पात्र बना । उसी प्रकार संप्रति श्रीमदाण्डवन श्रीरंग रामानुज महादेशिकन का अनुग्रह भी बराबर प्राप्त हो रहा है ।

आचार्यों के परम पवित्र उपदेश एवं प्रेरणा के अलावा, समय-समय पर उनके प्रवचन सुनने से आळ्वार संतों की दिव्य सूक्तियाँ, नालायिर दिव्य प्रबन्धम के गहरे अध्ययन में विशेष रुचि, निष्ठा एवं सफलता प्राप्त हुई । आचार्यों के श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ।

इसी बीच, मैं कई भक्त एवं विद्वान मनीषियों के सत्संग एवं नालायिर (चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्धम्) संबन्धी उनके पवित्र एवं उत्तम ग्रन्थों (व्याख्या आदि) के अध्ययन से इस सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त कर सका । उत्तर

के दिव्य क्षेत्र संबन्धी 108 दिव्य सूक्तियों के हिन्दी भावानुवाद को विद्वान श्री टी.ई. रंगनाथाचारियार ने पुनरीक्षण कर उत्तम मार्गदर्शन दिया, उनके प्रति और उपरोक्त सभी विद्वान, मनीषी एवं ग्रन्थकारों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

तिरुप्पावै व्याख्या में स्वापदेश का अंश संप्रति श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन (श्रीमत् रंग रामानुज महादेशिकन) के द्वारा आकाशवाणी में दिये गए प्रवचन माला से उद्धरित हैं। आकाशवाणी की यह सेवा स्तुत्य है और उनके प्रति बड़ा आभारी हूँ।

आजकल भी आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आदान प्रदान का राष्ट्रीय महत्व है। प्रेम एवं भक्ति केन्द्रित होने से, इसका महत्त्व और भी बढ़ता है। यह भगवान का संकल्प एवं कृपा है कि उपरोक्त आवश्यकता एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिए आऴ्वार, मेरे पूज्य आचार्य और पूर्वाचार्यों का एवं श्रीरंगम परियाश्रम के संप्रति श्रीमदांडवन, श्रीमत् रंगरामानुज महादेशिकन का अनुग्रह, मेरे पूज्य माता-पिता, भक्तों तथा विद्वान मनीषियों के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। यह भगवान की अपनी है। आऴ्वार की दिव्य-वाणी है। भगवान इस दिशा में दास का कैंकर्य लेकर अनुग्रह कर रहे हैं।

इस पुस्तक में (1) तिरुप्पावै (श्री वृत प्रबन्ध) की 30 दिव्य सूक्तियों की सरल हिन्दी व्याख्या एवं (2) प्रत्येक सूक्ति के स्वापदेश का संक्षिप्त उल्लेख है। ऊपर उल्लिखित उत्तर के 11 दिव्य क्षेत्रों से संबन्धित आऴ्वार द्वारा मंगलाशासित 108 दिव्य सूक्तियों (संकलन) का हिन्दी भावानुवाद है।

मूल दिव्य सूक्तियां (पाशुरंगळ्) देवनागरी लिपि में लिप्यंतरित है। चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध का संक्षिप्त विहंगावलोकन (आऴ्वारों का संक्षिप्त परिचय (आऴ्वारों के द्वारा अनुगृहीत प्रबन्धों के विवरण सहित) एवं आंडाळ का वैभव भी (संक्षेप में) इसमें सम्मिलित है।

इससे हिन्दी से परिचित विभिन्न भाषा-भाषी आऴ्वारों की दिव्य सूक्तियों (पाशुरों) का परिचय प्राप्त कर उसका अनुसन्धान कर सकते हैं। आऴ्वारों की दिव्य सूक्तियों का अध्ययन, चिंतन, मनन एवं उसकी अनुभूति शांति प्रदायक है। आध्यात्मिक और भौतिक विकास एवं उन्नति के साथ-साथ समस्त मानव समूह के आत्मोज्जीवन का उत्तम राजमार्ग है। सर्वत्र भगवान का अनुग्रह प्राप्त कर ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगे।

यह साहित्य-पुष्प मेरे परम पूज्य माता पिता एवं परम पूज्य आचार्यवर के चरणारविन्द में समर्पित कर दंडवत प्रणाम करता हूँ और आळ्वार एवं आचार्यों के प्रसाद के रूप में यह प्रिय भक्त पाठकों की सेवा में समर्पित है।

यह एक महत्वपूर्ण विषय है कि इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए तिरुमलै-तिरुपति देवस्थान, तिरुपति की ''लेखकों को वित्तीय सहायता योजना'' के अंतर्गत, वित्तीय सहायता प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। इस दिशा में उनकी अमूल्य सहायता, समर्थन और प्रोत्साहन के लिए बड़ा आभारी हूँ।

श्री मारुति लेज़र प्रिंटर्स, मद्रास के स्वामी और दूसरे कार्यकर्ताओं एवं श्री.पी.आर. रुकमाजी राव ''अमर'' के सक्रिय सहयोग से इसकी सुन्दर छपाई हुई है, जो धन्यवाद के पात्र हैं।

इस संबंध में जिन्होंने आवश्यक सभी सहायता पहुँचाकर एवं सुझाव देकर मार्ग-दर्शन दिया, उनके प्रति हमेशा आभारी रहूँगा। प्रार्थना है कि इस पवित्र भगवत् कैंकर्य - सेवाकार्य में, आवश्यक मार्गदर्शन, सहायता सलाह एवं सहयोग देकर अनुगृहीत करें। दास आपका आभारी है।

भगवान हैं सब के, और सब हैं भगवान के।

**पा. वेंकटाचारी**
सितंबर, 1995
मद्रास-17.

सेवा में,
**पा. वेंकटाचारी**

**वि.सू.**

तिरुप्पल्लाण्डु एवं तिरुप्पळ्ळिऎऴुच्चि द्वितीय संस्करण में जोड़ा जा रहा है।

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः

# नालायिर दिव्य प्रबन्धम्
# (चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध)

## विहंगावलोकन

लक्ष्मीनाथ समारम्भां नाथ यामुनमध्यमाम् ।
अस्मादाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध, पाँचवें अध्याय का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है-

कृतादिषु नरा राजन् कलाविच्छन्ति संभवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः ॥
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महाभागा प्रतीची च महानदी ॥

**उपरोक्त संस्कृत श्लोक का भावः-**

''कलियुग में द्राविड देश में स्थित ताम्रपर्णी, वैगै, पयस्विनी (पालारु), कावेरी आदि प्रसिद्ध एवं पवित्र महानदियों के तट पर, कई भगवद्भक्तों का अवतार होगा, जिनके द्वारा भक्ति का व्यापक प्रचार व प्रसार होगा।''

यह सर्वविदित है कि भारतवर्ष में विष्णु - भक्ति की परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है । प्राचीन भारतीय साहित्य, इसका प्रमाण है । भारत में प्राचीन काल से भक्ति की भावना, देश की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं देश को जोड़नेवाली प्रभावशाली शक्ति रहती आयी है, आज भी है और आगे भी रहेगी । इस दिशा में तमिऴनाडु का योगदान, महत्त्वपूर्ण है । प्राचीन काल से दक्षिण भारत, विशेष रूप से तमिऴनाडु कई भगवद्भक्तों एवं आचार्यों का अवतार स्थल रहा है । इन पूज्य भक्तों में 12 वैष्णव भक्त आऴ्वार (दिव्य सूरि) के नाम से विख्यात हैं । भगवत् प्रेम - सागर में निमग्न होने के कारण ये आऴ्वार कहलाए जाते हैं । (आऴ्वार तमिऴ शब्द है) ये भगवान के अनन्य भक्त हैं । ये अपने जीवन-काल में भक्ति

व प्रपत्ति के द्वारा भगवान की दिव्य अनुभूति प्राप्त करके, अपने जीवन काल में ही भगवान के दिव्य दर्शन प्राप्त कर सके। परंपरागत स्रोतों से ही हमें इन आळ्वारों की जीवनियाँ उपलब्ध होती हैं। इनका जन्म विविध जातियों में होने पर भी वास्तव में ये ही वैष्णव सिद्धान्त एवं धर्म को प्रस्तुत करनेवाले हैं। ये सब आळ्वार ईश्वरत्व प्राप्त श्रेष्ठ भक्त कवि हैं।

प्राचीन तमिळ् साहित्य इसका प्रमाण देता है कि आळ्वारों के काल के पहले भी यहाँ तमिळ्नाडु में विष्णु-भक्ति की परम्परा थी।

जहाँ उपनिषदों में प्रधानतः ज्ञान-मार्ग का प्रतिपादन है, गीता में कर्म-मार्ग की श्रेष्ठता प्रकट की गयी है, वहाँ आळ्वारों के अनुगृहीत दिव्य प्रबन्ध में, भक्ति मार्ग का प्रतिपादन हुआ है, जिसका मूल वेद है। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति - मार्ग इसके अन्तर्गत हैं। इन्होंने कोई नया पंथ या मार्ग नहीं चलाया; भारत की प्राचीन परम्परा के ऋषि - मुनियों का ही अनुकरण किया।

इन्हें भगवान की निर्हेतुक कृपा से, स्वभावतः वैराग्य, ज्ञान आदि प्राप्त हुए और भक्त बनकर भगवान का मंगलाशासन (स्तुति) करते थे। भगवान के दर्शन तथा तज्जनित, इनकी भक्तिभावनाएँ, इनके हृदय से सुन्दर तमिळ् भाषा की गीतियों में अवशात् प्रवाहित हुई। ये कुल चार हजार ''पाशुरंगल'', (''पाशुरंगल'' तमिळ् शब्द है - दिव्य सूक्तियाँ) 'नालायिर (चतुः सहस्र) दिव्य प्रबन्धम्' में संगृहीत हैं। इनमें कुल 24 प्रबन्ध हैं। यह द्राविड-वेद एवं द्रविडोषनिषद के नाम से भी जाना जाता है।

दिव्य प्रबन्ध को वेद का अनुवाद समझना गलत है। यह तो वेद, भारतीय वेदान्त का सार एवं स्वाभावतः सनातन तत्व की अनुभूति से प्रेरित, श्रेष्ठ भगवद्भक्तों के मानसिक उत्थान, आनन्द तथा आत्मज्ञान का प्रतिबिंब है। ये श्रीमन्नारायण को ही एकमात्र सनातन तत्व मानते थे।

आळ्वार भगवान के शोभा प्रदायक विभिन्न अंश - सुदर्शन, शंख (पांचजन्य) गदा, कौस्तुभ, श्रीवत्स एवं वैजयन्ती आदि के प्रतिरूप अर्थात् आचार्य स्वामी देशिकन के शब्दों में, भगवान के अभिनव अवतार माने जाते हैं।

बारह आळ्वारों के शुभनाम, उनका आविर्भाव (जन्म, स्थान, नक्षत्र, अंश-भगवान का) आदि से संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारी और उनके द्वारा अनुगृहीत दिव्य प्रबन्धों का नाम एवं सूक्तियों की संख्याओं का विवरण आगे दिया जाता है।

नालायिर (चतुःसहस्र) दिव्य प्रबंधम् चार भागों में विभक्त है - इसका विवरण नीचे दिया जाता है।

## 1. मुदलायिरम्

1) पॅरियाळ्वार् तिरुमॉळि
2) तिरुप्पावै
3) नाच्चियार् तिरुमॉळि
4) पॅरुमाळ् तिरुमॉळि
5) तिरुच्चन्द विरुत्तम
6) तिरुमालै
7) तिरुप्पळ्ळि ऍळुच्चि
8) अमलनादि पिरान्
9) कण्णिनुण् चिरुत्तांबु

कुल सूक्तियाँ 947

## 2. पॅरिय तिरुमॉळि

1) पॅरिय तिरुमोळि
2) तिरुक्कुरुन् तांडकम्
3) तिरुनॅडुन् तांडकम्

कुल सूक्तया 1134

## 3. तिरुवाय् मोळि - कुल सूक्तियाँ - 1102

## 4. इयर्प्पा

1) मुदल् *तिरु अन्दादि
2) इरंडान् तिरुअन्दादि
3) मून्ड्रान् तिरु अन्दादि
4) नान् मुहन् तिरु अन्दादि
5) तिरु विरुत्तम्
6) तिरु आशिरियम्
7) पॅरिय तिरु अन्दादि
8) तिरुऍळुकूर्ट्रिरुक्कै
9) शिरिय तिरुमडल्
10) पॅरिय तिरुमडल
11) रामानुज नूर्त्तन्दादि कुल सूक्तियाँ 817

चारों भागों की कुल सूक्तियाँ 4000

***तिरु = पवित्र। अन्दादि - तमिळ का एक छंद**

## बारह आळ्वारों का संक्षिप्त परिचय

| क्रम संख्या | आळ्वारों का नाम | जन्म नक्षत्र | महीना | जन्म-स्थान | अंश- श्रीमन् नारायण के आयुध, आभूषण, परिजन आदि का प्रतिरूप |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | पॉयूहै आळ्वार | तिरुवोणम् (श्रवण) | आश्विन | कांचीपुरम (मद्रास के पास) | पांचजन्य नामक - शंख |
| 2. | भूतत्ताळ्वार | श्रविष्टा | आश्विन | महाबलिपुरम (मद्रास के पास) | कौमोदकी नामक - गदायुध |
| 3. | पॅयाळ्वार | शतबिग | आश्विन | मइलापुर - मद्रास | नन्दक - खड्ग |
| 4. | तिरुमळि़शै आळ्वार | मघा | पौष | तिरुमळि़शै (मद्रास के पास) | सुदर्शन - चक्र |
| 5. | नम्माळ्वार | विशाखा | वैशाखा | आळ्वार तिरुनगरि (तिरुनेलवेलि ज़िला) | शेनैनाथन |
| 6. | मधुरकवि आळ्वार | चित्रा | चैत्र | तिरुक्कोलूर (तिरुनेलवेलि ज़िला) | कुमुदन् - गणातिपर |
| 7. | कुलशेखर आळ्वार | पुनर्वसु | माघ | कोल्लिनगर (केरल राज्य) | कौस्तुभ - नील रत्न |
| 8. | पॅरियाळ्वार | स्वाति | ज्येष्ठ | श्रीविल्लिपुत्तूर (कामराजर ज़िला) | श्री गरुड |
| 9. | आंडाळ | पूर्वफालगुनी | आषाढ | श्रीविल्लिपुत्तूर (कामराजर ज़िला) | भूमि देवी |
| 10. | तॉण्डरडिप्पॉडि आळ्वार | ज्येष्ठा | मार्गशीर्ष | तिरुमंडंगुडि (तंजाऊर ज़िला) | वैजयन्ती वनमाला |
| 11. | तिरुप्पाणाळ्वार | रोहिणी | कार्तिक | तिरुउरैयूर (तिरुच्चि ज़िला) | श्रीवत्स |
| 12. | तिरुमंगै आळ्वार | कृत्तिका | कार्तिक | तिरुवालि (नागप्पट्टणम ज़िला) | शार्ङ्ग - धनुष |

## आळ्वारों से अनुगृहीत दिव्य प्रबन्धों का विवरण

| क्रम संख्या | आळ्वारों का नाम | अनुगृहीत दिव्य प्रबन्धों का नाम | दिव्य सूक्तियों की संख्या | कुल |
|---|---|---|---|---|
| 1. | पॊय्है आळ्वार | मुदल् तिरु अन्दादि | 100 | 100 |
| 2. | भूतत्ताळ्वार | इरण्डान् तिरु अन्दादि | 100 | 100 |
| 3. | पॆयाळ्वार | मून्राम् तिरु अन्दादि | 100 | 100 |
| 4. | तिरुमळिशै आळ्वार | 1. नान्मुहन् तिरु अन्दादि | 96 | 216 |
| | | 2. तिरुच्चन्द विरुत्तम् | 120 | |
| 5. | नम्माळ्वार | 1. तिरुविरुत्तम् | 100 | 1296 |
| | | 2. तिरु आशिरियम् | 7 | |
| | | 3. पॆरिय तिरु अन्दादि | 87 | |
| | | 4. तिरुवाय्मॊळि | 1102 | |
| 6. | मधुरकवि आळ्वार | कण्णिनुण् चिरुत्ताम्बु | 11 | 11 |
| 7. | कुल शेखर आळ्वार | पॆरुमाळ् तिरुमॊळि | 105 | 105 |
| 8. | पॆरियाळ्वार | पॆरियाळ्वार् तिरुमॊळि | 473 | 473 |

| क्र. सं | आळ्वारों का नाम | अनुगृहीत दिव्य प्रबन्धों का नाम | दिव्य सूक्तियों की संख्या | कुल |
|---|---|---|---|---|
| 9. | आंडाळ् | 1. तिरुप्पावै | 30 | 173 |
| | | 2. नाच्चियार तिरुमॉळि | 143 | |
| 10. | तॉण्डरडिप्पॉडि आळ्वार | 1. तिरुप्पळ्ळि एळुच्चि | 10 | 55 |
| | | 2. तिरुमालै | 45 | |
| 11. | तिरुप्पाणाळ्वार | अमलनादि पिरान् | 10 | 10 |
| 12. | तिरुमंगै आळ्वार | 1. पॅरिय तिरुमॉळि | 1084 | 1253 |
| | | 2. तिरुक्कुरुन् ताण्डकम् | 20 | |
| | | 3. तिरुनॅडुन् ताण्डकम् | 30 | |
| | | 4. तिरुएळुकूर्ट्रिरुक्कै | 1 | |
| | | 5. चिरिय तिरुमडल् | 40 | |
| | | 6. पॅरिय तिरुमडल् | 78 | |
| 13. | तिरुवरंगत्तमुदनार | रामानुज नूर्त्तन्दादि | 108 | 108 |
| | कुल प्रबन्ध 24 | | | |
| | कुल दिव्य सूक्तियाँ | | | 4000 |

आळ्वारों ने वेदान्त को रसपूर्ण कलात्मक रूप देकर आम जनता के लिए आकर्षक एवं ग्राह्य बनाया। इस प्रकार, साधारण व्यक्ति को जिन्हें आत्म-ज्ञान एवं वेदांत का परिचय या प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था, उन लोगों की उन्नति के लिए आध्यात्मिकता को मठ से कुटीर में ले आए।

इनकी दृष्टि में, भगवान के प्रिय भक्तों में उच्च - नीच, अमीर - गरीब आदि बातों का कोई महत्व नहीं। प्रदेश या भाषा का भेद भी नहीं उठता, प्राचीनता या नवीनता का अभिमान या दुरभिमान भी नहीं होता, वेश-भूषा का भी कोई महत्त्व नहीं रहता, प्रेम-भक्ति की ही प्रधानता है। इन परम भक्तों ने अपने गीतों के द्वारा देश की जनता को अज्ञान की निद्रा से जगाकर उनके मोह को दूर किया और सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। इन सूक्तियों में कविता, संगीत और भक्ति का सुन्दर सामंजस्य है। यह आळ्वारों का दर्शित भक्ति - मार्ग है।

आळ्वारों ने भगवान को मंदिरों में देखा; मंदिर और क्षेत्र के रूप में देखा; संसार एवं जीवन के रूप में देखा; माता, पिता, पति, पुत्र, मित्र एवं बालक के रूप में देखा। अपने हृदय में भी उसी भगवान के दर्शन किए।

उन्होंने भगवान को अपने प्रेमी के रूप में देखकर प्रेम - गीत गाए। पृथ्वी और आकाश, मेघ और बिजली, नक्षत्र एवं प्रकृति सबमें उन्होंने अपने प्रिय भगवान के दर्शन किए। उन्होंने विभिन्न दिव्य क्षेत्रों की अर्चामूर्तियों के दर्शन करके, उनका मंगलाशासन करते हुए स्तुति की। इस तरह उनके लिए समस्त संसार ही ईश्वरमय हो गया। उनकी दृष्टि में इस जगत का, सुचारू रूप से संचालन करनेवाला वह शक्ति तत्व ही भगवान है - श्रीमन्नारायण है।

भगवान सुन्दरता की ज्योति हैं, धर्म स्वरूप हैं। सर्व व्यापी भगवान के द्वारा सभी लोगों का आपसी गठ बंधन है। इस एकता के आधार पर विकसित होनेवाला चरित्र ही धार्मिक जीवन का उच्च स्तर है। ऐसी भावना एवं चरित्रवान ही बाहरी एवं आंतरिक दृष्टि से ज्ञान-वीर होंगे।

वे ही भगवान के सच्चे सेनानी हैं और अपने लक्ष्य की ओर सतत आगे बढ़ते रहते हैं। उनमें कोई अंधविश्वास या अंधभक्ति नहीं होती। भगवान का स्मरण करते ही अज्ञान एवं भ्रम दूर हो जाते हैं। सुख क्या? दुख क्या? दुख उनकी आत्म-शक्ति एवं भक्ति को आंकने का संयंत्र मात्र है। वे दुख-सुख को समान समझकर सबको भगवान की कृपा मानते थे। इस तरह भक्ति-मार्ग से होकर उन्होंने सतत भगवदानुभव प्राप्त किया।

देश के निवासियों के संस्कार, चिंतन और समाज के विकास पर इन आळ्वारों के व्यक्तित्व का, इनके भक्ति - अभियान का गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ा।

आळ्वारों का भक्ति अभियान, दक्षिण के कोने - कोने में ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत में भी फैला। यह सार्वभौमिक व सर्वव्यापक है। इनके उपदेश संसार के समस्त मानवों के आत्म-ताप को दूर करनेवाले हैं। इनका सिद्धान्त है- भक्ति के क्षेत्र में कोई भय या संकोच की भावना नहीं है। कोई शर्त या व्यापारिक मनोवृत्ति नहीं है- संपूर्ण शरणागति है। प्रेम जनित भक्ति है। जन साधारण अर्थात् लौकिक व्यक्ति के प्रति गहरे प्रेम के कारण भक्ति को ये आळ्वार साधारण मनुष्य आम जनता तक लाए; आध्यात्मिक एवं भक्ति मार्ग को आकाश से भूमि पर ले आए- स्वयं भगवान भक्तों के बीच आया। वे सब भगवान के सब से प्रिय भक्त होते हैं। भगवान भक्तवत्सल हैं।

आळ्वारों ने उपनिषदों में व्यक्त धर्म - सिद्धान्तों के आधार पर संपूर्ण विश्व और उसके मालिक एवं संरक्षक ईश्वर की ऐसी संकल्पना की कि यह सारा विश्व ईश्वरमय है, "सिय राम मय जग जानी" (तुलसीदास) लेकिन ये अर्चावतार की तरफ़ विशेष आकृष्ट थे। इनकी भक्ति - भावना सिर्फ़ सगुण भक्ति या मूर्ति पूजा मात्र नहीं। भक्त की प्रार्थना के अनुसार, यह जीवन्त प्रेम है। ये भगवान को जिस रूप में देखते हैं, या दर्शन करना चाहते हैं, उसी रूप में तत्काल भगवान वहाँ मूर्तिमान होते हैं। ये प्रतीकात्मक भक्त ही नहीं, बल्कि जन्म जात भक्त हैं। इनकी अनुभूतियाँ व भावनाएँ संपूर्ण रूप से आध्यात्मिक एवं भक्ति से प्रेरित हैं। अतः इनके संदेश जन-साधारण तक के लिए अनुकूल, सरल एवं अनुकरणीय हैं। यह विद्वान, शिक्षित और अशिक्षित, अमीर - गरीब, स्त्री - पुरुष, छोटे बड़े सब के लिए ग्राह्य एवं समान हैं। इनमें आध्यात्मिकता है, सेवा भावना है, जो धर्म के जुड़वाँ आदर्श हैं। भगवान की निर्हेतुक कृपा से अज्ञान से विमुक्त होकर, इन्होंने भगवान का साक्षात्कार किया। फलस्वरूप तत्वज्ञान एवं अद्भुत विरक्ति से विभूषित हुए। कल्याणगुण परिपूर्ण भगवान के दर्शन की अनुभूति से, इनके मन में जिस भक्ति की भावात्मक लहरें उठीं वे ही भगवान के संकल्प से तमिळ् भाषा की सुन्दर सूक्तियों (पाशुरंगल) के रूप में इनके श्रीमुख से अवशात् प्रकट हुई अर्थात् भगवान ने स्वयं इनके द्वारा अपने बारे में गवाया।

आळ्वारों की गोष्ठी के श्री मधुरकवि आळ्वार ने और इनके बाद, इस गोष्ठी के अन्तिम आळ्वार तिरुमंगै आळ्वार ने तिरुवाय्मॊऴि आदि दिव्य प्रबन्धों

का व्यापक प्रचार किया । इनके बाद कई वर्षों तक इसका प्रचार लुप्तप्राय हो गया था । पूर्ण रूप से पाठ करनेवाले नहीं के बराबर थे ।

**श्री नाथमुनि**

कुछ समय बाद श्रीमन् नाथमुनि का अविर्भाव हुआ । ये बड़े योगी और विद्वान-मनीषी हैं । ये वैष्णव संप्रदाय के प्रथम आचार्य (पूज्य नम्माळ्वार के बाद) माने जाते हैं ।

ये पूरे देश की यात्रा करके, आखिर अपना जन्म-स्थान वीरनारायणपुरम (काट्टुमन्नार कोयिल, दक्षिण आरकाडु ज़िला) में रहते हुए स्थानीय मंदिर के भगवान के कैंकर्य में लग गए । एक दिन यादवाद्रि (वानमामलै) के कतिपय भक्त अपनी यात्रा के दौरान यहाँ के मंदिर के दर्शनार्थ आ पहुँचे । भगवान के दर्शन करके ये ''आरावमुदे'' से शुरू होनेवाला दशक (तिरुवायमांळि का एक दशक) सुमधुर कंठ से गा रहे थे, (यह दशक कुंभकोणम - क्षेत्राधीश भगवान आरावमुदन् (मूल विग्रह) ''शारंगपाणि'' (उत्सव मूर्ति) का मंगलाशासन है ।

श्री नाथमुनि इनके गान से आकृष्ट हुए । उनके गान पूरा होने तक बड़ी तन्मयता से सुन रहे थे । उनसे पूछने पर वे इस संबंध में कोई अधिक जानकारी दे नहीं सके । इसके अलावा वे और कोई दिव्य सूक्ति (दशक) भी नहीं जानते थे । हाँ, तमिळ् साहित्य की परम्परा के अनुसार दशक की अन्तिम सूक्ति में, जो वे गा रहे थे, कवि का नामांकन व सूक्तियों की कुल संख्या का विवरण रहता है ।

''श्री कुरुकापुरि के श्री शठगोपसूरि से विरचित सहस्रगीति के अन्तर्गत प्रकृत दशक का'' यह सुनकर श्री नाथमुनि बहुत प्रोत्साहित हुए । अब श्री नाथमुनि सहस्रगीति की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से तुरन्त कुरुकापुरि (वर्तमान नामः आळ्वार तिरुनगरि, तिरुनेलवेलि ज़िला) पहुँचे । बड़े प्रयत्न के बाद वहाँ के एक महात्मा ने इनको मधुर कवि आळ्वार रचित शठकोप की स्तुति ''कण्णि नुण् चिरुत्ताम्बु'' का उपदेश दिया और यह सलाह दी कि इस स्तुति का भक्तिपूर्वक 12,000 आवृत्ति पाठ करने से श्री शठकोप सूरी के दर्शन मिलेंगे । इसके अनुसार एकाग्रचित्त होकर भक्तिभाव से श्री नाथमुनि ने ''कण्णि नुण् चिरुत्तांबु'' प्रबन्ध का जप किया । उन्होंने अपनी योग अवस्था में श्री शठकोप सूरी के दर्शन पाए और उनके अनुग्रह से शंख चक्रांकन मंत्र एवं चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध प्रभृति सभी दिव्य प्रबन्धों का, भाव सहित उपदेश प्राप्त किया; साथ-साथ अपेक्षित ज्ञान भी । इस प्रकार इनके प्रयत्न से लुप्तप्राय चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध का उद्धार हुआ । श्रीमन् नाथमुनि उक्त ज्ञान प्राप्त करके

अपने यहां आए और अपने दोनों भांजों और प्रमुख शिष्यों को भी इसका उपदेश दिया। उस वक्त से लेकर उनके और उनके प्रमुख शिष्यों का सारा जीवन इसके प्रचार में लग गया।

इस तरह श्रीमन् नाथमुनि, आळ्वार और आचार्यों के बीच की कड़ी बन गए। उनके शिष्यों ने इस परम्परा को व्यापक रीति से देश के कोने-कोने में बड़े उत्साह से आगे बढ़ाया। श्रीरंगम, तिरुप्पति, कांचीपुरम आदि सभी दिव्य क्षेत्रों में इन आळ्वारों के श्री विग्रह की प्रतिष्ठा करके उत्सव मनाने का क्रम शुरु हुआ, जो 'अध्ययन उत्सव' के नाम से प्रचलित है। सभी दिव्य क्षेत्रों में यह परंपरा अब भी चालू है। (आळ्वारों से मंगलाशासित क्षेत्र एवं क्षेत्राधिपति के मन्दिर भगवान के दिव्य क्षेत्र कहलाए जाते हैं। संप्रदाय के अनुसार समूचे भारत में ऐसे दिव्य क्षेत्र कुल 108 हैं। इनकी सब सूक्तियाँ नालायिर (चतुः सहस्र) दिव्य प्रबन्धम् में संगृहीत हैं। उस वक्त के नियत क्रम के अनुसार आजकल भी दिव्य प्रबन्ध का सस्वर सामूहिक पाठ किया जाता है। इसके अलावा सभी वैष्णव मंदिरों में दैनिक पूजा में भी इसका प्रमुख स्थान है।

तिरुवरंगत्तु अमुदनार रचित रामानुज नूर्त्तन्दादि (108 सूक्तियां) भी नालायिर (चतुः सहस्र) दिव्य प्रबन्धम् के अन्तर्गत है, जिसमें आचार्य पुरुष पूज्य श्री रामानुज का वैभव दर्शित है। गुरु परम्परा के अनुसार आळ्वारों का जीवनकाल कलियुग का आरंभकाल माना जाता है। लेकिन आधुनिक पुरातत्व अनुसंधान करनेवाले सातवीं, आठवीं सदी के बीच मानते हैं।

आळ्वारों का सिद्धान्त है कि भगवान एवं भगवद्भक्तों का कैंकर्य (सेवा) ही सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है, जो इहलौकिक ऐश्वर्य से बढ़कर विलक्षण और स्थिर होता है। उनकी दृष्टि में अर्चावतार मूर्तियाँ दिव्य मंगल विग्रहवाले सभी, शुभ एवं कल्याण गुण परिपूर्ण भगवान है। परमपद निवासी, अवताररूपी या अर्चारूपी भगवान के सभी स्वरूप इनके लिए समान एवं ग्राह्य हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं होता। सब श्रीमान् नारायण के विभिन्न रूप हैं और आळ्वार उनको अपना इष्ट देव मानते हैं।

दिव्य प्रबन्ध के अध्ययन से प्राचीन तमिळ्नाडु की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति उसका प्राकृतिक सौंदर्य, आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय भावना, देश की संपन्नता, विद्या आदि का परिचय मिलेगा, लेकिन गहराई में पैठकर अनुशीलन करने पर, वह ऐश्वर्य मिलेगा, जिसने देश की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अखण्डता को और भी दृढ़ और सार्थक बनाया। श्रीमन् नाथमुनि के बाद

के आचार्य पुरुष पूज्य श्री रामानुज ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन और प्रचार में इस अमूल्य संपत्ति को एक बड़ा महत्वपूर्ण साधन माना। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की एक मुख्य मान्यता है - भगवान का सर्ववस्तु स्वरूपी रहना। आचार्य रामानुज का, उक्त सिद्धान्त के प्रति सक्रिय एवं भक्तिपूर्ण समर्पण भावना, उनके एक शिष्य रामानन्द के जीवन और वाणी के द्वारा उत्तर भारत में भी व्याप्त हुआ तथा वहाँ की जनता को भी अनुप्राणित किया। रामानन्द के कबीर, तुलसी आदि मुख्य शिष्य हुए, जिन्होंने इस दिशा में अपना योगदान दिया।

"भक्ति द्राविड उपजी, उत्तर लाए रामानंद" - कबीर के उपर्युक्त कथन से इस बात की पुष्टि होती है।

आचार्य पूज्य श्री रामानुज के बाद, उनके द्वारा नियुक्त पीठाधीश और उनके बाद आचार्य स्वामी देशिकन, आचार्य मणवाल महामुनि प्रभृति (श्री वरवर मुनि) सभी आचार्यवरों ने, वेद और उपनिषदों के साथ, उसी भांति नालायिर (चतुःसहस्र) दिव्य प्रबंधम का भी अध्ययन किया, अनुसन्धान एवं प्रवचनों में महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने आऴ्वारों के द्वारा बोए गए भक्ति बीज का उत्तम रीति से संरक्षण कर विकसित कराया; और दोनों का (संस्कृत एवं तमिऴ प्रबन्ध) समन्वय करके उभय वेदांत तत्वों का उत्कृष्ट प्रतिपादन किया, इसलिए वे उभय वेदान्ती कहलाए जाते हैं।

संस्कृत भाषा में व्यक्त वेद - उपनिषदों के गूढ़ तत्वों को भक्त आऴ्वारों ने अपनी सुमधुर एवं सरल तमिऴ वाणी में सर्वजनों के लिए सुलभ एवं सुगम बनाया। इसके अलावा भगवान के परत्व से बढ़कर सौलभ्य, वात्सल्य, सौशील्य और कारुण्य को सबके लिए सहज बनाया। "अधिकार संग्रह" में पूज्य स्वामी देशिकन की वाणी है-

"तमिऴ मालैहळ् नाम् तॆळिय ओदित्, तॆळियाद मरै निलंगळ् तॆळिहिन्ड्रोमे।" (इन तमिऴ मालाओं का अध्ययन कर वेद की जो बातें अस्पष्ट थीं, अर्थात् हम समझ नहीं पाते थे, उन सबको स्पष्ट रूप से समझ पाते हैं।)

इस प्रकार नालायिर (चतुः सहस्र) दिव्य प्रबंधम् संतप्त समस्त मानव समूह को आत्मोज्जीवन का मार्ग दिखाता है।

"आऴ्वारों के श्री पादों की जय हो।"

# आण्डाळ
# (श्री गोदा देवी)

## संक्षिप्त परिचय

श्री विष्णु चित्त कुलनन्दन कल्पवल्लीं,
श्री रङ्गराज हरिचन्दन योगदृश्याम् ।
साक्षात् क्षमां करुणया कमलामिवान्यां ।
गोदामनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥

(श्री वेदान्त देशिक कृत 'गोदा स्तुति')

श्री गोदा (आण्डाळ) श्री विष्णुचित्त के कुल नन्दवन में आविर्भूत कोमल कल्पलता सम सुन्दर कन्या है, श्री रंगनाथ रूपी हरिचन्दन वृक्ष के योग से अतिलावण्यमयी और मनोहर दिखायी देती है। यह मूर्तिमती भूमि देवी है और कारुण्यमयी लक्ष्मी है। निराश्रित मैं उस गोदा की शरण लेता हूँ।)

गोदा का आविर्भाव पहले पहल एक छोटी शिशु के रूप में पूज्य पॅरियाळ्वार (विष्णुचित्त) के नन्दवन में, एक तुलसी पौधे की छाया में हुआ। गोदा का यह बडा सौभाग्य रहा कि पॅरियाळ्वार जैसे भक्त उसके पोष्य पिता रहे और वह बहुत जल्दी श्री विष्णुचित्त कुलनन्दन कल्पवल्ली हो गयी। विष्णु भक्तों के लिए आज भी वह कल्पवल्ली है। वह सब तरह की संपत्ति प्रदान करती है। गोदा ने पूमालै (पुष्पमाला) और पामालै (सूक्तिमाला) दोनों से भगवान को आबद्ध कर दिया है।

गोदा का वैभव बड़ा मीठा है। यथावत् विष्णुचित्त बड़े सबेरे फूल चुनने अपने नन्दवन गए। चारों तरफ का वातावरण निस्तब्ध, सुन्दर एवं मनमोहक था। आळ्वार ने एक तुलसी पौधे की छाया में एक अद्भुत दृश्य देखा। उस स्थान पर पवित्र दीप्ति दिखाई पड़ी। उससे चारों तरफ प्रकाश फैल रहा था। निकट पहुँचने पर वहाँ एक लावण्यमयी शिशु को देखा। उसकी अतुल सुन्दरता, दिव्य तेज़ और कांति को देख वे आनन्द विभोर हो गए।

विष्णुचित्त तो निस्सन्तान थे। इसे अपने ऊपर भगवान की कृपा समझकर, वे उस शिशु को अपने यहाँ ले आए जो भविष्य में गोदा नाम से प्रसिद्ध हुई।

आषाढ मास के पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र के दिन यह अयोनिजा गोदा प्रकट हुई। यह माना जाता है कि यह भूमिदेवी का अंश है।

विष्णुचित बड़े प्रेम से गोदा का पालन - पोषण करते थे। गोदा तो दैव प्रकृति की थी। पोष्य पिता परमभक्त विष्णुचित्त के संरक्षण में, बचपन से ही पवित्र वातावरण में पलकर, भक्ति से प्रेरित इसका जीवन मधुर एवं भगवत् प्रेम में लीन रहा।

गोदा भी अपने पिताजी के साथ रोज़ फुलवारी जाती, फूल चुनने में अपने पिताजी की सहायता करती, स्वयं भी पुष्पमालाएँ गूंथती। मालाएँ गूंथते - गूँथते, विष्णुचित्त गोदा को भगवान के कल्याण गुणों को, विशेष रूप से कृष्ण भगवान की लीला संबन्धी घटनाएं सुनाते। दिन-प्रति-दिन भगवान के प्रति गोदा का प्रेम व भक्ति तीव्र होती जाती थी। फलतः गोदा भगवान को ही अपना पति मानने लगी। उसे बराबर यह चिंता होने लगी कि अब तक भगवान ने उसे दर्शन क्यों नहीं दिए। भगवान के योग्य और प्रिय बनना ही उसका एक मात्र लक्ष्य हो गया।

एक दिन विष्णुचित्त कहीं बाहर गए हुए थे। जाने के पहले उन्होंने यथावत् स्थानीय मंदिर के भगवान को समर्पित करने कई पुष्पमालाएँ गूंथकर, टोकरी में तैयार रखी थीं, जो सुन्दर व मनमोहन थीं। गोदा ने टोकरी से मालाएँ निकालकर अपने गले और कुंतल में सजा लिया। मालाओं से सजकर आइने में अपनी सुन्दरता निहारकर वह बहुत आह्लादित हुई। उसका विश्वास दृढ़ हो गया कि वह भगवान रंगनाथ के अनुकूल और पूर्ण रूप से प्रिय लगेगी। तुरन्त उसने पुष्पमालाओं को अपने गले और कुंतल से उतारकर पूर्ववत् टोकरी में रख दिया। कई दिनों तक यह क्रम चालू रहा। लेकिन उसके पिताज़ी इससे अनभिज्ञ रहे।

श्री विष्णुचित्त पुष्पमालाओं को यथावत् ले जाकर मंदिर में भगवान को समर्पित करते थे। मालाओं की अनुपम सुन्दरता और सुगन्ध पाकर, मंदिर के कैंकर्य करनेवालों ने समझा कि यह आळ्वार की पवित्र भक्ति के कारण है। सच्ची बात से वे अनभिज्ञ थे।

रोज़ की तरह, जब एक दिन गोदा पुष्पमालाओं से सजकर, भगवान की प्रेम धारा में बहते हुए, उसके रसास्वादन में मग्न रही, तब श्री विष्णुचित्त वहाँ पहुँच गए। वे इस अनुपम दृश्य को देखकर सन्न रह गए। भगवान के लिए गुंथी मालाएँ गोदा के गले और कुंतल में हैं। उनका यह विचार हुआ कि यह तो पहला दिन नहीं होगा। न जाने कितने दिनों से यह कन्या इस तरह करती आ रही है। वह तो कभी भगवान के प्रति अपचार करनेवाली नहीं रही। क्या इसका काम दोषपूर्ण भी हो सकता है? गोदा के इस व्यवहार से वे अत्यन्त दुखी हुए। इससे गोदा भी दुखी

हुई। उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। विष्णुचित्त ने उसे आश्वासन देकर मीठे शब्दों में उपदेश दिया कि वह आगे ऐसा काम न करे।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है, कि भगवान के प्रति प्रेम के संवेग में, प्रेमिका गोदा अपने प्रेमी की हर वस्तु को अपनी भी समझती थी। गोदा तो अपने को भगवान की प्रेमिका मानने लगी थी। फिर दोष कैसे? प्रेमी और प्रेमिका, भगवान और भक्त ही इसे समझ सकते हैं।

विष्णुचित्त ने दुबारा नन्दवन से फूल चुनकर पुनः मालाएँ गूंथीं। मंदिर गए और भगवान को पुष्पमालाएँ समर्पित की। इन नयी मालाओं से सुसज्जित भगवान के दर्शन यथावत् न रहे। उन्हें कोई कमी लगी। उन्होंने मालाओं में रोज़ की तरह महक और सुन्दरता का अनुभव नहीं किया। वे बड़ी चिंता में पड़ गए। हाँ, वे तो भगवान के प्रति गोदा का विकसित प्रेम, भक्ति और विश्वास की भावना से अच्छी तरह परिचित थे। फिर भी उनके मन में यह विचार उठा कि शायद गोदा के उक्त कार्य के कारण भगवान असंतुष्ट तो नहीं। रात को भी उनकी मानसिक चिंता कम न हुई। लेटे-लेटे वे भगवान का स्मरण कर रहे थे। न जाने, कब उनकी आँखें लगीं, कि एकाएक उनकी आँखें चौंधिया गयीं। अद्भूत प्रकाश एवं अनुपम सुन्दरता का दृश्य है। इस प्रकार स्वप्न में भगवान के दिव्य दर्शन पाकर तथा उनकी दिव्य वाणी सुनकर आनन्द विभोर हो गए। आळ्वार ने भगवान की यह वाणी सुनी कि आज आपने सुगन्धहीन पुष्पमालाएँ समर्पित की। आळ्वार क्षमा याचना करने लगे। लेकिन उनको क्षमा माँगने का अवसर न देकर भगवान ने बीच ही में कहा - "गोदा की घृत एवं भुक्त मालाएँ ही मुझे प्रिय लगती हैं। मैं उन्हीं मालाओं की प्रतीक्षा में हूँ। मुझे गोदा की घृत और भुक्त मालाएँ ही दीजिए। अपनी घृत व भुक्त पुष्प-मालाएँ (पूमालै) और वाचिक मालाएँ (पामालै) समर्पित करने के लिए ही इस संसार में गोदा का आविर्भाव हुआ है। इतना कहकर ने अदृश्य हो गए।

इतने में विष्णुचित्त की नींद खुल गयी। उन्होंने चकित होकर चारों तरफ देखा। उनके मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं। इस आनन्द प्रदायक स्वप्न पर विचार करते हुए उन्होंने गोदा को जगाकर उसे अपने स्वप्न से अवगत कराया। इतने में सबेरा हो गया। यथावत् वे नन्दवन जाकर फूल चुनकर लाए और उनकी मालाएँ गूंथकर गोदा के सामने रखकर कहा "वह उन्हें धारण करके, वापस दे। गोदा आनन्द से पुलकित हुई। उसकी आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी। पिताजी की इच्छा के अनुसार गोदा ने मालाएँ पहनीं और उन्हें उतारकर प्रेम व श्रद्धा सहित आळ्वार के हाथों में दे दी। अब मालाओं की नयी सुन्दरता और सुगंध पाकर गोदा के प्रति आळ्वार की श्रद्धा की

श्रीवृद्धि हुई । उन्होंने बड़े प्रेम से यह कहकर उसे यह आशीर्वाद दिया - "तुम मेरी आण्डाळ हो "(अर्थात् उज्जीवित करनेवाली) । उस वक्त से गोदा 'आण्डाळ' नाम से विख्यात हुई ।

आगे इसका क्रम बन गया । विष्णुचित्त मालाएँ गूंथकर गोदा के गले और कुंतल में सजाते । इसके बाद उसी के हाथों से मालाएँ लेकर भगवान वटपत्रशायी को समर्पित करते । उन मालाओं से अलंकृत भगवान के मनमोहक दर्शन पाकर विष्णुचित्त स्वस्थचित्त होते । इस तरह भगवान के संकल्प के अनुसार वे उनके कैंकर्य में लगे रहे । उस समय से गोदा 'शूडिक्कॉडुत्त नाच्चियार्' (आमुक्तमाल्यदा) नाम से जानी गयी ।

आण्डाळ की उम्र के साथ-साथ, उसकी भगवद्भक्ति की भावना में भी तीव्र विकास हुआ । वह पहले से ही अपने को भगवान की, श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ की प्रेमिका मानने लगी थी । अब वह भक्ति की भावना, प्रणय - भावना में बदल गयी । बचपन से ही वह, भगवान के कल्याण-गुण की विशेष रूप से, श्री कृष्ण की लीलाओं की घटनाएँ अपने पिताजी से सुन चुकी थी । जिस प्रकार कृष्णवतार में गोपियों ने अनन्य भक्ति एवं प्रेम के द्वारा, भगवान को प्राप्त किया, उसी प्रकार आण्डाळ भी भगवान की प्राप्ति की इच्छा करने लगी । वह मामूली इच्छा नहीं थी, प्रेम और भक्ति से प्रेरित तीव्र प्रणय की अभिलाषा थी ।

अब तो आंडाळ के लिए अपना स्थान श्रीविल्लिपुत्तूर् ही व्रज-भूमि हो गयी । मंदिर के भगवान वटपत्रशायी श्रीकृष्ण हो गए । वह भावना प्रकर्ष से स्वयं अपने को एक गोपी मानने लगी और अपनी अन्य सखियों को गोपियाँ । श्री कृष्ण के विरह में, कृष्ण की समकालीन गोपियाँ जिस प्रकार विरह का अनुभव करती थीं, उसी प्रकार का अनुभव गोदा भी करती थी । व्रजभूमि की गोपियों के समान वह भी भावना प्रकर्ष से व्रत का आचरण करने लगी । (इसका विवरण तिरुप्पावै व्याख्या में उपलब्ध है ।) इस व्रत का, लोक कल्याण के अलावा यह भी उद्देश्य था कि श्री रंगनाथ उसका पति बने । वह श्री रंगनाथ को छोड़, और किसी का वरण करने तैयार नहीं थी ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आंडाळ के लगभग 1000 वर्षों के बाद भक्त मीराबाई का जन्म राजस्थान के एक राजपरिवार में हुआ था । आंडाळ का जन्म तो दक्षिण में हुआ, जब कि भक्त मीरा सुदूर राजस्थान की थी । फिर भी

भगवान के प्रति आण्डाळ और भक्त मीरा की भक्ति भावना में बड़ी समानता है; दोनों में भगवान की प्राप्ति के लिए वही तड़प और त्वरा पाते हैं। दोनों की मनोकामना पूरी हुई।

आंडाळ अनुभव करने लगी कि श्री रंगनाथ, उसके पास, उसके हृदय में पहुँच गया है। भावना के संसार में मिलन की अनुभूति होती है। भगवान के प्रति आंडाळ की सजीव प्रेम-भावना और भक्ति की गहराई उसके निम्न लिखित दो दिव्य प्रबन्धों में प्रकट होती है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. तिरुप्पावै (श्री व्रत प्रबन्ध) | - | 30 | सूक्तियाँ |
| 2. नाच्चियार तिरुमोळि (देवी श्रीसूक्तियाँ ) | | 143 | सूक्तियाँ |
| | कुल | 173 | |

पेरियाळ्वार के मन में कभी आश्चर्य, कभी आनन्द और कभी चिंता होने लगी। पुरुषोत्तम रंगनाथ आंडाळ के लिए उचित पति अवश्य हैं। लेकिन उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि उसका विवाह भगवान रंगनाथ (अर्चामूर्ति) से किस तरह संपन्न हो पाएगा।

लेकिन आंडाळ को अपनी भावना में संपूर्ण विश्वास ही विश्वास है। उसकी मानसिक आँखों के सामने पुरुषोत्तम आ गया है। अब उसको भूलना उसके लिए संभव नहीं। इस अनुभव के कारण उसकी आँखों में कई दिनों से निद्रा नहीं। एक रात के अंतिम पहर में उसकी आँखें लगीं। गहरी नींद में उसका आनन्दानुभव है -

उसके विवाह की सभी तैयारियाँ हो चूकी हैं। संपूर्ण गृह अलंकृत है। बरात पहुँच गयी है। विवाह मंडप में नव नील ज्योति की तरह श्री रंगनाथ पुष्पमालाएँ पहनकर, स्वयं वर के वेष में आसीन है। स्वयं वधू बनकर नील वर्ण का रेशमी पट, पुष्पमाला, माथे पर कस्तूरि तिलक, कंगन, चूडियाँ, नूपुर आदि आभूषण पहनकर वर प्रेमी के बगल में बैठी है। परस्पर माला धारण (बदलने) के बाद श्री विष्णुचित्त कन्या दान देते हैं। विवाह विधिवत समंगल संपन्न होता है।

उन्नत गजसम वर उसके पाणि का ग्रहण कर, अग्नि की परिक्रमा करता है। लाजहोम होता है फिर मंगल स्नान आदि .... ।

आंडाळ नींद से जागती है। बगल में उसकी सहेली लेटी है। वह उसको जगाकर अपना आनन्द वर्द्धक अनुभव (स्वप्न) उसे सुनाती है।

गोदा का स्वप्न शीघ्र साकार हुआ । उसी दिन विष्णुचित्त ने भी नींद में यह स्वप्न देखा कि भगवान रंगनाथ अपना विवाह उसकी पुत्री गोदा से संपन्न करा देने की अपनी इच्छा प्रकट करता है । उन्होंने गोदा को भी अपने इस स्वप्न से अवगत कराया । वे आंडाळ के स्वप्न के बारे में उसकी सखी से पहले ही परिचित हो चुके थे ।

इससे भी अद्भुत बात यह थी कि श्रीरंगम में भगवान ने अपने परिजनों तथा मंदिर के कैंकर्य करनेवालों को स्वप्न में यह आज्ञा दी कि वे सभी श्रीविल्लिपुत्तूर जाकर, विष्णुचित्त और उनकी पुत्री गोदा को आदर-सत्कार सहित श्रीरंगम लिवा लाएँ । तदनुसार श्रीरंगम मंदिर के अधिकारीगण तत्काल श्रीविल्लिपुत्तूर पहुँचे । विष्णुचित्त को यह शुभ समाचार सुनाया । पहले से ही उनकी (विष्णुचित्त) मानसिक तैयारी थी । श्रीरंगनाथ का संदेश पाकर वे पुलकित हुए । गोदा तो आनन्द विभोर हो गयी । उन दोनों ने मंदिर जाकर वटपत्रशायी के दर्शन किए । उनकी अनुमति पाकर, वे अपनी लाडली पुत्री को एक सुसज्जित और सुन्दर पालकी में बिठाकर श्रीरंगम के लिए रवाना हुए ।

श्रीरंगम में आनन्द की लहरें उठ रही थीं । नगर भर में गली-गली तोरण (बंदनवार) स्थापित किए गए थे । श्रीरंगम इन्द्रलोक के समान सुसज्जित था । श्रीरंगम का प्रत्येक भक्त यह अनुभव कर रहा था कि उसके अपने घर में विवाह होनेवाला है । हर भक्त के लिए भगवान अपना ही होता है । सब भक्त वधू (आंडाळ) की प्रतीक्षा में मंदिर के सामने उपस्थित थे । आंडाळ की पालकी मंदिर के सामने आ पहुँची । आंडाळ पालकी से धीरे-धीरे उतरी और उसने मंदिर के राजगोपुर के सामने नमस्कार किया । वह अपने पिताजी के साथ मंद गति से मंदिर के अन्दर जाकर गर्भगृह में पहुँची ।

उसने अपनी कल्पना के अनुसार पीताम्बरधारी भगवान श्रीरंगनाथ को स्वर्ण किरीट, कौस्तुभ, शंख, चक्र और वनमाला से विभूषित वर वेष में विराजमान पाया । मालाओं से सुसज्जित होकर, सर्वालंकार भूषिता वधू गोदा क्षण मात्र, भगवान के दर्शन करते हुए खड़ी रही । भगवान का प्रिय संकेत पाकर वह आगे बढ़कर शेषशय्या के निकट पहुँची । भगवान ने गोदा को अपने बाहु-पाश में ले लिया । गोदा की ज्योति चमक उठी और परमात्मा की ज्योति में विलीन हो गयी । वह श्री रंगनाथ की महिषी बन गयी । पिता और पुत्री - दोनों की मनोकामना की पूर्ति हुई ।

भगवान श्री रंगनाथ की आज्ञा से विष्णुचित्त का श्रद्धा सहित, भव्य ढंग से सम्मान किया गया। अब विष्णुचित्त श्रीरंगनाथ के अमर बंधु श्वसुर बन गए। वे भगवान की आज्ञा से पुनः श्रीविल्लिपुत्तूर पहुँचे और पूर्ववत पुष्पमाला समर्पण कैंकर्य में लग गए।

लेकिन यह व्यापक कथन प्रचलित है कि स्वयं भगवान रंगनाथ अपने परिजन सहित श्री विल्लिपुत्तूर पहुँचे और परंपरागत सज-धज सहित बडे वैभव पूर्ण ढंग से गोदा से उसका विवाह संपन्न हुआ, जैसे गोदा ने अपने स्वप्न में अनुभव किया था। उसके बाद गोदा श्रीरंगम पहुंची। (जिसका विवरण ऊपर दिया गया है।

इसकी पावन स्मृति के रूप में आज भी भगवान रंगमन्नार श्रीविल्लिपुत्तूर के मंदिर में अपनी महिषी आंडाळ सहित अर्चा रूप में विराजमान होकर भक्तों को दर्शन देते हैं और अनुग्रह कर रहे हैं।

पहले ही इसका उल्लेख किया गया है कि आंडाळ के अनुगृहीत दो प्रबन्ध हैं। तिरुप्पावै की 30 सूक्तियाँ उपनिषद के समान पवित्र मानी जाती हैं। आचार्यों का मानना है कि तिरुप्पावै में वैष्णव सिद्धान्त का सार निहित है, शरणागति का अनुष्ठान है। साथ ही साथ यह एक उत्तम गीत काव्य भी है।

आण्डाळ का स्थान सिर्फ़ श्री रंगनाथ (रंगमन्नार) की प्रिय महिषी के रूप में ही नहीं, बल्कि 12 आळ्वारों की गोष्ठी में भी उसका एक उत्कृष्ठ स्थान है। कुल 12 आळ्वारों में आंडाळ को छोड़ बाकी सब पुरुष हैं। एक स्त्री हृदय की सच्ची भक्ति एवं समर्पण का पूर्ण परिचय आंडाळ की दिव्य सूक्तियों में प्राप्त होता है। समर्पण के साधनों में भी गोदा की दो तरह की क्षमताएँ दर्शित हैं।

1. पुष्पमालाओं का समर्पण (पूमालै)
2. वाचिक सूक्ति-मालाओं का समर्पण (पामालै)

"गोदा" शब्द में ही ये दोनों अर्थ अन्तर्निहित हैं।

संस्कृत भाषा में "गोदा" शब्द से बोध होता है - "वचन या सुन्दर एवं मधुर शब्द"।

तमिळ् भाषा में गोदा (कोदै) शब्द का अर्थ है - पुष्पमाला।

आंडाळ में उपरोक्त दोनों तत्वों का - तमिळ् एवं संस्कृत संगम पाते हैं। उसके नाम में भी इन दो तत्वों का मिश्रण है - तमिळ् और संस्कृत और इस प्रकार उभय वेदान्त तत्वों का उत्कृष्ट प्रतिपादन होता है।

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण का कथन है "महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ" । इस तरह मार्गशीर्ष, भक्ति की प्रेरणा देनेवाला महीना माना जाता है । हमारे देश में (विशेषतः तमिऴनाडु) इस महीने भर तिरुप्पावै उत्सव बड़ी भक्ति एवं श्रद्धा के साथ मनाया जाता है । तीसों दिन स्त्री पुरुष सब रोज़ (बड़े सबेरे) उषाकाल में उठकर स्नान करते हैं । तिरुप्पावै की सूक्तियों को सस्वर पाठ कर भक्ति प्रवाह में अवगाहन करते हैं । बड़े सबेरे सब घरों और मंदिरों में भगवान की पूजा होती है, भगवान को भोग समर्पित किया जाता है । गोदा का अनुकरण करते हुए, उसकी कृपा का पात्र बनकर जन्म जन्मान्तर तक भगवान के नित्य कैंकर्य (सेवा) के द्वारा, परम पुरुषार्थ की प्राप्ति ही इसका मुख्य उद्देश्य है ।

इसका सामाजिक संदेश भी है । देश और जनता को अज्ञान एवं आलस्य की निद्रा से जगाया जाता है । देश व समाज की उत्तम सेवा करने समर्थ बनाने, भगवान के अनुग्रह की प्रार्थना की जाती है । देश की उन्नति तथा समाज का सब तरह से कल्याण, समृद्धि एवं लोक सेवा की कामना की जाती है । यह भारतीय भक्ति सिद्धान्त को एक पवित्र प्रकाश देता है और हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के विकास का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन है । समस्त दुखों को दूर कर शांति प्रदान करता है ।

आंडाळ के अति मधुर तमिऴ भाषा के प्रबन्ध, सबके लिए शिरोधार्य हैं । संसारी लोगों के लिए यह गीत माला, भक्ति की प्रेरणा देनेवाला बड़ा पवित्र साधन है । सब लोग, वाक्, बुद्धि और हृदय (मन) से इस सूक्ति माला का धारण करते हैं और आगे भी धारण करते रहेंगे एवं शांति प्राप्त करेंगे ।

आंडाळ के श्रीपादों की जय हो !

श्रीमते रामानुजाय नमः

# नालायिर
# (चतुः सहस्र) दिव्य
# प्रबन्धम्

## स्तुति पद्य (तनियन्)
## (उपक्रम - शांतिपाठ)

रामानुज दया पात्रं
ज्ञान वैराग्य भूषणम्
श्री मद्वेंकटनाथार्यं
वन्दे वेदान्त देशिकम्

श्रीशैलेश दयापात्रं
धीभत्यादिगुणार्णवम्
यतीन्द्रप्रवणं वन्दे
रम्यजामातरं मुनिम् ॥

लक्ष्मीनाथ समारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरंपराम् ।

यो नित्यमच्युतपदाम्बुज युग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मदगुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धो,
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

माता पिता युवतयस्तनया विभूति
स्सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं,
श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं प्रणनामि मूर्घ्ना ॥

भूतं सरश्च महदाह्वय भट्टनाथ,
श्रीभक्तिसार कुलशेखर योगिवाहान् ।
भक्ताङ्घ्रिरेणु परकाल यतीन्द्रमिश्रान् ।
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥



श्री आण्डाळ (गोदा देवी)

॥ श्रीरस्तु ॥
श्री गोदादेव्यै नमः
श्रीमते रामानुजाय नमः

# तिरुप्पावै (श्री व्रत प्रबन्ध)

आण्डाळ (श्री गोदा देवी)
(हिन्दी व्याख्या सहित)

लक्ष्मीनाथ समारंभां नाथ यामुन मध्यमां ।
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम् वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ (कूरत्ताळ्वान्)

## स्तुति पद्य (तनियन्)

नीलातुङ्गस्तन गिरितटी सुप्तमुद्बोध्य कृष्णं
पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशत शिरस्सिद्धमध्यापयन्ती ।
स्वोच्छिष्टायां स्रजि निगलितं या बलात्कृत्य भुङ्क्ते
गोदा तस्यै नम इदमिदं भूय एवास्तु भूयः । (श्री पराशर भट्ट)

तिरुप्पावै (व्रत प्रबन्ध) पूज्य आण्डाळ (गोदा देवी) द्वारा अनुगृहीत एक भावना प्रधान दिव्य प्रबन्ध है, जिसका संग्रह नालायिर दिव्य प्रबन्धम् (चतुः सहस्र दिव्य प्रबन्ध) में किया गया है। तिरुप्पावै की कुल 30 दिव्य सूक्तियां हैं। भगवान का नित्य कैंकर्य और नित्य सेवा ही परम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ प्राप्ति एवं श्री कृष्ण की नित्य सेवा ही आण्डाळ का लक्ष्य है। साधन भी वही है। इस प्रबन्ध में भगवान के प्रति आण्डाळ की श्रेष्ठ भक्ति भावना एवं उसका विलक्षण अनुभव (पुरुषार्थ प्राप्ति) का परिचय मिलता है। श्री नीला देवी के तुंग स्तन रुपी गिरि तट पर शयनित श्री कृष्ण को (योग निद्रा से) उद्बोधन कर, वेदांत-सिद्ध अपने (चेतन का) पारतंत्रय अर्थात् भगवच्छेषत्व का उपदेश देनेवाली, कैंकर्य में (भगवान के) अपनी तीव्र इच्छा प्रकट करनेवाली, और अपनी धृत पुष्पमाला से अलंकृत (आमुक्तमाला) और अपने प्रेम पाश से बंधित श्री कृष्ण को साग्रह अनुभव करनेवाली गोदा देवी को बारंबार नमस्कार है।

2. अन्नवयल् पुदुवै आण्डाळ् अरङ्गर्क्कु, पन्नु तिरुप्पावै पल्पदियम् — इन्निशैयाल् पाडिक्कॊडुत्ताळ् नर्पामालै पूमालै शूडिक्कॊडुत्तालैच् चॊल्लु।

श्री गोदा देवी का आविर्भाव हंसों से भरे खेतों से परिवृत्त श्री विल्लिपुत्तूर में हुआ। श्री रंगनाथ भगवान के लिए अतिमधुर, गाने योग्य, विलक्षण, समस्त भक्तजन भोग्य तिरुप्पावै नामक दिव्य प्रबन्ध (वाचिक माला) का समर्पण किया। इसके अलावा अपने धृत (आमुक्त माला) पुष्पमालाओं को भी समर्पित किया। पामालै - गीतमाला में छन्द/ध्वनि की सुन्दरता और पूमालै पुष्पमाला में गन्ध की शोभा पायी जाती है। तिरुप्पावै-गीतमाला समस्त जन भोग्य भी है। अपने पति भगवान के लिए उक्त मालाएं समर्पित करनेवाली गोदा देवी का गुण-कीर्तन करें। गीत माला का अनुसन्धान करें।

3. शूडिक्कॊडुत्त शुडरकॊडिये तॊल्पावै पाडियरुळवल्ल पल्वळैयाय्-नाडिनी वेंकडवर्क्केन्नै विदिर्यन्न इम्माट्रम् नाम्कडवा वण्णमे नल्हु।

इस तनियन् में साक्षात् गोदा देवी को ही संबोधित कर यों प्रार्थना की जाती है।

हे गोदा देवी ! अपनी धृत (आमुक्त माला) अर्थात् स्वयं पहले पहन कर, बाद को अपने धृत पुष्प मालाओं को भगवान को समर्पित करने से विशेष शोभा पानेवाली ! हे कांतिमय लता सदृश ! अनादिकाल से अनुष्ठित व्रत को अपने (अनुगृहीत) तिरुप्पावै प्रबन्ध में प्रकट करनेवाली ! विलक्षण गुणवाली ! दिव्य कंगनों से भूषित कारुण्यवती ! श्री वेंकटनाथ से अनन्य प्रेम कर उन्हें अपने को समर्पित करनेवाली ! वेंकटेश भगवान से अनन्यार्ह शेषत्व मांगनेवाली ! हमें यह अनुग्रह कीजिए कि हम आपकी तिरुप्पावै श्री सूक्तियों के उपदेशों का पालन कर उसके अनुसार जीवन बिताते हुए निष्ठावान बने रहें। कभी इसके प्रतिकूल न रहें।

उपर्युक्त दोनों सूक्तियों में श्री रंगनाथ (श्रीरंगम) श्री वेंकटनाथ (तिरुमलै-तिरुप्पति) दोनों के उल्लेख से सूचित होता है कि (दूसरे आळ्वारों के विचार में भी) श्री रंगनाथ, श्री वेंकटनाथ, एवं वटपत्रशायी (श्री विल्लिपुत्तूर) श्री कृष्ण आदि सब अभिन्न हैं। उक्त भावना की कई दिव्य सूक्तियों का तिरुप्पावै में अनुभव करेंगे।

यही नहीं, परमपद में विराजमान श्रीमन्नारायण (पर), श्रीराब्धि सागर में शेषशायी भगवान (व्यूह), हमारे हृदय में व्याप्त अन्तर्यामी (हार्द्र), राम कृष्ण आदि अवतार (विभव), और दिव्य क्षेत्रों में (श्रीरंगम, तिरुप्पति, आदि) विराजमान (अर्चा) भगवान सब अभिन्न हैं।

**तनियन् समाप्त**

# तिरुप्पावै - अवतारिका

श्री वैष्णव संप्रदाय में - आळ्वारों की सत्ता प्रसिद्ध है। भगवान की निर्हेतुक कृपा से अनुगृहीत आळ्वार विलक्षण भक्त एवं ज्ञानी बन गए हैं। (पेरियाळ्वार) पट्टर पिरान कोदै-(गोदा देवी - आण्डाळ) का, स्वभाव से ही दिव्य ज्ञान एवं भक्ति से व्याप्त होने के कारण, विलक्षण वैभव है। आळ्वारों से भी आगे बढ़ती हुई, आण्डाळ स्वयं पहले जागकर, अपने सखियों को जगाकर, उनको भी अपने साथ लेकर श्री कृष्ण के महल में जाती है।

क्रमशः द्वारपालक, नन्दगोपाल, यशोदा माताजी, बलभद्र (बलराम) और नीला देवी आदि सब को जगाकर (प्रबोधन गीत सुनाकर) आखिर श्री कृष्ण को भी प्रबोधन गीत सुनाकर (योग-निद्रा से) जगाती है।

दिव्य प्रबंध की श्री सूक्तियों में, कुछ दिव्य-सूरियों को कदाचित अपने पुरुषत्व का कम महत्व देकर, स्त्री भावना अपनाकर भगवदानुभव करते देखे जाते हैं, जैसे नम्माळ्वार, तिरुमंगै आळ्वार प्रभृति। लेकिन श्री गोदा देवी को (स्त्री रूप में ही अवतीर्ण) ऐसे प्रयास (स्त्री भावना) की आवश्यकता नहीं रही।

गोदा देवी का गोपियों से तादात्म्य एवं गोपी भावना इतनी अधिक हो गयी कि गोदा देवी की सारी क्रियाएं गोप बालिकाओं की सी हो गयीं। काल गति, स्थान गति को लांधकर गोपी भावना से विभूषित गोदा देवी के लिए श्री विल्लिपुत्तूर ही व्रज-भूमि (गोकुल) बन जाता है। स्थानीय वटपत्रशायी का मंदिर नंदबाबा का महल और वटपत्रशायी ही श्रीकृष्ण के रूप में दर्शन देते हैं। उस वक्त की उनकी सहेलियां गोप-बलिकाएं हैं। गोदा देवी का मन भगवान के विरह में संतप्त है। विरह संतप्त हृदय को शांति प्राप्त करने अपने मन में उसका उपाय सोचने लगी। गोदा के मन में यह विचार आया कि भगवत् संबंधी लीलाओं का अनुकरण कर मन को कुछ शांत करें। गोदा तो स्वभाव से कृष्ण भक्त थी। काल गति में, श्री विष्णुचित्त के संग से, गोदा देवी का मन पूर्ण रूप से भगवान से ही लग गया। प्रेम की अधिकता के कारण उन्हीं को अपना पति मानने लगी। गोदा ने श्री विष्णुचित्त से सुना था कि गोप बालिकाओं ने कात्यायनी व्रत का अनुष्ठान कर श्री कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त किया था। इससे प्रेरित गोदा ने उनके अनुष्ठित उस व्रत का अनुष्ठान करने का विचार किया था। इसके अलावा समय पर बरसात के लिए, देश की संपन्नता के लिए व्रत का अनुष्ठान करने की परंपरा थी। उसके अनुसार गोप-वृद्धों ने व्रत का पालन करने का आदेश दिया था। गोपों की प्रार्थना के अनुसार श्री कृष्ण ने भी अपनी

सम्मति दे दी। उस वक्त गोपियों ने व्रत का अनुष्ठान किया था। गोदा देवी उन्हीं का अनुकरण करती है। (भावना से)

**तिरुप्पावै में प्रतिपाद्य विषय:**

इसमें ऊपर उल्लिखित कात्यायनी व्रत के (भावात्मक) प्रतिपादन का व्याज बनाकर, पुरुषार्थ प्राप्त किया जाता है। तिरुप्पावै शब्द का अर्थ है :-

तिरु - श्री, पावै - वृत = श्रीव्रत

इसके अलावा गोपियों के उत्तम चरित्र का परिचय इस प्रबन्ध में पाते हैं। गोदा देवी भावना प्रकर्ष से स्वयं एक गोपी के गुणों से विभूषित होकर, अर्थात् गोपियों की वेष-भूषा, चलन, वचन, भावना आदि को अपनाती है। गोपी भावना वाली गोदा देवी ने भावना प्रकर्ष से अपनी वाणी के द्वारा उक्त प्रसंग का वर्णन करती है अर्थात व्रत के अनुष्ठान का। यह क्रिया से नहीं - हां, अपनी दिव्य सूक्तियों के द्वारा। तिरुप्पावै प्रबन्ध का वैभव असाधारण है। इसमें बड़ी सरलता पूर्वक वेदान्त का सार बताया जाता है। भगवान (श्री कृष्ण) के नित्य कैंकर्य की प्रार्थना है। तिरुप्पावै का यही प्रधान एवं महत्वपूर्ण विषय है - परम तत्वार्थ है। यह प्रबन्ध मनुष्यों के अवश्य ज्ञातव्य सभी वेदांतार्थ से परिपूर्ण है। प्रतिपादित है। इसलिए आचार्यों का मानना है कि तिरुप्पावै न जाननेवाले का जन्म व्यर्थ है। विशेषज्ञ यह मानते हैं कि तिरुप्पावै के आविर्भाव का काल (ई.स.731) आठवीं सदी है।

प्रत्येक वैष्णव मंदिर एवं गृहों में भी, भगवान की नित्य आराधना के वक्त, तिरुप्पावै का पाठ अवश्य किया जाता है। पूजा के अंत में इसका शांति पाठ (तमिऴ् में शार्टुमुरै) अर्थात्, आखिरी दो दिव्य सूक्तियों का पाठ, होता है। इसके अलावा भक्त लोग उषाःकाल में भी इसका पाठ करते हैं।

**तिरुप्पावै की तीस सूक्तियों का विभाग यों है -**

1-5 व्रत की सामग्रियों का उल्लेख।
6-15 गोपियों का प्रबोधन। (जगाना)
16-20 श्री नप्पिन्नै, नन्द, यशोदा एवं श्री कृष्ण का प्रबोधन
21-25 श्री कृष्ण के पास पहुंचना और अपने मनोरथ का निवेदन।
26-30 भगवान की कृपा एवं अनुग्रह से फल प्राप्ति - कैंकर्य प्राप्ति।

*****

# तिरुप्पावै (व्रत प्रबन्ध)
# आण्डाळ (गोदा देवी)

### हिन्दी व्याख्या

**पवित्र अवगाहन**

मार्हळित् तिङ्गल् मति निरैन्द नन्नाळाल् :
नीराडप् पोदुवीर् पोदुमिनो, नेरिळैयीर् ।
शीर् मल्हुम् आय्पाडिच् चेलवच् चिरुमीर्हाळ् ।
कूर् वेर् कोडुन्ताळिलन् नन्दगोपन् कुमरन्
एर् आरन्द कण्णि यशोदै इलञ्शिंगम्
कार् मेनिच् चेङ्कण् कदिर् मदियम् पोल् मुहत्तान्
नारायणने नमक्के परै तरुवान्;
पारोर् पुहळप् पडिन्दु-एलोर् एम्पावाय् ॥ (1)

तिरुप्पावै प्रबन्ध की प्रथम् पांच सूक्तियों में व्रत की तैयारी एवं सामग्रियों का उल्लेख है ।

आण्डाळ (गोदा देवी) भावना प्रकर्ष से गोपी के गुण-युक्त है । काल गति, स्थान गति को लांघकर, आण्डाळ के लिए श्री विल्लिपुत्तूर ही व्रज-भूमि बन जाती है । स्थानीय मंदिर के भगवान वटपत्रशायी श्री कृष्ण के रूप में दर्शन देते हैं । कई गोपियां एकत्रित हुईं । जो गोपियां अभी तक नहीं पहुंची हैं, उन सब को जगाकर अपनी गोष्ठी में शामिल करा लेती हैं । एक गोपी को भी छोड़ती नहीं ।

यह तो पवित्र एवं सात्विक (वैष्णव) मार्गशीर्ष महीना है । शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा का शुभ-दिन है । (भारतीय परंपरा एवं संस्कृति के अनुसार किसी व्रत का प्रथम् अंग स्नान अर्थात् पवित्र अवगाहन है (शारीरिक पवित्रता के लिए) व्रत का पालन करने केलिए शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता की आवश्यकता है । यहां यह उल्लेखनीय है कि गोपियों की भावना में स्नान, व्रत आदि भगवान के कैंकर्य का अनुभव है । भगवान का नित्य कैंकर्य और भगवदानुभव का प्रकाशन ही इस प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंश है ।)

गोपियों का आह्वान करते हुए संबोधन है - दिव्य भूषण धारिणी सखी गण ! ऐश्वर्य से परिपूर्ण व्रज में निवास करनेवाली कैंकर्यश्री विभूषित गोपियो ! स्नान करने इच्छुक (सब) आ जाओ !

गोपियां (बालिकाएं) कैसी हैं? दिव्य आभूषणों से अलंकृत एवं कैंकर्यश्री से विभूषित हैं। तेज़पूर्ण और व्रज भूमि में निवास करनेवाली हैं। श्री कृष्ण के लिए गोपियों का जन्म हुआ; गोपियों के लिए श्री कृष्ण ने अवतार लिया; इसलिए श्री विभूषित बालिकाएं और भगवान के प्रति विपुल प्रेम और सतत उनके कैंकर्य की इच्छा रखनेवाली और कैंकर्यरता। स्नान करने इच्छुक अर्थात् भगवदानुभव की इच्छा रखनेवाली सब को बुलाती हैं। भगवत् प्राप्ति के लिए इच्छा मात्र पर्याप्त है। कोई दूसरी योग्यता आदि नहीं; बाकी सब गौण है।

"अपार करुणासागर, यशोदा नन्दन, नन्दगोपात्मज श्री कृष्ण हमारे व्रत को सफ़ल बनाएंगे।" उन्होंने पहले व्रत पालन की अनुमति दे दी है - अनुग्रह भी प्राप्त है।

श्रीमन्नारायण ही (नन्दगोप्कुमार) हमें अपनाएंगे। यहां इसकी विशेषता है कि गोप बालिकाएं श्री कृष्ण को आरंभ में "नारायण" नाम से बुलाती हैं। (आगे की सूक्तियों में दूसरे नामों का प्रयोग है) वे कृष्ण की महिमा - परत्व से अवगत हैं। श्रीमन्नारायण ने ही कृष्ण के रूप में यहां व्रज भूमि में अवतार लिया है।

"तीक्ष्ण भालायुधधारी, कठोर कार्य कारी, नंदगोप का पुत्र, एवं सुन्दर नेत्र वाली यशोदा का बालसिंह, कालमेघ के समान देहवाला कमलनयन - सूर्य और चन्द्र सदृश मुखवाला नारायण ही (श्रीकृष्ण) हमको सभी पुरुषार्थ (पऱै) देंगे।"

श्री कृष्ण नन्दगोप का पुत्र है। नन्दगोप कैसे हैं? नुकीले भालायुध धारी हैं। वे कृष्ण को शत्रुओं से रक्षा करने के लिए हमेशा तत्पर हैं। शत्रुओं के प्रति क्रूर-व्यवहार करनेवाले हैं। सुन्दर नेत्रोंवाली यशोदा का बालसिंह है। यहां आण्डाळ का, कृष्ण को नंद और यशोदा का पुत्र न कहकर, उपरोक्त प्रकार कहना बड़ा मार्मिक है।

श्री कृष्ण का शरीर जल भरे जलद के समान है। अर्थात् करुणामूर्ति हैं। कमल सदृश लाल नयनवाले - जिससे भक्तों को अपनी कृपा दृष्टि से अनुग्रह करते हैं।

सूर्य और चन्द्र समान मुंहवाले ।

सूर्य की तरह अत्यन्त तेजस्वी और चन्द्र की तरह प्रसन्न एवं तापहर । यहां तीन विशेषण हैं - अर्थात् श्री कृष्ण का दिव्य मंगल विग्रह, (शरीर) दिव्य नेत्र और दिव्य मुखारविन्द तीनों करुणा से पूर्ण हैं । शत्रुओं के लिए दुर्लभ एवं भक्तों के लिए सुलभ और भोग्य । नारायण ही हमको वांछित पुरुषार्थ देंगे ।

भूमंडल निवासी सब लोग हमारी प्रशंसा करें, इस तरह, मार्गशीर्ष व्रत में अवगाहन करेंगी । हमारे अनुष्ठित व्रत से लोक कल्याण होगा । देश धन-धान्य से संपन्न होगा । गोप-गोपी एवं गोप बालिकाओं का अटल विश्वास है कि व्रत के अनुष्ठान से निष्काम भगवत् कैंकर्य (सेवा) से, समय पर देश में वर्षा होगी । पर्याप्त जल की प्राप्ति से लोगों की बेचैनी दूर होगी । वे खुश होंगे । इस प्रकार लोक कल्याण से जनता के खुश एवं तृप्त हो जाने से अपने आप अपनी कृतज्ञता प्रकट करेंगे । प्रशंसा तो इसके अंतर्गत है । प्रशंसा कायिक या व्यक्तिगत नहीं - लोक कल्याण के लिए, कैसी उत्तम निस्वार्थ भावना है ।

तिरुप्पावै प्रबन्ध की सभी सूक्तियां "एल् ओर् एंम्पावाय्" शब्दों से समापित की जाती हैं । अंतिम गाथा में "एंम्पावाय्" मात्र है । आचार्यों का कथन है कि इस शब्द राशि को वाक्यालंकार, एवं संतोष वाचक समझना उचित है । "एल्" 'ओर्' (तमिऴ् शब्द) आश्चर्य सूचक एवं संतोष वाचक अव्यय है । इन शब्दों को गोपियों के द्वारा अनुष्ठित व्रत का, अथवा पुरुषकार रूप महालक्ष्मी का, यानी नीला देवी (नप्पिन्नै) का स्मारक/पर्यायवाची शब्द मानना भी उचित होगा । इन शब्दों के द्वारा मार्गशीर्ष व्रत में अवगाहन करने का आह्वान है ।"

तिरुप्पावै प्रबंध का वाच्यार्थ ही अति मनोहर एवं कई तत्वों का प्रकाशक है । इसके अलावा प्रत्येक गाथा कई गूढ़ अर्थ युक्त है - अर्थात् व्यंग्यार्थ, एवं स्वापदेश । तिरुप्पावै में "**स्वापदेश**" का महत्व है । इसमें कवि का तात्पर्य समझा जाता है । इस प्रकार आचार्य वैभव को प्रकट करना भी इस प्रबन्ध का तात्पर्य है । गोदा देवी का विश्वास है - आचार्य कृपा ही मानव का समस्त कल्याण कारक है ।

हमने अब तिरुप्पावै प्रबन्ध के प्रथम प्रबोधन गीत का अनुभव किया । चिंतनशील कैंकर्य निष्ठ भक्तों की (गोपियों की) नादध्वनि हृदय को आह्लादित करती है । अपनाओ ।

यहां इसका उल्लेख भी प्रासंगिक होगा - कि इस प्रथम पद्य में फल, साधन और अधिकारी तीनों का उल्लेख है ।

फल: अवगाहन, (स्नान करना) भगवदानुभव एवं श्रीकृष्ण भगवान की सान्निध्य एवं पुरुषार्थ प्राप्ति । साधन फल प्रदायक स्वयं श्रीमन्नारायण । अधिकारी परम पुरुषार्थ प्राप्ति के सभी इच्छुक ।

व्रत के अनुष्ठान का समय, अधिकारी और उसके निर्वाह करनेवाले कृष्ण (श्रीमन्नारायण) का स्मरण करते हुए, देश की संपन्नता एवं विकास के अलावा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए (स्वापदेश) गोप बालिकाएं व्रत के अनुष्ठान में लीन हैं, जो भावना प्रधान है ।

**स्वापदेश:**

परम पुरुषार्थ (भगवत्-कैंकर्य प्रदान करने की शक्ति रखनेवाले श्रीमन्नारायण ही हमें परम पुरुषार्थ प्रदान करेंगे - (परै-परम पुरुषार्थ-कैंकर्य) अवगाहन - स्नान करना साध्य रूप प्रपत्ति है । प्रपत्ति निष्ठ हमको सिद्धोपाय नारायण ही सभी पुरुषार्थ देंगे । यहां यह स्वापदेश के रूप में बताया जाता है । मार्गशीर्ष महीना है - पूर्णिमा है । अवगाहन का उत्तम समय है । आचार्यों का कहना है कि प्राप्य वस्तु क्या है? प्रापक-प्राप्त करनेवाला कौन है? आदि का संग्रह करके बताती है इस प्रबन्ध में गोदा देवी ।

दिव्य सूक्तियों में सामान्य भावार्थ (वाच्यार्थ) लोक-व्यवहार (पुरप्पोरुळ्) (तमिळ् शब्द) का होता है । यह अन्यापदेश भी हो सकता है । इसके अलावा व्यंग्यार्थ भी होता है । दिव्य सूक्तियों में प्रकट किए जानेवाले वेदान्त तत्व को तमिळ् परंपरा के अनुसार "स्वापदेश" कहा जाता है । लोक कल्याण, देश की संपन्नता एवं समाज की मंगल कामना "इह" पक्ष का है । अपने उज्जीवन के लिए अपनी आत्मा के प्रति उपदेश "स्वापदेश" है - आण्डाळ का ।

(स्वापदेश का यह अंश संप्रति श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन (श्रीमत् रंग रामानुज महादेशिकन) के प्रवचनों से (आकाश वाणी) संक्षिप्त उद्धरण है ।

(कुछ तत्वार्थ बतानेवालों का विचार है कि (6 से 15 तक) दस सूक्तियों के द्वारा, दस आळ्वारों को लक्ष्य कर प्रबोधन गीत है ।)

(इस व्याख्या में सिर्फ वाच्यार्थ पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है । विस्तार के भय से दूसरे व्यंग्यार्थ आदि पक्षों की विस्तृत व्याख्या इस में सम्मिलित नहीं है ।

**जीवन्त व्रत - व्रत भी भोज है-**

वैयत्तु वाळ्वीर्हाळ् ! नामुम् नम् पावैक्कुच्
चय्युम् किरिशैहळ् केलीरो: पार्क डलुळ्
पैयिर् तुयिन्ड्र परमन् अडि पाडि,
नेय् उण्णोम्, पाल् उण्णोम्, नाट्काले नीराडि,
मैयिट्टु एंळुदोम्, मलर् इट्टु नाम् मुडियोम्,
चय्यादन चय्योम्, तीक्कुरळै चेन्ड्रु ओदोम्,
ऐयमुम् पिच्चैयुम् आमृतनैयुम् कैकाट्टि
उय्युमारु एंण्णि उहन्दु ऐलोर एंम्पावाय् । (2)

गोदा देवी का आह्वान पाकर सब गोपियां (गोप बालिकाएं) एकत्रित हो गयीं। (पहली गाथा)

इस गाथा में व्रत काल के कर्तव्य का संकल्प (निर्णय) करती हैं। अर्थात् किसे अपनाकर किसे वर्जित करना चाहिए।

अनुष्ठित किए जानेवाला यह व्रत जीवन को सोद्देश्य बनाने के लिए है। इसके दो प्रधान उद्देश्य हैं। ज़मीन के उर्वर होने और धनधान्य से समृद्ध होने उचित समय पर पर्याप्त वर्षा होनी चाहिए। देश की समृद्धि और विकास पर ही समाज, परिवार एवं व्यक्ति का कल्याण निहित है। गोप कन्याओं को उत्तम पति मिले। उपरोक्त उत्तम उद्देश्यों की पूर्ति के लिए और पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए अनुष्ठित किए जानेवाले इस व्रत में भाग लेने की इच्छुक गोपी एवं गोप कन्याओं का यों आह्वान है।

"हे भूमंडल में उज्जीवन करनेवाले जन ! यह संबोधन, आह्वान सभी भूमंडल वासियों के लिए है। हमसे, अपने अनुष्ठित व्रत के लिए (व्रत के अंगरूप में) की जानेवाली क्रियाओं को ध्यान से सुनिए।"

"प्रथम कर्तव्य पाद सेवन - नाम संकीर्तन है। भगवान का नाम-संकीर्तन आदि कतिपय नियमों का पालन तो नित्यप्रति किया जाता है (नित्य कार्य) इसका प्रस्ताव यहाँ इसलिए किया जाता है कि व्रत के समय इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

प्रथम सूक्ति में "नारायण" नाम का परमपदवासी (पररुप) श्रीमन्नारायण का स्मरण किया गया। इसमें (2) व्यूहरुपी भगवान (क्षीराब्धिनाथ) का स्मरण किया जाता है! गोपियों को इसका ज्ञान है कि नारायण ने ही - क्षीराब्धिनाथ ने ही कृष्ण के रूप में अवतार लिया है।

''क्षीर सागर में सावधान, मनोयोग से शयन करनेवाले परमपुरुष के पादों का कीर्तन करेंगी''

मनोयोग से शयन करनेवाले का तात्पर्य है कि भगवान (हमारे जैसे) तमोगुण की नींद नहीं ले रहे हैं। योग निष्ठा है - अर्थात् सभी काम से निवृत्त होकर भक्त जनों की रक्षा के लिए - उनकी प्रार्थना/निवेदन सुनने एकाग्रचित्त होकर शयन कर रहे हैं। क्षीराब्धिनाथ का पाद सेवन, चरण सेवा एवं स्तुति करने की बात अर्थपूर्ण है। अत्यन्त नम्रता से ही भगवान की सन्निधि में जाना चाहिए। द्वय मंत्र का तात्पर्य भी यही है। चरणों की शरण में जाने की बात है। ''चरणौ शरणं प्रपद्ये''।

बडे सबेरे (मामूली स्थान काल के बहुत पहले) स्नान करेंगी। घी नहीं पीएंगी, दूध नहीं पीएंगी। आंखों में काजल लगाकर न सजाएंगी। केश में पुष्प धारण कर उसे नहीं बांधेंगी। (हमारे पूर्वजोंसे) अननुष्ठित कोई काम नहीं करेंगी। कटुवचन नहीं बोलेंगी''।

व्रत के समय, व्रत के अंग के रूप में सभी भोगों को छोडकर संयम का पालन करना चाहिए। उपवास करना - अशक्त होने पर, शरीर-धारण की आवश्यकता मात्र के लिए अल्प आहार लेना, गन्ध, पुष्प आदि लौकिक भोग पदार्थों का सेवन न करना आदि। व्रत काल में विशेष सावधानी से व्रती याने विरक्त जीवन बिताने का निर्णय करती हैं। आंख, सिर एवं शरीर को पहले भगवत्-सेवा के अलावा किसी दूसरे काम में नहीं लगाएंगी। भगवान के दर्शन, मानव का प्रधान इन्द्रिय आंख का काम है। भगवान के चरणों में नतमस्तक होना सिर का प्रधान काम है। इसलिए भगवान की प्राप्ति और अनुग्रह प्राप्त करने के पहले उपरोक्त कोई अलंकार नहीं करती। देहालंकार के स्थान पर आत्मालंकार पर ध्यान देंगी। मुंह से तन्मय होकर नाम संकीर्तन करना है। इसलिए अकृत्याकरण और कटुवचन के लिए कोई मौका नहीं देंगी।

सत्पात्र में दी जानेवाली भेंट, एवं दीन जनों को दी जानेवाली भिक्षा, इन सब को यथा-शक्ति देंगी। दीनों का दुःख दूर करने का प्रयत्न करेंगी। यहां वृत की सिद्धि के लिए सात्विक दान पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अपने उज्जीवन और भगवान के चरणों का चिंतन एवं स्मरण में ही शांति प्राप्त करेंगी। आनन्दित हो जाएंगी।

आयप्पाडि की गोप-कन्याओं ने श्री कृष्ण के अनुग्रह से आयप्पाडि को स्वर्ग तुल्य बनाया। आण्डाळ अपनी भावना प्रकर्ष से - परिपक्वता से श्रीविल्लिपुत्तूर को आयप्पाडि बनाती है - अर्थात् स्वर्ग तुल्य।

व्रत पालन के वक्त, अपनाए गए नियम्-कृत्या-कृत्य की बातें और उपवास आदि से इनको कोई कष्ठ तो नहीं होता? वास्तविक बात यह है कि वे इसी में आनन्द का अनुभव करती हैं। इनके लिए पीने का पानी, खाने का पान, भोजन आदि सब कृष्णमय है। ''वासुदेव सर्वम्'' - व्रत के लिए संयम जीवन और त्याग आदि तो इनके लिए भोग है। श्री कृष्ण का चरण-कमल ही सिर पर सजाए जाने का पुष्प है। सर्वस्व कृष्णमय और सर्वत्र कृष्णानुभव है। इससे इनकी उत्तम मनोदशा का परिचय भी मिलता है।

''सर्वे जना सुखिनो भवन्तु'' की सक्रिय भावना है। पहली सूक्ति में गोपियों का आह्वान था। इसमें समस्त भू-मंडल निवासी बुलाए जाते हैं। सब इनके इष्ट-मित्र बन्धु-जन हैं।

पहले व्रत के इच्छुक जो बुलाए गए, उनको ऊपर बताए गए ऐसे शास्त्र सम्मत नियम-निष्ठ होने की आवश्यकता भी इस पद्य में बतायी जाती है।

**स्वापदेश**

जो करना उचित है उसे अवश्य करना चाहिए। जो अनुचित हैं उसे वर्जित करना चाहिए। यह इस सूक्ति का स्वापदेश है।

## निष्ठापूर्ण व्रत से देश की श्री वृद्धि

ओंगि उलहु अळन्द उत्तमन् पेर् पाडि
नाङ्गळ् नम् पावैक्कुच् चार्ट्रि नीर् आडिनाल्
तींगु इंड्रि नाडु एल्लाम् तिङ्गल् मुम्मारि पेय्दु
ओंगु पेरञ् चेन्नॅलूडु कयल् उहळप्
पूंकुवलै पोतिल् पॅरिवण्डु कण्पडुप्पत्
तेंगाते पुक्कु इरुन्दु शीर्त्त मुलै पट्रि
वाङ्गक्, कुडम् निरैक्कुम् वळ्ळर् पॅरुम् पशुक्कळ् :
नींगात शॅल्वम् निरैन्दु-एलोर् एम्पावाय् ॥ (3)

पिछली सूक्ति में गोपियों के व्रतानुष्ठान् की बात बतायी गयी। इस सूक्ति में, हाल में गोपीकृत व्रतानुष्ठान की तत्काल (लौकिक फल) श्री वृद्धि एवं लोक कल्याण का विवरण है।

आकाश की सीमा तक बढकर लोक नापनेवाले उत्तम-पुरुष ''तिरुविक्रम भगवान का नाम संकीर्तन करते हुए व्रत के व्याज से बड़े सबेरे स्नान करेंगी।

व्रत का अनुष्ठान निष्ठा से करेंगी तो देश के सभी प्रकार के अनिष्ट तत्काल दूर होंगे । व्रत के व्याज से बड़े सबेरे स्नान कर भगवदानुभव से संपूर्ण देश की ईति-बाधा (खेतों को हानि पहुंचाने वाला उपद्रव) नष्ट हो जाएगी । प्रतिमास तीन बार वर्षा होगी । (नौ दिन सूर्य का प्रकाश और एक दिन वर्षा) धान भी खूब पैदा होंगे । गाएं भी अत्यधिक दूध देंगी । इसका फल संपूर्ण देश में व्याप्त होगा । इसमें तिरुविक्रम भगवान का स्मरण किया जाता है । प्रथम सूक्ति में श्रीमन्नारायण का, दूसरी में क्षीराब्धिनाथ का स्मरण किया गया था । पर एवं व्यूह रुप के बाद, भगवान के विभव रूप का अर्थात तिरुविक्रम (वामनावतार) का कीर्तन है । गोपियां तिरुविक्रम भगवान को "उत्तम पुरुष" कहती हैं । उक्त कथन साभिप्राय (अर्थपूर्ण) है । अपने हानि की परवाह न करते हुए, दूसरों की भलाई करनेवाला उत्तम गुणवाला है । भगवान स्वयं लक्ष्मीपति होने पर भी अपने आश्रित इन्द्र के लाभ के लिए (स्वयं हानि उठाकर) वामन रुप धारण कर याचक बने । यों तो पुरुषोत्तम विरुदधारी भगवान स्वभाव से उत्तम पुरुष हैं ।

स्वयं नष्ट-प्राय: होने पर भी दूसरों की भलाई करनेवाले उत्तमन । अपना नुकसान न पहुंचाते हुए दूसरों का उपकार करनेवाला मध्यम है । अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि पहुँचानेवाला अधम । अपने लिए कोई लाभ न होने पर भी, नुकसान ही होने पर भी, दूसरों की हानि पहुंचानेवाले लोगों को क्या कहा जाय? (पॅरियवाच्चान् पिळ्ळै)

"ऐसे उत्तम पुरुष का नाम संकीर्तन कर, बडे सबेरे स्नान कर, व्रत का अनुष्ठान करने से लोक की सभी पीडाएं शांत हो जाती हैं । देश का योग-क्षेम होता है"-

प्रतिमास तीन वक्त वर्षा-अर्थात् दस दिन में एक बार - इससे खेत में उपज बढ़ती है । फ़सल संवृद्ध होकर आकाश तक बढ़ती है । खेतों में हमेशा पुष्कल पानी होने से शालियों (धान के पौधे) के बीच मछली सानन्द खेलेंगी । कुवलय आदि पुष्प खिलेंगे, जिनमें सुन्दर भ्रमर मधु पीकर मस्त पडे निद्रा करेंगे, जैसे पुष्प शय्या पर सोते हैं । यहां कुवलय पुष्प से महालक्ष्मी की दृष्टि-वीक्षण सूचित है । परम भक्तजन लक्ष्मी की कृपा का पात्र होकर श्रेयपूर्ण रहते हैं ।

पुष्ट आहार मिलने के कारण और कृष्ण की देख-रेख में गायें पुष्ट होती हैं । गोष्ठ में प्रवेश कर गोप लोग शांति से दूध दुहने बैठते हैं । पुष्ट स्तनों को खेंचने मात्र से परम उदार (बडी) गाएं अनेक घडों को दूध से भर देंगी । घडों

की कमी होती है - न दूध की। इस प्रकार देश में निरंतर पुष्कल ऐश्वर्य रहेगा। देश का विकास अपेक्षित है। जन हित की और विकासोन्मुख राष्ट्रीय भावना है।

**स्वापदेश:**

यज्ञ आदि स्वर्ग की प्राप्ति के लिए किए जाने पर भी आनुषंगिक (लौकिक) फल भी प्राप्त होता है। उसी प्रकार पुरुषार्थ प्राप्ति की प्रतीक्षा में भगवान की भक्ति करेंगे तो, पुरुषार्थ की प्राप्ति के अलावा ऐहिक फल भी प्राप्त होंगे।

## वर्षागीत

आऴि मऴैक् कण्णा, ! ऑण्डु नी कै करवेल्,
आऴियुऴ् पुक्कु, महन्दुर्काडु, आर्त्तु एरि,
ऊऴि मुदल्वन् उरुवम् पोल् मय् करुत्तु,
पाऴियन् तोऴ् उडैप् पर्पनापन् कैयिल्
आऴि पोल् मिन्नि, वलम्पुरि पोल् निन्डु आदिरन्दु
ताऴादे शारङ्गम् उदैत्त चरमऴैपोल्
वाऴ उलहिनिल् पेय्दिडाय्, नाङ्गलुम्
मारहऴि नीराड महिऴ्न्दु - एलोर एम्पावाय् ॥ (4)

मार्गशीर्ष स्नान करके व्रत का अनुष्ठान करने से देश की भलाई होगी। अर्थात् यथा समय पर्याप्त वर्षा होगी और देश धन-धान्य से संपन्न होगा।

संबोधन है "आऴि मऴैक् कण्णा" ("कण्णा" तमिऴ नाम - प्रेम सूचक) हे वर्षा के निर्वाहक प्रिय पर्जन्य देव ! प्रेम एवं प्रशंसा पूर्वक स्तुति है। जैसे शरीर के लिए आँख प्रधान है, उसी प्रकार पर्जन्य देव बरसात के प्रधान हैं - इसलिए "कण्णा"। पर्जन्य देव लोक का ताप हरण करनेवाला है। इस उत्तम स्वभाव के कारण भगवान ने उनको उत्तम सेवा का अधिकार दिया है।

गोपियों से प्रसन्न होकर पर्जन्य देव ने उनसे "योग्य सेवा की प्रार्थना की। यह सुनकर गोपियां उनके औदार्य गुण की प्रशंसा करती हुई - उनका कर्तव्य काम भी बताती हैं। मेघ प्रतिफल की चिंता किए बिना संसार में सर्वत्र जल बरसाता है। गोपियां इस काम में उनको प्रोत्साहित करती हैं।

गोपियों को स्वभाव से मेघ के दर्शन से मेघश्याम् भगवान की याद आती है। मेघ की आवाज़ से संतापहर पांचजन्य का, बिजली का प्रकाश चक्रायुध का

स्मारक होता है। आखिर वर्षा की धारा शारंग धनुष से निकलनेवाली बाण-वर्षा का स्मरण कराती है। वे कहती हैं - ऐसा बरसो कि संसार में सब लोग प्रसन्न हो जाएं, और शांति से जीवन बिताएं - ''वाऴ्'' - तमिऴ् शब्द का सुन्दर प्रयोग है।

बाण वर्षा सब को नष्ट कर देती है; लेकिन वर्षा की धारा तो सब को जीवन देनेवाली है।

**तुम्हारा अब कर्तव्य काम यह है कि-**

''समुद्र के अन्दर प्रवेश कर, खूब जल लेकर गर्जन करते हुए, (आकाश में) ऊपर चढ़कर, काल इत्यादि समस्त पदार्थों के कारणभूत भगवान के श्री विग्रह के समान, नील वर्ण पाकर, विशाल एवं सुन्दर भुजवाले पद्मनाभ भगवान के हाथ में विराजमान चक्र की भांति चमककर, दक्षिणावर्त शंख की तरह, बडी सुन्दर आवाज़ कर, भगवान के हाथ में विभूषित शार्ङ्ग-धनुष से निकलनेवाली शर-धारा की तरह संसार की संपन्नता के लिए बिना विलंब बरसो, जिससे संसार के सब लोग प्रसन्न हो जाएं। हम भी प्रसन्नता के साथ मार्गशीर्ष स्नान करें।

यहां एक विशेष बात है कि संसार में जो उपमेय हैं, वे गोपियों के लिए उपमान हैं; जो उपमान हैं, वे उपमेय। इसके अलावा वे कृष्ण की रूप-सुन्दरता से बखूब परिचित हैं।

कृष्ण का शरीर जलद सदृश न कहकर, कहती हैं - जलद का वर्ण कृष्ण के वर्ण के समान है। पर्जन्य देव से कहती हैं - कृष्ण के समान वर्णवाले वे, चक्र के समान चमके, शंख के समान गरजे, और शार्ङ्ग-धनुष की शर वर्षा के समान बरसे। बाण-वर्षा से तो नाश होता है। लेकिन तुम सब को संजीवन प्रदान करने, भगवान के प्रेम-वर्षा की तरह ऐसा बरसो कि देश संपन्न हो। ''लोक की संपन्नता'' के लिए बरसो इस पर ध्यान देना है।

इस सूक्ति के संदर्भ में हमारे पूर्वज इसका अनुमान करते हैं कि उस वक्त - (अवतारिका में भी बताया गया है) देश में पर्याप्त बरसात का अभाव रहा होगा। देश में अकाल दूर करने, पर्याप्त बरसात के लिए व्रत करने का आदेश व्रज के वृद्ध गोपों ने इनको दिया है। श्री कृष्ण ने इस व्रत को संपन्न करा देने का आश्वासन दिया है। गोपियां कहती हैं कि खूब पानी बरसने से हमें स्नान करने पर्याप्त निर्मल जल मिल जाए। हाँ, बरसात की तरह श्री कृष्ण का अनुग्रह चाहती हैं। यह उनकी कामना है। हे हमारी अनुपम देवी ! - अपनाओ।

**स्वापदेश:**

यहां भागवत् लोगों का महत्त्व बताया जाता है। जो भगवान के भक्त हैं, व्यामोही हैं, जिन्होंने प्रपत्ति का अनुष्ठान किया है - उनको दूसरे दैव स्वयं फल देंगे। अर्थात् हम भगवान के चरणों में शरणागति करेंगे तो दूसरे दैव हमारे सभी आवश्यक कार्य स्वयं करा देंगे।

**नाम संकीर्तन की महिमा :**

मायनै मन्नु वड मदुरै मैन्दनैत्
तूय पॆरुनीर् यमुनैत् तुरैवनै
आयर् कुलत्तिनिल् तोंडूम् अणिविळक्कैक्
तायैक् कुडल् विळक्कम् शॆय्द दामोदरनैत्
तूयोमाय् वन्दु नाम् तूमलर् तूवित् तॊळुदु,
वायिनाल् पाडि, मनत्तिनाल् चिन्दिक्क,
पोय पिळैयुम् पुहुतरुवान् निन्ड्रनवुम्
तीयिनिल् तूशु आहुम्; चॆप्पु - एलोर ऎम्पावाय्। (5)

हम संसार में देखते हैं कि कभी-कभी उत्तम सेवा कार्य में भी बाधाएं पडती हैं। गोपियों में से एक यह प्रश्न उठाती है कि अब हम पवित्र व्रत का अनुष्ठान करने वाली हैं। न जाने प्रारब्ध कर्म या पूर्व जन्म-कृत पापों से भी हमारे संकल्पित व्रत में कोई विघ्न हो। पहले विघ्नों को दूर करने कोई व्रतानुष्ठान कर फिर व्रत का आरंभ करे क्या?

इस शंका का समाधान प्रकृत सूक्ति में दिया जाता है। गोपियां इसका समाधान देते हुए व्रत पर अपना अटल विश्वास एवं ज्ञान प्रकट करती हैं। हमें विघ्न-बाधाओं को रोकने कोई दूसरे अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। इसलिए कि - अब हाल में भगवान का कैंकर्य एवं उनकी अनन्य सेवा प्राप्त करने की कामना से किए जानेवाले व्रत के अनुष्ठान में अगर कोई विघ्न पडनेवाला हो तो, वह स्वयं व्रत की महिमा से ही दूर हो जाएगा।

''अत्याश्चर्य गुण, नित्य भगवत् संबंध प्राप्त मथुरा नगर के स्वामी, मथुरा नगर में अवतीर्ण, परप पवित्र जल प्रवाह संपन्न यमुना तट विहारी, गोपकुल में संपन्न मंगल दीप सदृश, एवं माताजी की पेट के यशोवर्धन, भगवान श्री कृष्ण की सन्निधि में समीप पहुंचकर, तन, मन, वाणी से पवित्र होकर श्रेष्ठ पुष्पों को समर्पित कर, भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हुए, मुख से आपका नाम संकीर्तन/स्तुति

करेंगी तो, विघ्न बाधा ही नहीं, बाधा डालनेवाले अतीत काल के सभी पाप एवं आगे किए जानेवाले पाप (कोई पाप करें तो) आग में प्रक्षिप्त कपास के समान भस्म हो जाएंगे। कोई पाप हमारे पास म टिकेगा या लगेगा।

इस पद के पूर्वार्द्ध में श्री कृष्ण के दिव्य मंगल विग्रह का सुन्दर वर्णन है। इसके अलावा नाम संकीर्तन के उत्तम मार्ग पर प्रकाश डाला जाता है। पहले गोपियां ''मायन्'' बोलती हैं। भगवान के सभी कार्य माया से भरे हैं। अर्थात् आश्चर्यजनक हैं। वैकुंठ के अधिपति, लक्ष्मीपति होते हुए भी, भगवान गोप जनों की व्रजभूमि - उत्तर मथुरा में अवतीर्ण हुए। वे ही उस नगर के स्वामी हैं। अवतीर्ण होते ही अपने पिता के हाथ पैर से, हथकडियां अपने आप निकल/खुल जाती हैं। बचपन में ही कंस के द्वारा उन्हें मारने भेजे गए कई असुरों को और मथुरा में ही कंस को भी मार डालते हैं। लेकिन गोकुल में सर्व सुलभ बनकर मक्खन चोरी आदि उनकी कई अद्भुत बाल लीलाओं का स्मरण दिलाता है ''मायन्'' शब्द।

शंख चक्रधारी होकर अवतार करना, माता की प्रार्थना पर उस रूप का उपसंहार करना, गोकुल पहुंचना आदि अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मक्खन की चोरी करना, माता से पकड़ा जाना, रस्सी से बांधा जाना आदि विलक्षण गुण ही नहीं, लेकिन उनके सौलभ्य को भी प्रकट करते हैं।

उत्तर मथुरापुरी नगरी का बडा वैभव कहा जाता है। उत्तर मथुरा कृष्णावतार के समय में ही नहीं, बहुत प्राचीन काल से ही भगवत् संबन्ध के कारण वैभव शाली शहर है। कहा जाता है कि वामन भगवान का सिद्धाश्रम यहीं पर था। असुरों को मारकर (त्रेतायुग में) शत्रुघ्न ने इस नगरी को बसाया था।

यमुना का प्रभाव भी बताया जाता है। कृष्ण की कई लीलाएं यमुना तट पर या यमुना नदी में घटी। भगवान यमुना तट विहारी हैं। यह यमुना परम पवित्र है।

गोप कुल में अवतीर्ण मंगलदीप सदृश, अन्धकारमय दुःख को दूर कर सब को आनन्द पहुँचाने वाले भगवान के सभी कल्याण गुण यहां प्रकट होकर चमकते थे, विशेष रूप से सौलभ्य। जो वेदों में छिपे हैं, वे गाय-बछडों के पीछे चलते और गोप-गोपियों के सम्मुख लीलाएं करते थे।

माता का यश बढानेवाला, दामोदर प्रसंग से माता का यश बहुत बढ गया। इस चरित्र को देखनेवाले (माता ने कृष्ण को पकड़कर रस्सी से बांधकर एक उलूखल में बांध दिया ; इससे दामोदर ; दाम = रस्सी) सब यशोदा के भाग्य को सराहने लगे कि भगवान को गोपी यशोदा ने अपने वश में कर लिया है।

भगवान का स्मरण ही हमको पवित्र बनाता है। हमारे चित्त को शुद्ध करता है। यहां शुद्धि का मतलब सिर्फ शारीरिक नहीं - लेकिन प्रधानतः मानसिक। सतत भगवान के स्मरण एवं मनन करनेवालों के मन की पवित्रता के बारे में क्या कहा जाए ? पुष्प आदि की शुद्धि भी पुष्पों को समर्पित करनेवाले व्यक्ति की मानसिक शुद्धि के स्वरूप (भावना) पर निर्भर है।

यहाँ पवित्र भावना के संकेत स्वरूप, चरणारविन्दों में प्रपत्ति कर, पुष्पों को समर्पित कर, वाणी से स्तुति करना, मन से भगवान का चिंतन - नाम स्मरण/नाम संकीर्तन की बात है। भगवत् विषय में शुद्ध अन्तःकरण, तन, मन एवं वाणी से लगने के कारण समस्त पापों का दूर होना, अतः विघ्नों का स्वयं शांत होना, संकल्पित व्रत का समंगल सफल होना, ये सब अनायास हो जाएंगे। हम भगवान के कैंकर्य और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

उक्त प्रकार आचार्यों की सेवा भी हमें समस्त पापों को दूर कर पवित्र करेगी और कल्याणकारी होगी। इष्ट सिद्धि भी अपने आप हो जाएगी। यह आचार्य महिमा है।

उपरोक्त शंका समाधान हम सब संसारियों के लिए भी है। उपरोक्त पांच सूक्तियों में व्रत अनुष्ठान की तैयारी एवं लक्ष्य पूर्ति के (श्री कृष्ण की प्राप्ति एवं उनकी नित्यसेवा) साधनों के संपादन का वर्णन है। आगे की दस सूक्तियों में इन साधनों को लेकर, व्रत में शामिल होने के लिए इच्छुक अपनी प्रत्येक सखी के घर जाकर प्रबोधन गीत सुनाकर उनको जगाती हैं, जो अब तक गोष्ठी में नहीं पहुंची हैं।

**स्वापदेश :**

हम भगवान से प्रपत्ति करेंगे तो उसके कारण सिद्धोपाय वह भगवान अज्ञान से हमारे पूर्वकृत सभी पापों को और भविष्य के कोई पाप हो - उसको भी, अर्थात् सभी पापों को दूरकर, कपास की धूलि के समान भस्म कर देंगे। हमें सब कुछ प्रदान करेंगे।

## उषाकाल हो गया

पुळ्ळुम् शिलम्बिन काण्, पुळ् अरैयन् कोयिलिल्
वळ्ळै विळि शंकिन् पेर्-अरवम् केट्टिलैयो?
पिळ्ळाय् ! एळुन्दिराय्, पेय् मुलै नञ्जु उण्डु
कळ्ळच् चकडम् कलक्कु अळियक् काल् ओच्चि

वळ्ळत्तु अरविऱ् तुयिल् अमरन्द वित्तिनै
उळ्ळत्तुक् कॊण्डु मुनिवर्हळुम् योगिहळुम्
मॆळ्ळ ऎऴुन्दु अरि ऎन्ऱ पेर् अरवम्
उळ्ळम् पुहुन्दु कुळिर्न्दु - एलोर ऎम्पावाय् ॥ (6)

पूर्ववर्ती पांच सूक्तियां तिरुप्पावै प्रबन्ध की अवतारिका (व्रत की तैयारी) रूप में हैं । व्रत करने इच्छुक गोपियां (बालिकाएं) गोदा देवी के नेतृत्व में इकट्ठी हुई थीं - बडी गोष्ठी थी । फिर अपनी तरफ़ देखने पर उनको मालूम पडा कि गोकुल की सभी गोपियां अब तक नहीं आ पहुंची हैं । उनको बुलाने का मनोहर प्रकार आगे की दस सूक्तियों में वर्णित है । अर्थात् विशिष्ट गोपियों का प्रबोधन है । हृदयग्राही एवं भाव गर्भित सूक्तियां हैं । इनमें उस ज़माने की देश की संपन्नता, समाज की स्थिति, स्वार्थ को छोड़कर लोक सेवा की श्रेष्ठता, संघ-शक्ति, स्त्रीयों का स्वभाव आदि का उत्तम परिचय मिलता है । बुलाने/जगाने का ढंग बडा मनोवैज्ञानिक है । प्रणय मधुर वचनों से उनको बुलाती हैं । उनके उत्तम गुणों की प्रशंसा करती हैं, कभी-कभी प्रणय कोप भी प्रकट करती हैं । इस प्रकार सभी गोपियों को लेकर, श्री गोदा को आगे करके, श्रीकृष्ण के यहां पहुंचती हैं और कैंकर्य श्री प्राप्त करती हैं ।

उनका यह दृढ विचार है कि मीठी चीज़ का या आनन्द का, अकेले अनुभव नहीं करना चाहिए । यह शास्त्र सम्मत नहीं है । दूसरों से मिलकर ही उसका सेवन करना चाहिए । गोपियों के लिए मार्गशीर्ष व्रत तो श्रीकृष्णानुभव है । भगवान को "परम भोग्य" मानना भक्तों का स्वभाव है । इसलिए परम मधुर भगवान को अनुभव करने दूसरों को भी बुलाना आवश्यक है । भक्तों का मिलन एवं सत्-संग उनकी शक्ति एवं उत्साह को बढाता है । इन दस गीतों में एक के बाद दूसरे का क्रमिक विकास है । इसलिए यह प्रकट है कि श्री कृष्ण को भी इनकी प्रार्थना माननी होगी । इनका कैंकर्य स्वीकार करना होगा । श्री कृष्ण तो पहले ही से इनके अनुकूल हैं । इसके अलावा लोक सेवा में - नेतागण और दूसरों के कर्तव्य का स्पष्ट चित्र है ।

उद्बोधन का अर्थ आलस्य की नींद से जगाना नहीं । जैसे हमारी परंपरा है कि भगवान की सन्निधि एवं राजमहलों में प्रबोधन गीत गाए जाते हैं । उसी प्रकार गोपियों के यहाँ प्रबोधन गीत सुनाकर उनको भी अपने साथ लेती हैं । सारांश यह है कि सब गोपियां मिलकर भगवदानुभव करना चाहतीं हैं ।

यह समझना ठीक नहीं होगा कि अब तक जो गोष्ठी में नहीं आ पहुंची हैं, उनमें कृष्णानुभव की कमी है। यह बिलकुल सत्य है कि कृष्ण प्रेम के संबन्ध में गोपियां एकदम समान होती हैं। सभी गोपियां भगवान के गुणानुभव में तत्पर हैं। किन्तु भक्तों के भगवत् गुणों का अनुभव बड़ा विचित्र है।

भगवान किसी को मोहित कराते हैं - किसी को चलाते हैं। किसी को नचाते। कोई मूर्च्छित होती है। कोई चिल्लाती है। इस न्याय से यह स्पष्ट है कि कृष्णानुभव में कोई गोपी मूर्छित सरीखी शय्या पर लेट रही है। कोई दूसरी श्री कृष्ण से मिलने की त्वरा में है, दूसरों को जल्दी बुला रही हैं। जगा रही हैं। हां सब की हार्दिक भावना है - मार्गशीर्ष व्रत-अवगाहन एवं कृष्णानुभव है।

(यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्री नम्माळ्वार (तिरुवायमॊळि में) श्री कृष्ण के ऊखल बंधन के प्रसंग में उनके सौलभ्य का अनुभव करते हुए छः महीने तक मूर्च्छित रहे।)

इस प्रकार अब तक न पहुंची गोपियों के यहां जाकर मधुर एवं भगवान के कतिपय लीलाओं के मनोहर वर्णन की वाणी में सब को जगाकर बड़ी गोष्ठी बनाकर श्री कृष्ण के महल में पहुंचती हैं। उषाकाल होने के कतिपय चिन्ह भी बताए जाते हैं। प्रकृत पद्य में गोपियां एक सखी के यहां जाकर (उसको जगाते हुए) कहती हैं।

पिळ्ळाय्! यानी हे बाले ! संबोधन से यह तात्पर्य है कि इस गोपी का भगवदानुभव नया है। अभी हाल में श्री कृष्ण से मिलने लगी है।

"पक्षी उठकर मनोहर कल कल ध्वनि करने लगे। पक्षिराज के मंदिर से उषा काल होने के सूचक शुभ आह्वान शंख की बडी आवाज़ तुमने नहीं सुनी? उठो ! सतत भगवान के ध्यान में ही निमग्न मुनि एवं योगी जन उठकर ऊंचे स्वर में "हरिः, हरिः" नामोच्चारण कर रहे हैं। प्रातः काल हो गया है। तुम भी जागो और हमारी गोष्ठी में सम्मिलित हो जाओ।"

भारत वर्ष में मंदिर संस्कृति की प्राचीन परंपरा है। दिव्य प्रबन्ध की यह एक विशेषता है कि हर दशक में मंदिर का प्रस्ताव अवश्य रहता है।

यहां सबेरा होने के तीन लक्षण बताए जाते हैं।

(1) पक्षियों का कलरव निनाद।

(2) पक्षिराज मंदिर की शंख ध्वनि।

(3) योगियों का हरि नामोच्चारण।

भगवान के गुणानुभव में ही लीन महात्मा पुरुषों में मुनि, योगी करके दो विभाग बताये जाते है । कोई मुनिगण (भरत की तरह) गुणानुभव करने में ही लीन हैं । दूसरे लोग (योगी) सेवा करने में उत्सुक रहते हैं । (लक्ष्मण की तरह)) योगी और मुनिगण क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करनेवाले (बीजभूत, सकल जगत का कारणभूत) भगवान को अपने हृदय में धारण कर, उनकी लीलाओं का स्मरण करते हुए सो जाते हैं । सबेरे उन्हीं गुणों का, लीलाओं का अनुसन्धान करते हुए उठते हैं और अपने नित्य अनुष्ठान के लिए निकलते हैं । ऐसी दो लीलाओं का प्रसंग यहां उल्लिखित है -

(1) पूतना स्तन्य पान

(2) शकटासुर भंजन

पिशाची पूतना के स्तन पर लिप्त विष पीने वाले, वंचक शकटासुर (नकली गाडी) को लात मारकर उसको शिथिल करनेवाले । दोनों बालकृष्ण की लीलाएं हैं । श्री कृष्ण को कपट से मारने के लिए कंस ने दुष्ट दैत्यों को ब्रज में भेजा । उसमें एक पूतना भी है । जब वह कपट वेष बनाकर श्री कृष्ण को विष लिप्त स्तन्य दिया तब शिशु ने स्तन्य पीते-पीते पूतना के प्राणों को भी चूस लिया । उसका उद्धार किया ।

नंदगोप के यहां कई गाडियां थीं । उनमें से एक गाडी के नीचे पालने में, यशोदाजी श्री कृष्ण को सुलाती । एक दिन एक असुर ने उस गाडी में आविष्ट होकर, श्री कृष्ण पर पड़कर मारने का प्रयत्न किया । श्री कृष्ण जाग पडे । भूख के मारे रोने की भावना से, पैरौं को ऊपर उठाकर लात मारा जिससे गाडी चूर चूर हो गयी और असुर भी मर गया ।

क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करनेवाले, सकल जगत का बीजभूत भगवान को अपने हृदय में रखकर मुनि एवं योगी जन धीरे से उठकर 'हरि, हरि' बोलते हैं । अर्थात् वे अपने हृदय में विराजमान भगवान को संभालते हुए उठते हैं कि उनको कोई असुविधा न हो जाए । समस्त दुःख एवं पापों का हरण करनेवाले ''हरिनाम'' की बडी ध्वनि हृदय में प्रवेशकर शिशिरित कर रही है । आह्लादित करती है ।

भगवान के सभी नाम पवित्र हैं । हमारी परंपरा है कि महात्मा लोग एक एक समय में एक एक नाम स्मरण करने का, लेने का औचित्य मानते हैं ।

जैसे (1) यात्रा प्रसंग में केशव कहना ।

(2) भोजन प्रसंग में गोविन्द का नाम बोलना ।

(3) शय्या में लेटते समय माधव कहना।

(4) उठते वक्त हरि नाम लेना।

हरि नाम संकीर्तन का महत्व भी बताया जाता है।

अब यह समझने की बात है कि गोपियों के गीत से (भीतर शयनित गोपी) तत्काल शय्या से उठकर सखियों की गोष्ठी में पहुंच गयी।

**स्वापदेश :**

वैष्णव लोगों को भगवान का, उत्तम भोग्य रूप में अनुभव करना चाहिए। जो इस विषय में प्रयत्नशील नहीं है, उसको भी उपरोक्त प्रकार प्रयत्नवान बनाना चाहिए। ऐसा लगता है - आंडाळ की सूक्तियों (6 से 15) में इस प्रकार की उद्बोधन वाणी है। यह आचार्यों का विचार है।

## गोपियों में एक मणि

कीचु कीचु एन्ड्रु एङ्गुम् आनैच्चात्तन् कलन्दु
पेशिन पेच्चु अरवम् केट्टिलैयो? पेय्प्पेण्णे !
काशुम् पिरप्पुम् कलकलप्पक् कैपेर्त्तु
वाश नरुङ्कुळल् आय्च्चियर् मत्तिनाल्
ओशै पडुत्त तयिर्-अरवम् केट्टिलैयो?
नायकप् पेण्पिळ्ळाय् ! नारायणन् मूर्ति
केशवनैप् पाडवुम् नी केट्टे किडत्तियो?
देशम् उडैयाय् ! तिर- एलोर् एम्पावाय्। (7)

लंबे समय से भगवदानुभव में निमग्न, लेकिन नया अनुभव जैसे प्रकट करनेवाली एक गोपी (नायकमणि) को जगानेवाला पाशुरम है। वह तो भक्ति से व्यामोहित है। हे मुग्ध बालिके ! संबोधन से यही प्रकट है। इस दिव्यसूक्ति में जगायी जानेवाली गोपी के तीन विशेषण दिए जाते हैं। ऊपर एक के बारे में उल्लेख है।

दूसरा है - "हमारी गोष्ठी की नायिका बननेवाली हे बाले"। तीसरा है - अर्थात् आखिर बोलती है - हे "तेजस्विनी" गोपी ! यह गोपियों की गोष्ठी की एक नायिका मणि है। सब से पहले आकर सब को संभालना इसका कर्तव्य था। तेजस्विनी का मतलब है - यह गोपी, इनके मुंह से नाम संकीर्तन सुनकर, आनन्द परवश होकर, लेटे-लेटे भगवान के व्यामोह में है। खिडकी से देखने पर

उसका शरीर बड़ा तेजोमय, उज्जवल दीख पडता है। (भगवान के व्यामोह के कारण शायद सबेरा होने का बोध नहीं हुआ है।) इसकी गोष्ठी में आ जाने पर अंधकार के बीच प्रकाश जैसे होगा। जब यह अन्दर से ही प्रभात हो जाने का लक्षण पूछती है तब, गोपियां (प्रभात हो जाने के) तीन लक्षण बताती हैं।

1. भारद्वाज पक्षियों की कलरव ध्वनि। सर्वत्र मिलकर "कीचु कीचु" ऐसा कलकल करनेवाले भारद्वाज पक्षियों के भाषण ध्वनि को क्या तुमने नहीं सुना?

2. गोपियों के द्वारा दधि-मंथन की ध्वनि। सुगन्ध भरित केशवाली गोपियों के अपनी जाति के उचित आभूषण कल-कल ध्वनि करें, इस प्रकार बलात्कार से मथानी के मंथन की ध्वनि।

3. नाम संकीर्तन की ध्वनि। भगवान नारायणमूर्ति केशव का नाम हम से कीर्तन किए जाने पर, उसको सुनने पर भी क्या तुम अभी सो रही हो?

प्रथम आह्वान में इनकी क्रोध- भावना प्रकट होती है; दूसरे में उस गोपी की तारीफ़ करती हैं। तीसरे में प्रेम प्रकट करनेवाला विरुद।

भारतद्वाज पक्षियों का कलरव तो प्रभात होने का एक स्वाभाविक लक्षण है। गोपियों के बड़े परिश्रम से मथानी से मंथन करने से निकलनेवाली दधि-मंथन की ध्वनि, तथा नाम संकीर्तन की ध्वनि (गोपियां नाम संकीर्तन करते हुए दधि मंथन करती हैं) ये तीनों ध्वनियाँ व्रज में सर्वत्र व्याप्त है।

गोपियों के द्वारा परिश्रम एवं क्लेश करने का मतलब है कि श्रीकृष्ण के विरह जनित थकावट एवं क्लेश से वे मंथन करते २ अशक्त बन जाती हैं। लेकिन वे अपने कर्तव्य (काम) से विमुख नहीं हो सकती। जब श्री कृष्ण आ जाता है, तब बालकृष्ण कई प्रकार की लीलाएं करता है, जिससे श्री कृष्ण के उपस्थित होने पर भी मंथना कठिन हो जाता है। हां, यह तो गोपियों के लिए नित्यानुष्ठान जैसा है।

इसके बाद भी जब वह प्रभात हो जाने की बात में शंका प्रकट करती हैं, तब गोपियां कहती हैं -

अच्छा ! सबेरा हो गया या नहीं। अब यह प्रश्न नहीं है। हम सब एकत्रित होकर भगवान केशव का कीर्तन करते हुए तुम्हारे घर के द्वार पर खड़ी हैं। तुम तो गोपियों के बीच नायिकामणि, प्रसिद्ध है। तुमको तुरन्त आकर हमको संभालना है। हे तेजस्विनी - शीघ्र "खोलो" आचार्य लोग "खोलो" शब्द का यह अर्थ भी बताते हैं कि पहले अपना मुंह खोलकर उत्तर दो, जिससे

हमारा दुःख दूर हो । कपाट खोलकर बाहर आ जाओ । हम तुम्हारे तेजस्वी विग्रह के दर्शन करें आदि ।

दूसरी गोपियां कई दिन से इनकी (इस घरवाली गोपी की) कृष्ण भक्ति से परिचित हैं, उसकी लगन और तल्लीनता से भी । फिर भी उनको यह नयी जानकारी सी लगती है । सच्ची मित्रता, माधुर्य, प्रेम एवं आत्म-ज्ञान हमेशा नवीन ही लगता है । नयापन है । कहने की आवश्यकता नहीं कि वह तुरन्त आकर गोष्ठी में शामिल हो जाती है ।

**स्वापदेश :**

भगवत्-विषय, भक्ति के संबन्ध में यहाँ एक उत्तम विचार बताया जाता है कि अगर कोई इस संबन्ध में भक्ति एवं नाम संकीर्तन भूल जाते हैं तो उन्हें याद दिलाकर, जगाकर, कैंकर्य में लगाना चाहिए ।

## अरुणोदय हो गया

कीळ्वानम् वॆळ्ळॆन्ड्रु, ऍरुमै चिरु वीडु
मेय्वान् परन्दन काण्;मिक्कु उळ्ळ पिळ्ळैहळुम्
पोवान् पोहिन्ड्रारैप् पोहामाल् कात्तु उन्नैक्
कूवुवान् वन्दु निन्ड्रोम्; कोतूहलम् उडैय
पावाय् ! ऍऴुन्दिराय्, पाडिप् परै कॊण्ड्रु
मा वाय् पिळन्दानै मल्लरै माट्टिय
देवादि देवनैच् चॆन्ड्रु नाम् शेवित्ताल्
आवा ऍन्ड्रु आराय्न्दु अरुळ् - एलोर् ऍम्पावाय् ॥ (8)

अरुणोदय (उषाकाल) के वक्त सन्ध्या प्रकाश में पूर्व दिशा उज्जवल दीखती है । उसी प्रकार मनमें पवित्र प्रकाश पाकर, कृष्ण की एक अंतरंग सखी का उद्बोधन है । इनका विश्वास है कि उसकी उपस्थिति से भगवान शीघ्र उनपर अनुग्रह करेंगे ।

संबोधन है - हे कुतुहलवाली बाले !

"कुतूहल" शब्द का आशय" अधिक आशा है । यह आशा दो तरह की हो सकती है । (1) हे भगवान के विषय में अत्यधिक आशा रखनेवाली बाले ! अथवा (2) हे भगवान की विशेष आशा का पात्र बननेवाली बाले ! गीता वाक्य से

यह स्पष्ट है कि दोनों आवश्यक है। अर्थात् - भक्त लोग भगवान को प्यार करते हैं और भगवान भक्त को प्यार करते हैं। दोनों ठीक है।

"पूर्व दिशा में सन्ध्या प्रकाश उजाला हो गया। प्रातः काल में ही (दूध दुहने के पूर्व) थोडी देर प्रातः काल का, तुहिनवाली गीली घास चरने के लिए भैंस घर से लगे छोटे बगीचे में निकल गयी है। जाने के लिए प्रस्थित अन्य गोप-बालिकाओं को जाने से रोककर, तुमको भी बुलाकर अपने साथ ले जाने आयी हैं। तुम्हारे घर पर आकर खडी है। अतः तुम शीघ्र उठो और आ जाओ"। हमारा कर्तव्य है कि श्री कृष्ण का यशोगान करना और आप से अपने इष्टार्थ पाना। केशिहंता (केशि नामक घोडे का मुंह विदीर्ण करनेवाले) और मल्लों के संहारक देवदेव श्री कृष्ण के पास जाकर हम उनकी सेवा करेंगी तो, आप हमारी प्रार्थना की अपेक्षा का परिशीलन कर हा! हा! कहते हुए (हर्ष प्रकट करना) हमपर कृपा करेंगे। बड़े प्रेम से हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे।

इस पाशुरम में भी प्रभात होने के तीन लक्षण बताए जाते हैं।

(1) अरुणोदय हो जाना, जिसके कारण पूर्व दिशा में उजाला छा गया।

(2) भैंस का घर से निकलकर घास चरने, घर के साथ लगे - छोटे बगीचे में जाना।

(सूर्योदय के पहले ओस-कण लगा शीतल घास खाना भैंसों के लिए उत्तम माना जाता है। हर घर के साथ लगे एक छोटा बगीचा रहता है। जहां भैंसों को सबेरे छोड देते हैं।

(3) सब गोपियों का अपने व्रतानुष्ठान के पूर्व निश्चित संकेत स्थल के लिए प्रस्थान।

गोपियों की भीड इसके घर के द्वार पर आ पहुंची है - कारण इनको छोडकर नहीं जाना चाहती हैं क्योंकि यह गोपी कृष्ण के लिए बहुत प्रिय है।

"यहाँ" पोवान् पोहिन्द्रारै" यानी "जाने के लिए जानेवाली" (यानी प्रस्थित) शब्द का प्रयोग बडा विलक्षण है। अर्थात् जाने का फल भी जाना ही है। तात्पर्य है कि भगवान के मंदिर में जाना स्वयं फल-रूप ही है। उसके लिए दूसरा फल ढूंढना आवश्यक नहीं। जैसे श्री वेंकटाचल (बालाजी) की यात्रा करना स्वयं प्रयोजन माना जाता है।

यहां श्री कृष्ण की दो लीलाओं का उल्लेख है।

(1) केशिवध - कृष्ण को मारने कंस से भेजा हुआ केशि नामक एक असुर घोडे के रूप में कृष्ण को मारने आया। कृष्ण ने उसके मुंह को दो भागों में चीर डाला। असुर मर गया।

मल्लवध - धर्नुयाग के बहाने कंस ने कृष्ण और बलराम दोनों को मथुरा बुलाया - उनको मल्लों द्वारा मार डालने, लेकिन कृष्ण ने उन मल्लों को और दूसरे असुरों को भी बड़ी आसानी से मार डाला।

देवाधि देवनै - देवाधिदेव कहने से श्री कृष्ण का सर्वेश्वरत्व (परत्व) बताया जाता है ।

''आ'' - ''आ'', हा-हा कहकर हमारे ऊपर कृपा करेंगे । गोपियाँ कहती हैं - आपका नाम संकीर्तन करते हुए अगर हम भक्तवत्सल भगवान के पास जाएंगी तो आप हमसे कहेंगे - अहो गोपियो ! यह तो मेरी भूल हो गयी। मैंने स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हारी अपेक्षा जानने की चेष्टा नहीं की, लेकिन अब धुर्नमास के अतिशीतल प्रातः काल में उठकर, सब सखियों को जगाकर सब आ गयीं न? हा ! हा ! यह तो बड़ा अनुचित हो गया । अब पछताने से क्या फायदा है? शीघ्र कहिए - आप सब कुशल हैं? इतनी दूर आने का क्या कारण है? मैं आप लोगों के लिए क्या करुं ? इससे भगवान और गोपियों का आपसी प्रेम और निकटता का परिचय मिलता है । इससे अपने भक्तों पर भगवान का सीमातीत प्रेम बताया जाता है । भगवान के मुंह से इस प्रकार की मनोहर वाणी सुनना ही परम पुरुषार्थ है ।

इसके अलावा गोपियां यह भी प्रकट करती हैं कि हमारी बातों पर बिना विचारे, सोचे-समझे उसे स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है । तुमको तो हमारे आते ही हडबडाकर शय्या से उठकर तत्काल आना चाहिए था । इसके बाद भी वह उठकर आए बिना कैसे रहेगी? अपनाओ हमारी देवी !

**स्वापदेश**

भागवत लोगों का एक उत्तम गुण बताया जाता है । जो-जो भगवान की भक्ति में लीन है, ऐसे भक्तों को भी साथ लेकर ही भगवान के दर्शन/कैंकर्य के लिए जाना चाहिए ।

**मामा की पुत्री ! मीठी नींद से उठो ।**

तूमणि माडत्तुच् चुट्रम् विळक्कु एरियत्
तूमम् कमऴत् तुयिल्-अणैमेल् कण्वळरुम्
मामान् महळे ! मणिक् कदवम् ताळ् तिरवाय्,
मामीर् अवळै एळुप्पीरो? उन् महळ् तान्

ऊमैयो? अन्ड्रिच् चेविडो? अनन्तलो?
एमप् परुन्तुयिळ् मन्दिरप्-पट्टाळो?
मा मायन् मादवन् वैकुन्दन् एन्ड्र् एन्ड्र
नामम् पलवुम् नविन्ड्र् एलोर् एम्पावाय् ॥ (9)

मामा की पुत्री को जगानेवाली श्री सूक्ति है।

श्री विल्लिपुत्तूर में अवतीर्ण गोदादेवी, व्रज भूमि की गोपी को (कृष्ण भक्ता) अपने मामा की पुत्री मानती है।

अवतारिका में यह कहा गया है कि श्री कृष्ण के विरह से संतप्त गोदा देवी, कुछ शांति पाने श्री कृष्ण एवं गोपियों की विलक्षण लीला का (व्रत द्वारा) अनुकरण करती है। यह व्रत भावना प्रधान है।

गोदा की भावना इतनी गहरी हो गयी थी कि उसका चाल-चलन, बोली इत्यादि, और केश की गंध भी गोपियों के जैसे हो गयी। इस प्रकार (स्वयं एक गोपी बनकर) गोपी भावना की प्रचुरता में, तिरुप्पावै की सूक्तियां उनके हृदय से अनायास प्रवाहित होती हैं। आचार्यों का कथन है कि आंडाळ में गोपी भावना के साथ अपनी निजी भावना का संमिश्रण भी है। भगवद्भक्तों का संबन्ध आत्मा की उन्नति के साधन और कल्याणकारक हैं। स्वयं परम पुरुषार्थ स्वरूप है। आंडाळ भगवान श्री कृष्ण से परिपूर्ण अनुग्रह प्राप्त एक गोपी से अपना ज्ञान संबन्ध ही नहीं, रक्त संबंध का भी अनुभव करती है। सीमातीत भगवत् प्रेम का परिचय देती है।

ये गोपियां समवयस्क एवं आपस में अत्यन्त प्रेम करने वाली सहेलियां हैं। आपस के प्रेमभरे संवाद में प्रशंसा और निंदा दोनों बराबर हैं। उपहास भी प्रेम सूचक होता है।

बराबर बुलाए जाने पर भी उठकर गोष्ठी में शामिल होने में विलंब करनेवाली एक गोपी के बर्ताव पर कटाक्ष है। ''मामा की लड़की'' संबोधन में ही यह प्रकट है। शायद यह बताना चाहती हैं कि उनकी संपन्नता (लौकिक एवं पारलौकिक) के कारण वह जल्दी नहीं आती।

''अत्यन्त पवित्र मणिमय महल में जहां चारों ओर दीप जलते रहें और धूप की गंध फैल जाय, ऐसी दशा में शीतल, मृदुतर एवं शुभ्र शय्या पर शयन करनेवाली हे मामा की पुत्री! (यह संबोधन है) मणिमय किवाड की अर्गला खोलो। इस गोपी का जीवन इतना भोगमय है। कैसे? जहां भगवान विराजमान

हैं, वहीं पर यह संभव है । यह भावना पाशुरम् के प्रथम पद में प्रकट है । इसका औचित्य भी है कि भक्तों की एक नन्ही झोपडी को भी महान प्रासाद कहा जाता है ।

मणिमय किवाड की अर्गला खोलने की प्रार्थना करने पर भी जब वह प्रत्युत्तर तक नहीं देती, तब घर के सामने खडी गोपियों ने देखा कि उसके पास ही उनकी माता भी लेटी है । अब उनसे (माताजी) कहती हैं - हे मामी ! उसको जगा दीजिए । हम इतनी देर से लगातार बुला रही हैं । किवाड खोलना तो दूर, आपकी पुत्री अपना मुंह तक नहीं खोलती । आगे बनावटी आक्षेप एवं गुस्सा प्रकट करती हुई बोलती हैं - तुम्हारी पुत्री क्या गूंगी है? अथवा बहरी है? या आलसी है? क्या मंत्र से बद्ध है - अर्थात् किसी मंत्रवादी ने उसको विशाल शय्या पर ही इस तरह बंधित कर डाला है? ऐसी पडी है जिससे वह बोल न सके, उठ न सके ।

तब माताजी कहती हैं - इस तरह आक्षेप की बातों से क्या लाभ होगा? भगवान् का नाम बोलने से नाम संकीर्तन सुनकर यह कुमारी तत्काल उठकर तुम लोगों की गोष्ठी में पहुंच जाएगी । गोपियां तो नाम संकीर्तन कर रही हैं ।

प्रत्युत्तर में कहती हैं - ''हम महामायन, माधव, वैकुंठ आदि कई नामों का कीर्तन कर चुकीं । दोष हमारे ऊपर नहीं । तुम्हारी पुत्री का उठना ही बाकी है । (अथवा भगवान के नामों का कीर्तन कर) आप अपनी पुत्री को जगा दीजिए ।

यहां भगवान के तीन नामों का उल्लेख है । महामायन, माधव, वैकुंठ । भगवान के प्रत्येक नाम से उनके कतिपय गुण प्रकट होते हैं ।

महामायन की व्याख्या पूर्व के पाशुरम् में भी है । वे स्वयं मायी-मायन-है; अर्थात् अत्याश्चर्य पूर्ण दिव्य लीलाएं/कार्य करनेवाले हैं । हम को भी सांसारिक माया से पार करानेवाले हैं । अपना दर्शन देते हुए यहां अवतीर्ण हैं ।

माधव शब्द का अर्थ है - लक्ष्मीपति । आचार्यों का कथन है कि लक्ष्मीपति होने के कारण, सर्वश्रेष्ट परदेवता हैं । लक्ष्मीपतित्व - परतत्व का एक मुख्य लक्षण है । अर्थात् लक्ष्मी नारायण ही श्री कृष्ण के रूप में यहां अवतीर्ण हैं ।

वैकुंठ शब्द परमपद का वाचक है । वैकुंठनाथ हैं । इसलिए वे भी वैकुंठ पुकारे जाते हैं । मतलब है - सब से सरलता से मिलने का स्वभाव वाले ! नित्य, मुक्त एवं भक्त लोगों को भी विकुंठ कह सकते हैं । वह आपस में मिलते रहते हैं । उनके नायक भगवान वैकुंठ हैं । निष्कर्ष यह है कि परमपदवासी

भगवान यहां भूलोक में रहनेवाले हम भक्तों को छोडने अशक्त होकर, यहीं पर श्री कृष्ण के रूप में अवतीर्ण हैं । तत्काल उनके दर्शन कर उनके कैंकर्य में लगना चाहिए । तुम भी उठकर आ जाओ ।

जब इस तरह समझाकर बोलती हैं, तब वह तुरन्त उठकर गोष्ठी में पहुंच जाती है ।

यह मतलब भी निकलता है कि भगवान का पवित्र नाम दुर्मंत्रों के दुष्प्रभाओं को भी दूर कर सकता है ।

''मामान्'' शब्द स्वामिवाचक है । श्रेयस्कर संबन्ध (गुरु शिष्य का भी) बताया जाता है । भगवान के पुत्र समान अत्यन्त प्रिय भक्त भगवान को एकांत में अनुभव करते हैं । उनसे कहा जाता है - हे गुरुभाई ! आप अकेले शास्त्रचिंतन करने में रुचि छोडकर हम से मिलकर करो । यह इसका परम तात्पर्य हो सकता है ।

**स्वापदेश**

केवल अपने स्वार्थ के लिए अपने लिए मात्र, भगवान का अनुभव करें - यह पर्याप्त नहीं (शायद यह विचार योगियों के प्रति) दूसरों को भी साथ लेकर भगवान का अनुभव करना चाहिए ।)

दुर्मंत्र के प्रति उसके निवारणार्थ. मंत्र के रूप में भगवान के नाम हैं । जहां नाम संकीर्तन होता है, वहां भगवान तत्काल उपस्थित हो जाते हैं ।

## संतोष प्रदायक एक बात बोलो ।

नोर्ट्रुच् चुवर्क्कम् पुहुहिन्ड्र् अम्मनाय् !
मार्ट्रमुम् तारारो वाशल् तिरवादार?
नार्ट्रतुळाय् मुडि नारायणन् नम्माल्
पोर्ट्रप्परै तरुम् पुण्णियनाल् पण्डु ओरु नाळ्
कूर्ट्रत्तिन् वाय् वीळ्न्द कुम्भकरणनुम्
तोर्ट्रुम् उनक्के परुन्तुयिल्तान् तन्दानो?
आर्ट्र अनन्दल् उडैयाय् ! अरुङ्कलमे !
तेर्ट्रमाय् वन्दु तिर - एलोर् एम्पावाय् ॥ (10)

सब गोपियां (जो इनको अपनी गोष्ठी में बुलाने आयी हैं) यह जानती हैं कि यह गोपी आलस्य की नींद नहीं ले रही है । यह पहले ही भगवदानुभव

प्राप्त कर चुकी है - भक्ति परवश में व्यामोह में पड़कर स्वर्ग भोग का अनुभव कर रही है। इस प्रकार अकेले भगवदानुभव करना स्वार्थ है। उनकी शिकायत है कि यह उचित नहीं। इसको भी अपनी गोष्ठी में मिलाकर सब मिलकर कृष्णानुभव की प्रार्थना कर रही हैं। इनके संबोधन से ही इस लक्ष्यभूत गोपी का वैभव प्रकट है। इसमें तीन संबोधन हैं।

(व्रत का) अनुष्ठान समाप्त कर स्वर्ग सुख प्राप्त (यानी व्रत का फल कृष्णानुभव करनेवाली) हे (मां) सखी ! - "अम्मा - तमिऴ शब्द है।" (तमिऴ भाषा में अत्यन्त प्रेम प्रकट करते वक्त संबोधन में "अम्मा" मां - जोडा जाता है।) तात्पर्य है - भगवदानुभव प्राप्त करने हम तो अभी व्रतानुष्ठान करने वाली है। परन्तु तुमको तो भगवदानुभव मिल गया है। तुमको साधन किए बिना ही साध्य (लक्ष्य) प्राप्त है। अर्थात् क्लेश उठाए बिना ही भगवान की निर्हेतुक कृपा तुमको प्राप्त है। यह तुम्हारा अहोभाग्य है। अथवा यह परिहास का वचन भी हो सकता है। कल रात को हमने व्रतानुष्ठान के उद्देश्य से प्रातः काल शीघ्र उठने का संकल्प कर लिया था न? हम सब आ गयी हैं। तुम तो अभी उठी नहीं। जगाए जाने पर भी जागती नहीं। तुम अच्छी तरह व्रत कर सकेगी ! आगे बोलती हैं - तुम तो किवाड नहीं खोलती। क्या एक बार प्रत्युत्तर भी न दोगी। अर्थात् शय्या से उठकर किवाड खोलने में तो तुमको अवश्य कुछ क्लेश होगा। लेटे-लेटे ही सही हमें संतोषदायक एक बात - प्रत्युत्तर देने में कौन सी बड़ी मेहनत है? क्या तुम हमारे लिए इतना भी नहीं कर सकती? उनको आश्चर्य होता है कि यह कुं भकर्ण की नींद में कैसे पड़ी है ?

"सुगन्ध भरित तुलसी माला से अलंकृत सिरवाले नारायण रूपी (एवं) हमसे स्तुत होकर - (हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर) हमारे इष्टार्थ देनेवाले साक्षात धर्मस्वरूपी श्री रामचन्द्रजी से, पूर्व काल में एक समय यम के मुख में गिराए गए (मारे गए) कुंभकर्ण ने भी तुमसे स्पर्धाकर, उसमें हारकर अपनी महानिद्रा को, क्या तुम्हारे लिए दे दिया? हे अत्यधिक निद्रावाली। इसमें तो हास्य ही नहीं, अपनी शिकायत भी है।

इस प्रसंग में रामचन्द्र को दिया हुआ विशेषण बड़ा अर्थपूर्ण है। गोपियां भी इससे परिचित हैं। स्पष्ट है हमारी स्तुति पाकर प्रसन्नता से हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले पुण्यरूपी श्रीमन्नारायण (श्री रामचन्द्र)। ऐसा लगता है - कुंभकर्ण तो नींद की स्पर्धा में तुमसे हार गया। तुम जीत गयी। स्पर्धा की शर्त के अनुसार हारनेवाले की प्रियवस्तु को जीतनेवाला अपना लेता है। नींद की स्पर्धा में कुंभकर्ण हार गया। इस के अनुसार कुंभकर्ण ने तुमको अपनी प्रिय नींद

दे दी । इसलिए कई बार बुलाने पर भी तुम उठती नहीं । यह तो तुम्हारा दोष नहीं । स्पर्धा का? यह गोपियों का रामायण है ।

इतनी बात सुनने पर अंदर शयनित गोपी उठने की तैयारी करती है - आलस्य के मारे हाथ पैर पसारने लगी । अब शिकायत के बाद - प्रशंसा की बारी है - हे अत्यधिक निद्रावाली ! उत्तम आभूषण भूते ! अपने को ठीक संभालती हुई आकर किवाड खोलो । ये सारी बातें सुनकर जब वह गोपी, झट उठकर बाहर आने लगी तब गोपियां (बाहर खडी) कहती हैं- अपने को संभालती हुई आकर किवाड खोलो । इस कथन से इनका स्वाभाविक प्रेम प्रकट है । अर्थात् - शय्या में सोती हुई अवस्था में ही आकर गोष्ठी में मिलना उचित नहीं है । अपने वस्त्र आभूषण आदि को ठीक सजाकर, शांतिपूर्वक संभाल कर सदस्य वेष में आओ । इसमें प्रेम, हास्य एवं उसके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रकट है ।

यह श्रेष्ठ भागवत धर्म कहा जाता है कि भक्ति एवं भगवत् प्राप्ति का आनन्द अकेले में अनुभव न कर सब से सम्मिलित होकर अनुभव करें । यह भी उल्लेखनीय है कि श्री रामानुज ने ''अष्टाक्षर मंत्र'' का उपदेश सब को दिया था।

**स्वापदेश**

इसमें यह शिक्षा दी जाती है कि वैष्णव जन अगर भक्त एवं बडों से मिलते हैं - दर्शन करते हैं - सापेक्षक होकर उनका अनुवर्तन करना चाहिए । तुलसी का महत्व भी बताया जाता है । यह अर्थ निकलता है कि कोई उपाय करके ही स्वर्ग पहुँच सकता है । (यों ही नहीं) स्वयं अकेले भक्ति का आनन्द उठाने के स्थान, दूसरे भक्तों से मिलकर भक्ति का आनन्द उठाना भागवत धर्म है - वैष्णव स्वरूप है ।

## गांव की एक उत्तम गोपी

कर्टुक् करवैक् कणङ्कळ् पल करन्दु
चर्टार् तिरल् अळियच् चन्डु चरुच्-चय्युम्
कुर्टम् ओन्डु इल्लाद कोवलर्तम् पोर्कोडिये !
पुर्टरवु-अलकुर् पुनमयिले ! पोतराय्,
चुर्टत्तुत् तोळिमार् एल्लारुम् वन्दु निन्
मुर्टम् पुहुन्दु मुहिल्वण्णन् पेर् पाडच्
चिर्टाते पेशादे, चल्वप् पण्डाट्टि ! नी
एर्टुक्कु उरङ्गुम् पोरुळ् ! एलोर् एम्पावाच् ॥ (11)

गोकुल में श्री कृष्ण सिर्फ "नन्दगोप कुमार" की स्थिति में ही नहीं लेकिन "गांव का अपना बालक" होकर दिनों दिन वर्धित होता था न?

कृष्ण तो नटखट बालक था। लेकिन यह उत्तम गोपी उस पुरुषोत्तमन् (श्री कृष्ण) के अनुकूल एक भक्तमणि है, जिसकी बड़ी प्रशंसा है। यहां लक्षित गोपी के उत्तम सौन्दर्य का वर्णन किया जाता है। संबोधन है -

"वत्स के समान छोटी उम्रवाली, अनेक गो-गणों से दूध निकालकर, शत्रुओं का पराक्रम नाश करने के लिए, स्वयं (सेना के साथ वहां) जाकर युद्ध करनेवाले, किसी प्रकार के दोष से वियुक्त गोपों के कुल में समुत्पन्न हे स्वर्णलता रूपिणी ! इस प्रकार श्रीकृष्ण के चित्त को भी सर्वथा अपने वश में रखनेवाली परमसुन्दरी एक गोपी की प्रशंसा करती हुई उसको जगा रही है। पहले गोपी के कुल का महात्म्य बताती है। गोपगण अपनी जाति के नियत काम पशुपालन एवं गोसंरक्षण (गो दोहन) में निरत होते हैं।

परमपद में भगवान के नित्य सान्निध्य एवं नित्य कैंकर्य में रहनेवाले मुक्त जन नित्ययुवा रहते हैं। अब वही भगवान परमपदनाथ यहां व्रज में श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हैं। उनके श्री हस्त से पोषित अथवा उनकी देखरेख में रहनेवाली गायों की भी यही हालत है। अतः वत्स के समान छोटी उम्रवाली। (नित्य युवा) वहाँ गायों की इतनी अधिक संख्या होती है कि उनकी गिनती ही नहीं की जा सकती।

दूसरा विशेषण गोपों की प्रशंसा में है। स्वयं शत्रुओं के यहां जाकर, युद्ध कर शत्रुओं का पराक्रम नाश करनेवाले ! इन गोपों का शत्रु कौन होगा? भगवान का शत्रु ही इनका शुत्र है।

यहां ध्यान देने की बात है कि भगवान या आपका भक्त सर्वलोक सुहृद होने के कारण किसी प्राणी को शत्रु कैसे मानेंगे? इसका यह समाधान है कि - भगवान पर द्वेष करनेवाले को भक्त अपना शत्रु मानता है और भक्त से द्वेष करनेवाले को भगवान अपना शत्रु मानते हैं। दोनों के बीच यह एक संकेत जैसा है। दोनों में से एक पर द्वेष करनेवाला दोनों पर ही दोष का पात्र हो जाता है। गोप जन असुरों की तरह कपट युद्ध न कर धर्म-युद्ध करनेवाले हैं - किसी प्रकार के दोष से शून्य है - यह गोपों का तीसरा विशेषण है। इसके बाद लक्षित गोपी के सौन्दर्य का वर्णन करती है।

हे स्वर्णलता रुपिणी ! अपने स्थान में स्थित-अर्थात् वल्मीकवासी सर्प के फण के समान कृश एवं उज्जवल मध्य भागवाली ! हे वन में स्वछन्द विचरनेवाले

मोर के समान हे मनोहर ऐश्वर्यपूर्ण ललनामणि ! उठकर यहां गोष्ठी में आ जाओ ।

"श्री कृष्ण गुणानुरूप संपत्ति प्राप्त कर उससे रमण करनेवाली" इससे लक्षित गोपी का सौन्दर्य और समुदाय शोभा दोनों उल्लिखित है ।

समस्त बांधव एवं सखीजन (मिलकर) यहां पहुंचकर, तुम्हारे घर के आंगन में प्रवेश कर, जब मेघश्याम् श्री कृष्ण के नाम संकीर्तन् कर रही हैं, तब उनके नाम श्रवण मात्र से परवश चित्त होकर हमारे बीच आए बिना इस प्रकार निद्रा करने का कौन सा प्रयोजन होगा? हम नहीं जानती"

तुम्हारी इच्छा के अनुसार बंधु मित्र इत्यादि सभी गोपी जन एवं गोप बालिकाएं, यहां आकर तुम्हारे घर के आंगन में मेघवर्ण श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन् करते हुए, तुम्हारे जागने की प्रार्थना कर रही हैं । इसलिए तुम्हारी श्रेष्ठता सर्वविदित हो गयी । सब के एकत्रित होने से तुम समझ सकती हो कि प्रात: काल हो गया । अत: जागो ।

श्रीकृष्ण को यहां मेघवर्ण कहना बड़ा अर्थपूर्ण है । हम तो मेघवर्ण (भगवान) का भजन कर रही हैं । हे मोरवर्णे ! तुम बाहर आ जाओ । मेघ के दर्शन से, अथवा मेघ गर्जन सुनकर मोर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । आनन्द से नर्तन करने लगती हैं । तुम तो भगवान से बहुत अधिक प्रेम करनेवाली हो । मेघवर्ण कृष्ण के श्रवण मात्र से, परवश चित्त होकर एकदम शयननिद्रा तजकर हमारी गोष्ठी में पहुंचकर, नाम संकीर्तन मेंं शामिल होना चाहिए । अब, इतना भजन सुनने के बाद भी निश्चेष्ट और बिना बोले ही, पडे रहना शोभा नहीं देता । इस महा निद्रा का क्या प्रयोजन होगा? हां - अब ज्ञात हुआ तुम तो ऐश्वर्यपूर्ण ललनामणि - श्रीमती हो न? तात्पर्य है - पूर्वोक्त कथन के अनुसार यह गोपी सौन्दर्यपूर्ण ही नहीं, बल्कि लक्ष्मी विशिष्ट भी है । स्वर्णलता है । स्वर्ण सुन्दर भी होता है और कीमतवाला भी । हम समझ सकते हैं कि वह गोपी आनन्द विभोर नाचनेवाली मयूर सदृश शय्या से उठकर, बडे उत्साह एवं आनन्द के साथ गोपियों की गोष्ठी में पहुंच जाती है । इसका आशय है कि भक्ति के संसार में भी अपने स्वार्थ को दूसरों की सद् इच्छा से सम्मिलित कर रहने की प्रवृत्ति ही उत्तम है । उत्तम वैष्णव भक्त इसीका अनुकरण करते हैं । दूसरों को भी भक्ति मार्ग का अनुयायी बनाकर, अपनी गोष्ठी में मिला लेते हैं ।

यहां आचार्य रामानुज के जीवन का एक प्रसंग उल्लेखनीय है । उनके आचार्य गोष्टि नंबिहल ने (अठारह बार उनकी कडी परीक्षा लेने के बाद) इस शर्त के

साथ उसको अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश दिया कि इस मंत्र को किसी दूसरे को बताना नहीं चाहिए। बताने पर नरक का दुःख भोगना पडेगा। लेकिन आचार्य रामानुज तो सभी पामर लोगों की भी भलाई चाहनेवाले थे। दूसरे दिन सवेरे उस स्थान के मंदिर के ऊपरी (तिरुक्कोट्टियूर-पशुम्पोन मुत्तुरामलिंगम ज़िला) तल्ले पर चढकर गांव के सभी लोगों को ऊंचे स्वर में बुलाया और सब को अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश दिया। जब उनके गुरु को इसका पता लगा तब वे बहुत नाराज़ हुए। गुरु के द्वारा रामानुज को बुलाकर पूछने पर, रामानुज ने बताया कि उपदेश प्राप्त सब लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होगी। सिर्फ मेरा नरक जाना कोई बड़ी बात नहीं। गांव के सभी लोगों की आत्मोन्नति एवं लोक कल्याण की बात, एवं इस दिशा में रामानुज का स्वार्थ त्याग एवं करुणा सुनकर उनके गुरु बडे प्रभावित एवं प्रसन्न हुए और अपने शिष्य रामानुज को गले लगाकर अनुग्रह किया। यही वैष्णव सिद्धांत का मूल तत्व है आत्मा है।

वेदांत का सिद्धांत है कि आत्मोन्नति के लिए संसार का त्याग कर सकते हैं। लेकिन इस उत्तम शिष्य का सिद्धांत मार्ग है - समस्त लोक की उन्नति के लिए आत्मा को भी त्याग कर सकते हैं। कितनी ऊँची उत्तम भावना है। गुरु को इसका दुःख भी हुआ कि पहले उनको यह भावना क्यों नहीं हुई।

**स्वापदेश**

भगवान से जिनका संबन्ध है, (अर्थात भक्त है) ऐसे सत्कुल में जन्मे सत्सन्तान जो भी हों, वे हमारे लिए पूज्य हैं। उन्हें आदर के साथ पूजना चाहिए। भक्ति क्षेत्र में अपनी भलाई दूसरों की भलाई के अनुकूल होनी चाहिए। यहां भी सामाजिक भावना आवश्यक है। दूसरों को सुधारकर अपने साथ ले जाने में असमर्थ (आचार्य) स्वयं भक्ति के आनन्द मार्ग में जा सकना सिर्फ स्वप्न है।

## अभी तो उठो

कनैत्तु इळङ्कट्टु-एरुमै कन्ड्रुक्कु इरङ्गि
  निनैत्तु मुलै वळिए निन्ड्रु पाल् शोर
ननैत्तु इल्लम् शेरु आक्कुम् नर् चॅल्वन् तङ्काय्।
  पनित्तलै वीळ निन् वाशल् कडै पट्रि,
चिनत्तिनाल् तॅन् इलङ्गैक् कोमानैच् चॅट्र
  मनत्तुक्कु इनियानैप् पाडवुम् नी वाय् तिरवाय;
इनित्तान् एळुन्दिराय्, ईदु एन्न पेर् उरक्कम्!
  अनैत्तु इल्लत्तारुम् अरिन्दु-एलोर एम्पावाय।

लक्ष्मण जिस प्रकार सतत अपने बडे भाई श्रीरामचन्द्र की सेवा में लगे रहते थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की सतत सेवा में रहनेवाले एक श्रीमान की बहन का प्रबोधन है

पूर्व के पद में गोपों का अपना स्वधर्म अथवा गो दोहन कार्य करनेवाले का परिचय मिला। अब इस सूक्ति में हाल ही में अपने स्वधर्म को भी छोडकर, श्रीकृष्ण की सेवा में ही रत रहनेवाले का वर्णन है। इस संबन्ध में आचार्यों का कथन विशेष ध्यान देने योग्य है। यह गोप कृष्ण का नित्यानुचर प्रिय सेवक है। यह निरन्तर श्री कृष्ण के परिचरण में रहने से घर का काम संभालने, दूध दुहने आदि के लिए इसे पर्याप्त अवकाश नहीं मिलता था। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मण की तरह अविच्छिन्न भगवत् - सेवा में निरत होने के कारण, अवकाश के अभाव में यह गोप गो-दोहन आदि भी नहीं कर पाता, न कि आलस्य या दूसरे कारणों से। उपरोक्त कारण से यह श्रीमान श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाला कहा जाता है।

दिन भर जंगल में फिरकर, घास चरकर, सन्धा के वक्त घर लौटनेवाली भैंस, घर में संभालनेवाले के अभाव में ऐसे ही आंगन में आकर खडी है। (उसके बछडे को दूध पिलाने का प्रबन्ध करनेवाला भी कोई नहीं है।) भैंस अपने बाल वत्स की चिंता में उसकी याद कर रंभाती है। गोशाला के किसी कोने में वत्स बंधा पडा रहता है। इसलिए वह नहीं आ पाता। भैंस ऐसी कल्पना करती है अर्थात् ऐसा मानकर कि वत्स आकर दूध पी रहा है। उक्त भावना बल से भैंस के स्तनों से दूध की धारा निकलती है और ज़मीन पर बहती है। घर का आंगन आदि सर्वत्र कीचड मय (दूध के कारण) हो जाता है। संबोधन है - ऐसे महदैश्वर्यवाले हे श्रीमान की बहिन् ! अर्थात् ''स्वकर्म पराङ्मुख गोप की बहिन ! (इससे उसकी युवावस्था प्रकट है।) श्री कृष्ण का नित्य अनुचर, वह गोप श्री कृष्ण के समान उम्रवाला बाल सखा ही होगा। उसकी बहन गोप-बालिका को जगाती है। ऐसे संपन्न घर में कृष्ण भक्ति की संपत्ति भी लबालब भरी है इससे ''श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाला'' सिर्फ इसे प्रकट करने यह उदाहरण दिया गया है। संभालनेवाले की कमी नहीं है। भक्ति का प्रवाह है।

आगे की पंक्तियां बड़ी सुन्दर एवं भावपूर्ण हैं - ''हमारे सिर पर हिम पडे - इस तरह से तुम्हारे घर के दर्वाजे का अर्गला पकडकर, दक्षिण दिशा में रहनेवाले लंका के स्वामी रावण को (सीतापहरण आदि के कारण) कोप से मार डालनेवाले मन के प्रिय श्री रामचन्द्र जी का जब हम भजन कर रही हैं, तब भी तुम अपना मुंह खोलती नहीं - कुछ बोलती नहीं। कम से कम अर्थात् हमारा दुःख जानने के बाद अभी तो जागो ! यह तुम्हारी कौन सी महानिद्रा है?

पूर्वाचार्यों की व्याख्या बड़ी रसपूर्ण है।

बाहर खडी इन गोपियों के सिर पर हिम का प्रवाह पड रहा है। ज़मीन पर दूध के कीचड का प्रवाह है। इन दोनों के बीच अर्थात् गोपियों के मन में, भगवान श्री कृष्ण का व्यामोह, प्रेम का प्रवाह बह रहा है। मानों इन तीनों प्रवाहों के बीच में पडकर, बह जाने से स्वयं बचने, ये गोपियां किवाड की अर्गला पकड रही हैं। इस आपत्ति से हमें बचाती हुई किवाड खोलकर हमारी गोष्ठी में मिलकर आनन्दित करो। ऐसे घरों में राम-भक्ति एवं कृष्ण भक्ति की बड़ी संपत्ति है।

श्री रामचन्द्र ने बडे क्रोध में आकर, रावण का संहार किया। ऐसा करते हुए भी वे मनोहर थे। श्री रामचन्द्र तो स्वभावतः दयासागर हैं। करुणामूर्ति हैं। ऐसा होते हुए भी अपने भक्तों के प्रति द्रोह कर, दुःख देनेवालों के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध होना, उन दुष्टों का संहार करना, इस प्रकार करते हुए उन पर दया भी दिखाना; (जब रावण युद्ध में शाम को बहुत थक गया था, तब श्रीराम ने उनसे कहा कि तुम घर जाकर, आराम कर, पुनः समस्त आयुधों से लैस होकर कल आना - तब हम युद्ध चालू करेंगे) इस प्रकार दंड देते वक्त भी मनोहर लगना - यह भगवान का स्वभाव है। (दंड भी संबन्धित व्यक्ति का उद्धार और पाप को दूर करने) इसका अनुसन्धान कर गोपियों का मन द्रवित होता है।

श्री कृष्ण पर सीमातीत प्रेम करनेवाली, ये गोपी जन अब श्री रामचन्द्र का यशोगान करने लगी हैं। यह तो बडा विलक्षण है। पहले भी (पाशुरम सं 1,2,3, में) ये गोपियां पर, व्यूह एवं विभव आदि भगवान के सभी रूपों का अनुभव करती हैं। इनको सब कृष्णमय है।

आचार्यों का यह कथन बडा सुन्दर है कि श्री कृष्ण गोपियों के अत्यन्त प्रिय होने पर भी, मक्खन चोरी, वस्त्र अपहरण आदि बाल लीलाओं से कदाचित उनको दुःख भी देते हैं। कभी-कभी (उनको विरह पीडा भी देते हैं।) लेकिन श्री रामचन्द्र के चरित्र में यह कहीं नहीं पाया जाता है कि कभी किसी को कोई दुःख देनेवाली चेष्टा या लीला की हो।

लक्षित गोपी के मन में श्री कृष्ण के प्रति प्रणय रोष का आविर्भाव हुआ होगा। श्री कृष्ण के प्रति प्रणय रोष करना, गोपियों के प्रतिदिन का काम है। प्रेम की बात प्रेमीगण ही जाने। दुष्ट (प्रेम का संबोधन) का नहीं, साधु पुरुष राम का नाम संकीर्तन है।

श्री रामचन्द्र जी भक्तों के विरह को सहन नहीं कर पाते। तुरन्त उनसे मिलकर उनका दुःख दूर करते हैं। श्री रामचन्द्र ने सीता से मिलने कितना दुःख एवं कष्ट उठाया। अतः तुम जागो। शय्या से उठो।

आगे प्रशंसा में बोलती हैं - हम व्रज निवासी समस्त घरवालों ने ठीक समझ लिया कि हम सब तुम्हारे घर पर आकर तुम को प्रेम एवं आदर के साथ जगा रही हैं; अतः जागो।

स्त्रीयों की खासकर बालिकाओं की यह कामना होती है - कि सब की जानकारी में उनकी प्रशंसा हो।

गोपियां कहती हैं - हम सब एकत्रित होकर, तुम्हारे घर पर आकर, प्रवाह त्रय में (ओस प्रवाह, दूध प्रवाह, प्रेम भक्ति का प्रवाह - इसका विवरण पहले भी दिया गया है) मग्न होते हुए तुमको जगा रही हैं। तुम्हारा महत्व सब को मालूम हो गया कि इसको बुलाने सभी गोप बालिकाएं इनके यहां आ गयी हैं। इस तरह तुम्हारा मान बढाया, इष्ट देव का नाम संकीर्तन भी किया। और क्या चाहती हो?

इसमें ऐसे एक महात्मा वर्णित हैं जो निरन्तर भगवत् सेवा करने में ही निरत होने के कारण, अपने स्वधर्म का अनुष्ठान नहीं कर पाते। आलस्य आदि कारणों से कर्म छोड़ना अनुचित है। शंका का समाधान है कि अनवरत भगवत्सेवा निरत, महात्मा को अल्प कर्मत्याग से कोई दोष न लग सकता है। ''आचार्य हृदय'' में अनुगृहीत किया है - अविच्छिन्न सेवा में सामान्य धर्म का लोप हो जाता है।

### स्वापदेश

भगवान के ही मोह में (तीव्र भक्ति के कारण) रहनेवाले उत्तम ऐश्वर्यवाले को जगाने का कर्तव्य उनके संबन्धी बंधुओं का है। ऐसे सज्जन हमारे साध्य हैं। वैष्णव संप्रदाय में उक्त अति उत्तम भाव की शिक्षा दी जाती है। कृष्ण भक्ति के ऐश्वर्य की बाढ है।

## नयन सुन्दरी तुरन्त आ जाओ।

पुळ्ळिन् वाय् कीण्डानैप् पॉल्ला अरक्कनैक्
किळ्ळिक् कळैन्दानैक् कीर्त्तिमै पाडिप्पोय्
पिळ्ळैहल् एल्लारुम् पावैक् कळम्-पुक्कार;
वॆळ्ळि एळुन्दु वियाळन् उरङ्किट्रु
पुळ्ळुम् चिलंबिन कान्; पोदु - अरिक् कण्णिनाय्।
कुळ्ळक् कुळिरक् कुडैन्दु नीराडादे
पळ्ळिक् किडत्तियो? पावाय्! नी नन्नाळाल्
कळ्ळम् तविर्न्दु कलन्दु - एलारे एम्पावाय्। (13)

कृष्ण भक्ता एक गोपी की आंख की सुन्दरता से व्रज के सब लोग परिचित थे । उसे अपनी आंख की सुन्दरता का गर्व भी था । अब गोप कन्याओं के द्वारा उस गोपी का उद्बोधन है ।

पूर्व गाथा में श्री रामचन्द्र का यशोगान किया गया । इसको लेकर गोपियों के बीच चर्चा चली । कुछ विशेषज्ञ गोपियों ने दूसरों को समझाया कि श्रीराम और श्रीकृष्ण एक ही भगवान के दो रूप हैं । उनको भिन्न या अलग समझना भूल है । हम श्री कृष्ण का यशोगान करेंगी या श्रीराम का, ये दोनों एक ही बात है । अब चलो; दोनों के दिव्य चरित्रों को मिलाकर भजन करेंगी । यह उपदेश सुनकर दूसरी गोपियां बहुत खुश हुईं । इससे स्पष्ट है कि व्रज की गोपियां विचारशील हैं । अंधानुकरण करनेवाली नहीं हैं । वे राम और कृष्ण का यशोगान करने लगीं । प्रकृत गाथा परम विलक्षण रीति से गायी जा रही है । (अब तक भगवान के कई चरित्रों का गान हुआ है)

श्रीकृष्ण का संहार करने कंस द्वारा भेजे गए अनेक दैत्यों में से एक दैत्य बक पक्षी का रूप लेकर आया था । श्री कृष्ण ने उसे समय पर पहचानकर उसके मुख को दो भागों में चीर डाला । वह मरकर गिर पडा । आगे बताया जाता है कि श्री रामचन्द्र ने रावण को चिकोटी काट कर मार डाला ।

इस संबन्ध में आचार्यों का कथन है कि रावण को मारने में श्री रामचन्द्र के द्वारा जो प्रयत्न किए गए, वे वस्तुगत्या रावण का वध करने अनिवार्य कार्य के रूप में नहीं किए गए थे, लेकिन प्रदर्शन मात्र हैं । श्री राम यह चाहते थे कि किसी प्रकार उस को समझाकर अपना भक्त एवं दास बना लें । संबोधन है ।

हे प्रतिमा के समान सुन्दरी ! बकासुर का मुख चीर डालनेवाले कृष्ण एवं दुष्ट रावण को चिकोटी काटकर मार डालनेवाले भगवान श्री राम का यशोगान करती हुई, सभी गोप-बालिकाएं व्रत स्थान पर पहुंच गयी हैं ।

तुम भी जागकर हमारे साथ चलो ।

जब वह आती नहीं दिखायी पडी, तब गोप-बालिकाएं प्रातः काल होने का लक्षण बताकर तुरन्त गोष्ठी में पहुंचने के लिए कहती हैं ।

शुक्र उदित हुआ, गुरु अस्तमित हो गया । पक्षियों ने भी कलकल कर दिया । सुशीतल जलाशय में गोता मारकर स्नान किए बिना, तुम क्योंकर सो रही हो?

धर्नुमास में सूर्योदय के कुछ समय पहले गुरु का अस्तमन का समय होता है। (तात्विक अर्थ है-तामस ज्ञान का अंत हो गया और सात्विक ज्ञान का उदय हुआ है।) शय्या पर पडे उसे पहचानना कठिन है - लेकिन सुनकर समझ सकती हैं। एक सुगम लक्षण बताती हैं - पक्षियों ने भी कलकल कर दिया।

छठी गाथा में भी प्रातः काल होने का उपरोक्त लक्षण बताया गया था। उसके बाद दूसरी बार (7, 8, 9, 10, 11, 12 में छः गोपियों के उद्बोधन के बाद) यह चिह्न बताया जाता है। बीच में 6 गोपियों का उद्बोधन करते आवश्य कुछ समय बीत गया है। अंतर यह है कि - पक्षी जगते ही जो आवाज़ करती हैं, उसका वर्णन छठी गाथा में हुआ।

वे पक्षी अपने घोंसलों से बाहर जाकर, सब मिलकर दाना आदि चुगकर आहार जुटाते हुए बडा कोलाहल, कलकल करती हुई उडती हैं। इस गाथा में यह ध्वनि वर्णित है। अर्थात् जब पहले पहल चिडियां उठकर बोलने लगती हैं, उसी वक्त बडे सबेरे - गोप कन्याएं निकल जाती हैं। अब थोडा समय हो गया है - (अब सातवीं गोपी के घर के पास हैं) इससे इसका बोध होता है।

इसके बाद भी जब अन्दर सोती हुई गोपी नहीं उठती, बाहर खडी गोप कन्याएं उसकी प्रशंसा में संबोधन करती हैं - "हे पुष्प में रहनेवाले भ्रमर के समान नेत्रवाली ! तुम क्योंकर सो गयी हो ? यह तो बहुत सुन्दर समय है, अतः जल्दी उठो"।

इसका मतलब है कि इस गोपी को अपने नयन सौन्दर्य पर बडा गर्व है। इस सौन्दर्य के बल पर ही, श्री कृष्ण को अपनी ओर खींच लेना चाहती है। इसलिए शायद शीघ्र नहीं उठती। यह दूसरी बाल कन्याओं का विचार है कि श्री कृष्ण तुम्हारे नयन सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर तुम पर अनुग्रह करेंगे तो सही। हमें भी उसे पाना है। तुम्हारे पुरुषकारत्व पर विश्वास कर यहां पर आयी हैं। तुम अपने नयन सौन्दर्य से श्री कृष्ण को अपनी ओर खींचकर, हमको भी उनसे मिला दो। भगवदानुभव अकेले नहीं किया जाता। आगे बोलती हैं "सुशीतल जलाशय में गोता मारकर स्नान किए बिना तुम क्यों कर सो रही हो? अतः चोरी-चोरी अकेले कृष्णानुभव छोडकर हम सब से मिलकर भगवदानुभव करने आ जाओ" - मतलब है कि स्नान कर श्री कृष्ण के दर्शन कर, कृष्णानुभव का अब उत्तम समय है।

तब लक्षित गोपी (अन्दर से) यह बताती है कि ऐसा मत समझो कि मैं सो रही हूं। ज़रा ठहरो अभी आयी।

(बाहर की) गोप कन्याएं कहती हैं - तुम्हारा यह काम उचित नहीं है। हम सब इतने जन तुम्हारी प्रतीक्षा में बाहर खडी हैं। तुम्हें हमारी कोई चिंता नहीं। हमें परवाह न करती हुई "चोरी-चोरी" अकेले में कृष्णानुभव में लगी हो। लेकिन उचित तो यह है कि सब के साथ मिलकर कृष्णानुभव में लगना चाहिए। गोपियां किसे "चोरी-चोरी" कहती हैं? यह गोपी कृष्णानुभव में यह सोचते-सोचते शय्या पर पडी है कि "वह (कृष्ण ही) मेरी आंख की सुन्दरता से आकर्षित होकर मेरे यहां आ जाए"। इसी को 'चोरी-चोरी' कृष्णानुभव कहती हैं। इस भावना को छोडकर सब के साथ गोष्ठी में शामिल होने बुलाती हैं। गोपियों का विचार है - सब के साथ मिलकर भगवान के प्रेम भक्ति में अवगाहन करना चाहिए। यही उत्तम है अर्थात् भक्ति को सामूहिक बनाती हैं।

आजकल सामूहिक प्रार्थना/भजन को विशेष महत्व दिया जाता है। समाज में सब इकट्ठा होकर सामूहिक रूप से भजन आदि करते हैं, जिससे हमारी ऐक्य भावना दृढ होती है। इसके अध्ययन से यह पाते हैं कि आंडाळ के काल में ही तमिऴ समाज में यह प्रथा व्याप्त थी। इसी में मंदिर आदि की भूमिका एवं महत्व है। सब इकट्ठा होकर प्रार्थना करें - यह भगवान को बहुत प्रिय है। स्वामी देशिकन भगवान को 'भक्तोपमर्दन' कहते हैं।

**स्वापदेश**

भगवान के संबंध में जिनके अनुभव एवं ज्ञान पूर्ण हैं, (इसके कारण ज्ञानी पुरुष हैं) एवं भगवान के भक्त हैं, उनके दर्शन से धन्य मानना चाहिए। उनके अनुकूल उनकी सेवा में रहना चाहिए। यही वैष्णव स्वरूप है। भक्ति को सब के लिए सामूहिक संपत्ति न बनाकर स्वयं एकान्त में भक्ति करना - यहां कपट बताया जाता है।

## वागाडंबर शालिनी ! उठो !

उङ्गळ् पुळैक्ककडैत् तोट्टत्तु वावियुळ्
चॆङ्कळुनीर् वाय् नॆहिळ्न्दु, आम्बल् वाय् कूम्बिन् कान्;
शॆन्गार् पॊडिक्कूरै वॆण्पर् तवत्तवर्
तङ्गल् तिरूक्कोयिर् शङ्गिडुवान् पोतन्तार्;
ऐङगलै मुन्नम् ऍळुप्पुवान् वाय् पेशुम्
नङ्गाय् ! ऍळुन्तिराय्, नाणादाय्, नावुडैयाय् !
शङ्कॊडु चक्करम् ऐन्दुम् तडक्कैयन्
पङ्कयक् कण्णानैप् पाडु एलॊर ऍम्पाधाय् ॥ (14)

एक गोपी ने प्रतीज्ञा की थी (पूर्व दिन) कि कल सबेरे वह पहले उठकर सब को जगा देगी। परन्तु इस बात का स्मरण न रखते हुए वह सो गयी। अब गोपियों की भीड उसके घर के सामने पहुंच गयी है। उक्त गोपी के उत्थान का पाशुरम है।

इसका संबोधन क्रम देखिए।

पहले ही आकर हम को जगा देने की प्रतिज्ञा करनेवाली !
हे देवी ! हे लज्जा शून्ये ! हे बात करने में समर्थ जीभवाली ॥''

यह मतलब है कि पूर्व दिन अपने वचन के अनुसार पहले ही उठकर हमें जगाना तो दूर; तुम्हारे यहां आकर, हमारे जगाने पर तुरन्त उठकर, अपने निद्रापरवश होने के कारण, अपनी अशकृतता के लिए क्षमा मांगना चाहिए था। गोष्ठी में शामिल हो जाना चाहिए था। ऐसा भी नहीं करती - लेकिन हम सब तुम्हारे घर के सामने खडे होकर तुमको जगा रही हैं। तुम तो आराम से सो रही हो। यह कैसी निर्लज्जता है ? तुम तो मीठी-मीठी बातें करने में कुशल हो। लेकिन अपने वचन का पालन नहीं करती। हमारा विश्वास था कि तुम अपने वाक्चातुर्य से भगवान को प्रसन्न कराकर, हमको आपसे (भगवान) मिला दोगी। इसे भूलकर आनन्द से बिस्तर पर पडी हो। यह अनुचित है। सबेरा हो गया। जल्दी उठो।

इस गाथा में भी प्रभात होने के तीन लक्षण बताए जाते हैं। ''तुम्हारे गृहोद्यान के उपवन की बावडी में रहनेवाले कलहार पुष्प खिल गए और नीलोत्पल पुष्पों का मुख बंद हो गया। काषाय चूर्ण से रंजित वस्त्रवाले और शुभ्र दांतवाले सन्यासी गण अपने-अपने मंदिर में कपाट खोलने चाबी लेकर जा रहे हैं। यहां एक खूबी है। गोपियां बताती हैं-

तुम्हारे गृह के उपवन की बावडी में कलहार पुष्प खिल गए हैं, नीलोत्पल पुष्पों का मुख बन्द हो गया है। यह कहना उचित था कि सर्वत्र ऐसा हो गया। इन्होंने स्वयं देखा भी है कि सभी तालाबों में ऐसा हो गया है। इस गोपी के घर के अन्दर न जाने पर भी अनुमान प्रमाण से बोलती हैं, जिससे उसको विश्वास हो जाए। सर्वत्र कहने से शायद वह विश्वास न करे।

जब इस पर वह गोपी नहीं उठी, तब दूसरा प्रमाण (प्रत्यक्ष) देती हैं। काषाय चूर्ण से रंजित वस्त्रधारी और शुभ्र दांतवाले, किसी दूसरे से कुछ न

मांगनेवाले महात्मा सन्यासीगण अपने अधीन रहनेवाले मंदिरों को संभालने (पूजा आदि करने) उषाकाल में उठकर, चाबी लेकर मंदिर के किवाड खोलने जा रहे हैं।

इसपर भी लक्षित गोपी उठकर नहीं आती और वितर्क भी करती है। तब गोपियां आतुरता में बोलती हैं - हे देवी ! (व्यंग्य में) तुमने हमको क्या वचन दिया था? अब क्या करती हो? सब से पहले उठकर हमको जगानेवाली थी। अब उठना तो दूर, तर्क-वितर्क भी करने लगी हो। हे निर्लज्जे ! वागाडंबर शालिनी ! आदि।

क्या अब भी वह लेट सकती है ? यह पूछते हुए वह उठकर आती है कि अब आगे क्या करना चाहिए?

"शंख के साथ चक्र का धारक, विशाल हस्तवाले, कमलनयन का कीर्तन करने व्रत-स्थान पहुंचें। अब तो वे व्रत करने जा रही हैं। इसलिए नाम संकीर्तन के अलावा भक्तजन गोपियों का कोई दूसरा काम क्या होगा? गोपियां तो भगवान के सभी रुपों का भजन करती हैं। यद्यपि यहां पर श्री कृष्ण का ग्रहण करने में एक औचित्य रहता है। अवतार लेते वक्त श्री कृष्ण शंखचक्रधारी तो थे ही। तथापि पूर्वाचार्यों का विचार है समय-समय पर अपने भक्तों को शंख-चक्र आदि अपने दिव्यायुधों के साथ दर्शन देते हैं।

**स्वापदेश**

जो जो भगवान के भक्त होकर, उनकी भक्ति में लीन हैं, वैसे आचार्यों की सन्निधि में भगवदानुभव करना चाहिए। यही श्री वैष्णव स्वरूप है।

## बाल शुक ! अब भी तुम सो रही हो !

एल्ले ! इळङकिळिए ! इन्नम् उर्ङगुतियो !
चिल् एन्ड्रु अळैयेन्मिन् नङ्गैमीर् ! पोतर् हिन्ड्रेन्;
वल्लै उन् कट्टुरैहळ्, पण्डे उन् वाय् अरितुम्;
वल्लीर्हळ् नींगळे नाने तान् आयिडुह !
ओल्लै नी पोदाय् उनक्कु एन्न वेरु उडैयै?
एल्लारुम् पोन्दारो? पोन्दार पोन्दु एण्णिक्कोळ्;
वल् आनै कोन्ड्रानै माट्रारै माट्रु अळिक्क
वल्लानै मायनैप् पाडु - एलोर् एम्पावाय्। (15)

इसके पूर्व की नौ गाथाएं (6 से 14 तक) जगानेवाली की वाणी में होने पर भी इस गाथा की बोली की शैली निश्चित रूप से संवाद की बात सूचित करती है। वस्तुतः संवाद होने पर भी, उनमें अन्दर सोई हुई गोपी का वचन गाथा में स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया। प्रकृत गाथा में यह पूर्ण रूप से व्यक्त

है । इसमें घर के भीतर शयनित गोपी और उसको जगाते हुए, उसके द्वार पर खडी गोपियों का रसपूर्ण संवाद है । इसकी विलक्षणता है कि इसमें शास्त्रार्थ का उपदेश दिया जाता है । वैष्णव लक्षण का प्रतिपादन है ।" आचार्यों के द्वारा यह दिव्य सूक्ति (तिरुप्पावै की 30 गाथाओं में) सारभूत मानी जाती है ।

शास्त्रार्थ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ही शायद यहां संवाद रचा गया है ।

## संवाद का क्रम

| पाशुरम की | | |
|---|---|---|
| प्रथम पंक्ति | - | घर के बाहर खडी गोपियों के द्वारा उद्बोधन । |
| दूसरी पंक्ति | - | अन्दर शयनित - लक्षितगोपी का उत्तर । |
| तीसरी पंक्ति | - | बाहर खडी गोपियां, |
| चौथी पंक्ति | - | अन्दर शयनित । |
| पांचवी पंक्ति | - | बाहर खडी गोपियां । |
| छः वीं पंक्ति (प्रथम अर्धली) | - | अन्दर शयनित |
| आगे की अर्धली | - | बाहर खडी गोपियां |

इसके पूर्व भी इसका उल्लेख है कि मार्गशीर्ष व्रत करने उत्सुक गोपियों में से एक ने भी नींद न ली । श्री कृष्ण का ध्यान करती हुई शय्या पर लेटी थीं । हां, भगवदानुभव का असर प्रत्येक में भिन्न रुप से पडता है । कितने ही गोपियों ने शीघ्र उठकर व्रत-स्थल जाते हुए अपनी सखियों को जगाने एवं बुलाने लगीं । कुछ गोपियां बिस्तर पर लेटे भगवान के ध्यान के अनन्द में लीन थीं ।

गोपियों के द्वारा जगाने की वाणी सुनकर अन्दर शयन करनेवाली (जो अब तक नहीं उठी) चुप तो नहीं रह सकती । उसका जवाब देना स्वाभाविक है । यह उनका आपसी संवाद बन जाता है । पडोस के घर में हुइ बातचीत (अन्दर शयनित और बाहर खडी गोपियों की) और मधुर नाम संकीर्तन लक्षित गोपी ने (जिसका उद्बोधन इस गाथा में है) सुना । वह भी मंद-मंद स्वर में उस गीत को दुहराने लगी । वह मधुर गुनगुनाने का स्वर बाहर खडी गोपियों के कान में भी पड़ा । इसके माधुर्य से प्रसन्न होकर, प्रसन्न चित्त से संबोधन करती हैं - अये ! बाल शारिके । (हम सब के आने पर भी) तुम अभी तक लेट रही हो । यह क्या बात है?''

पडोस के घर की गोपी को जगाते हुए इनके (बाहर खडी) वचन प्रकृत गाथा की गोपी के कान में भी पडा था। सखियों के बीच तो प्रणय-रोष बराबर हुआ करता है फिर भी "बाल शारिके" सुनकर उसको (अन्दर शयनित) अच्छा न लगा। इससे उसके ध्यान में बाधा पडी और विचलित भी हुई। उसने सोचा कि इनको आगे बोलने का मौका नहीं देना चाहिए - इसलिए बुलाने की आवाज सुनते ही उत्तर दिया (क्रोध की भावना में)

अन्दर शयनित : हे पूर्णा ! (पूर्ण गोपियां) कटु शब्द बोलिए मत। इतने में क्योंकर चिल्लाती हो? मैं अभी आ गयी समझिए ("पूर्णा" शब्द ही क्रोध का परिचायक हैं)" अर्थात् तुम लोगों की तरह मैं भी भगवान का नाम स्मरण (संकीर्तन) ही कर रही हूँ। तुम लोगों से मिलने के लिए ही आ रही हूँ। फिर भी यहां आकर मुझे "तोता" व्यंग्य में कहकर बुलाती हैं, नींद लेनेवाली अपराधी भी बोलती हैं। तुम लोग तो समस्त देवगुण और आत्मगुण से पूर्ण हैं। (व्यंग्य में) इसका घमंड भी करती हैं। अपने गर्व को थोडा कम कीजिए तो सही।

इसे सुनकर बाहर खडी गोपियों का अप्रसन्न होना स्वाभाविक है।

बाहर खडी गोपियां: हम तो तुमको आदर के साथ 'बाल-शुक' कहकर संबोधन करती हैं। उठकर हमारी गोष्ठी में पहुंचकर हमें संभालने की प्रार्थना कर रही हैं। सखियों को कोई "पूर्णा" पुकारेगा? यह तो अपरिचित व्यक्ति को बुलाने का संबोधन है। सब के पहुंच जाने पर तुम्हारे बिस्तर पर पडे रहना अपराध नहीं है क्या? इसके लिए हमसे क्षमा मांगनी चाहिए। लेकिन तुम तो हमें "चिल्लाओ मत" कहकर आदेश दे रही हो। पहले ही हमें तुम्हारी वाक् पटुता विदित है। अपने जीभ को अपने वश में रख सकती थी।

अन्दर की गोपी: वाक् पटुता - निष्ठुर बनना और वाक्-पटु बनने का सामर्थ्य मुझे कहां से आएगा? पहले कटु वचन कहना फिर पलट देना - और यह कहना कि हमें कुछ भी नहीं मालूम। मैंने तो अच्छी बातें ही सुनायी हैं। ऐसे चमत्कारपूर्ण बातें करने का - वाक्-पटुता का सामर्थ्य तुम लोगों में परिपूर्ण पाया जाता है।

यह विवाद यों चल रहा था। तब उस गोपी ने (अन्दर रहनेवाली) अपने स्वरूप की (वैष्णव होना) याद की। अर्थात् भगवद्-भक्तों से वाद विवाद या स्पर्धा करना अनुचित है। अगर भक्त लोग हमारे ऊपर कुछ दोष लगावें तो उस दोष को बिना संकोच मान लेना चाहिए - या कम से कम चुप रह जाना

चाहिए । शायद अज्ञान के कारण, या अहंकार या अहम से हम अपने दोषों को जान नहीं पाते । भक्तों का यह प्राकृतिक स्वभाव है कि वे दूसरों पर अनावश्यक कोई दोष नहीं लगाते । अगर भक्त लोग ऐसे कहते हैं तो अवश्य कुछ बात होगी । कुछ दोष होगा । भक्तों को अपनी वाणी से दोषी कहना उत्तम नहीं होता । इस प्रकार वैष्णव सिद्धांत का स्मरण करती हुई उसने क्षमा प्रार्थना के स्वर में कहा-

अच्छा ! तुम्हारे वचन के अनुसार मैं ही दोषी रहूँ । मुझे ही चतुर होने दो । मैं ही समर्थ हो जाऊं ।

अब बताइए कि आगे क्या करना चाहिए ? इससे विवाद शांत हो गया ।

बाहरवाली गोपियां कहती हैं कि तुम शीघ्र उठकर आओ । तुम्हारे लिए अलग कौन सा अनुभव है? अर्थात् तुम्हारे लिए हम सब को छोडकर अलग भगवदानुभव कौनसा है?

यह चिढाने की बात जैसी लगेगी । वास्तविक बात यह है कि वे अपनी सखी की परीक्षा लेने की दृष्टि से बोलती हैं । ये गोपियां जानना चाहती हैं कि अन्दर की गोपी ने अपना दोष स्वीकार किया और क्षमा भी मांगी । वह वास्तव में हार्दिक है या केवल ऊपर २ की बात है । लेकिन वह गोपी अपने ज्ञान में पक्की थी । अब वह विवाद में कैसे उतरेगी?

अन्दर शयनित - मैं तो पहले ही निकलनेवाली थी । तुम (गोपी) लोगों से मिलने से बढकर मेरे लिए कोई अलग काम क्या हो सकता है? लेकिन मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि सभी सखियां आ जाएं और बडी गोष्ठी को देखकर कृतार्थ हो जाऊं । इसलिए आप लोगों के आने तक थोडा विलंब किया । अब बताइए कि सब सखियां आ गयी हैं क्या?

बाहर की गोपियां : जी हां ! सब पहुंच गयी हैं । तुम ही बाहर आकर गिन लो । गिन लेने का आह्वान क्यों दिया जा रहा है ? यह भी विलक्षण है । इसलिए कि - गिनने के बहाने यह गोपी एक एक करके सब पर दृष्टि डालेगी, और गिनते वक्त हरेक को अपने हाथ से स्पर्श करेगी । यह तो परम भागवत गोपी है । गिनने के बहाने उसकी दृष्टि का लक्ष्य बनना, और उसके कर स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त करना अपेक्षित है । प्रत्येक गोपी का महत्व बढेगा और खुश भी होगी ।

गोपियां, फिर आगे जो करना है उसके बारे में कहती हैं ।

कुवलयापीड नामक बलिष्ठ हाथी को मारनेवाले, (कंसादि) शत्रुओं के गर्व एवं यश को मिट्टी में मिलाकर उनका बिनाश करनेवाले आश्चर्यमय मायी-अर्थात् दिव्य लीला करनेवाले श्री कृष्ण का भजन कर भक्ति के प्रवाह में अवगाहन करना है। यही हमारा कर्तव्य है। शत्रुओं का विनाश करनेवाले कहने से शत्रु-विनाश करने में श्री कृष्ण की एक विलक्षणता सूचित है। एक विलक्षण सामर्थ्य प्रकट होता है। यह है कि शत्रु से लडने का मौका आने पर श्री कृष्ण अपात्र पर दया करने के (अनुचित) काम पर नहीं उतरते। उसको तत्काल मार डालते हैं। इससे गोपियों को बड़ा संतोष होता है एवं शांति मिलती है।

श्री कृष्ण को हानि पहुंचाने के विचार से, व्रज भूमि में असुर लोग (कंस की प्रेरणा से) नाना वेष में हमेशा घूमते फिरते थे। अगर वह जान बचाकर निकल जाता तो अधिक आपत्ति होने का डर रहेगा। परंतु दैवयोग से श्री कृष्ण इन दुष्टों को सजीव नहीं छोड़ता, परन्तु तत्काल मार डालता था। इसकी तुलना में श्री रामचन्द्रजी शत्रुओं को पहले लघु शिक्षा देकर छोड देते। ''मायन्'' आर्श्चय चेष्टित कहने का मतलब है (पांचवीं गाथा में भी इसका विवरण है।) पूतना एवं मल्लवध, हाथी का वध, कंस वध, कालिंग मर्दन आदि काम से श्री कृष्ण के परत्व का बोध होता है। इस प्रकार महान होकर, हमारी जैसी (गोपियां) अज्ञों से स्नेह कर, हमारी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए, उस आज्ञा का पूर्णतया पालन करते हुए, हम पर सीमातीत प्रेम करते हैं। हमारे प्रति अपने वचनों से बंध जाते हैं। हाँ, मनसा-वाचा-कर्मणा, रस्सी से भी बंध जाते हैं। श्री कृष्ण का सौलभ्य और सौशील्य वर्णनातीत है। अनुभव करने की बात है। ऐसे हमारे प्रिय भगवान श्री कृष्ण का संकीर्तन करने आ जाओ। गोष्ठी को संभालो।

इसमें उल्लेखनीय है - अंतरंग सखियों के बीच

1) रस पूर्ण, जीवंत, एवं स्वाभाविक वार्तालाप।
2) बातचीत की मनोवैज्ञानिक रीति एवं नवीनता। गोपियां आपस की तारीफ भी करती हैं - प्रणय रोष प्रकट कर विवाद भी। गोप बालिकाओं का आपसी प्रेम एवं मित्रता का उत्तम परिचय मिलता है।

**स्वापदेश**

यह तिरुप्पावै की सूक्तियों में चिराग जैसा है। भगवत् विषय आगे 29 वीं दिव्य सूक्ति में बताया जाता है। भागवतों एवं भक्तों का महत्व एवं विवरण इस में बताया जाता है। कैंकर्य करनेवाले वैष्णवों की उन्नति में लगे रहनेवाले

भक्तों के दर्शन होने पर उनको भी भक्तों के रूप में दर्शन कर, आनन्दित होना एवं उनकी सेवा करना वैष्णव स्वरूप है। वे भक्तों की गोष्ठी के दर्शन कर आनन्दित होते हैं। यह वेदांत विचार भी यहां प्रतिपादित है - बडे लोगों को (आचार्य जैसे) अपने काम के लिए अति निर्बन्ध नहीं करना चाहिए।

## रत्नमय कपाट खोलो

नायकनाय् निन्ड्र नन्दगोपनुडैय
कोयिल् काप्पाने ! कॉडित् तॉन्डूम् तोरण
वायिल् काप्पाने ! मणिक्कदवम् ताळ् तिरवाय्
आयर् शिरुमियरोमुक्कु अरै परै
मायन् मणिवण्णन् नन्नले वाय् नेर्न्दान्;
तूयोमाय् वन्दोम्, तुयिलॅळप् पाड्डवान्:
वायाल् मुन्नमुन्नम् माट्रति अम्मा ! नी
नेय निलैक् कदवम् नीक्कु - ऐलोर एंम्पावाय् ॥ (16)

पूर्व के दस पाशुरों में (6 से 15) दस प्रमुख गोप स्त्रीयों (भगवादानुभव में तल्लीन) के उद्बोधन की बात हुई। व्रज की सब गोपियां मिलकर गोष्ठी बनाकर श्री कृष्ण से पुरुषार्थ प्राप्त करने नाम संकीर्तन करते हुए नंद बाबा के घर पहुंचती हैं। द्वारपाल से भीतर जाने की अनुमति मांगती हैं।

आचार्यों का कहना है कि व्रज में "पंचलक्ष" अर्थात् बहुत अधिक गोप प्रजा थी। उद्बोधन की गाथाएं यद्यपि दस ही गायी गयी हैं, ऐसा समझना चाहिए कि शयन करनेवाली सभी गोपियां जगायी गयीं। सब को ढूंढ-ढूंढकर, जगाकर सब मिलकर बड़ी गोष्ठी बनाकर, वृत के अनुष्ठान के लिए श्री कृष्ण के यहां, नाम संकीर्तन करते हुए बडे उत्साह के साथ जा रही हैं। उनका परस्पर प्रेम, सौहार्द्ध इतना गाढा था कि वे एक गोपी को भी पीछे छोडकर नहीं जाती। गिन-गिनकर समझ लिया है कि सब के सब आ गयी हैं। इस प्रकार सब मिलकर श्री कृष्ण को जगाकर, पुरुषार्थ प्राप्त करने श्री नन्दगोप के महल पर पहुंच गयीं। आगे की चार सूक्तियों में निम्न लिखित उद्बोधन हैं।

(1) नन्दगोप, यशोदा एवं बलदेव।
(2) नंदगोप की बहु - नापिन्नै (नीला देवी)
(3) आखिर 20 वें पद में और आगे के पदों में श्री कृष्ण का उद्बोधन है और कृष्ण से अपने मनोरथ का निवेदन है।

नंदगोप के बडे एवं गंभीर प्रासाद के द्वार पर द्वारपालक खडे हैं। अन्दर जाने के लिए उनकी अनुमति अपेक्षित है।

प्रकृत गाथा में गोपियां द्वारपालों से किवाड खोलकर अन्दर जाने की अनुमति मांगती हैं। शास्त्र की आज्ञा एवं हमारी संस्कृति है कि किसी के यहां (विशेष रूप से बडों के) एकाएक अन्दर नहीं जाना चाहिए। मंदिर में जाते वक्त भी द्वारपालक, मंदिरपालक आदि भक्तों की अनुमति (अनुज्ञा) प्राप्त कर (मंदिरों में द्वारपाल को नमस्कार कर) ही अन्दर जाना है। कथावस्तु तो कृष्णावतार के समय की है। लेकिन सभी परिष्कार नवीन हैं। अर्थात् - गोदा देवी श्रीविल्लिपुत्तूर को ही व्रज भूमि मानती है। गोपियां वहां रहनेवाली परम भक्ता हैं। स्थानीय वटपत्रशायी मंदिर को, श्रीकृष्ण का महल मानकर; अपने अनुभव के साथ, गोपियों का अनुकरण कर रही हैं। भावना की प्रधानता है।

भगवान को प्यार करनेवाले महात्मा भगवान के भक्तों को भी समुचित आदर करते हैं। यहां तो अर्चावतार मंदिर की भावना व्यक्त है। अत: यहां मंदिर के द्वारपालक (मंदिर रक्षक) का प्रबोधन उचित है। गोपियों का संबोधन है-

हे हमारे नायक नंदगोप के प्रासाद रक्षक !

नायक शब्द नंदगोप के महत्व का परिचय देता है। पहले पाद से मंदिर रक्षक का, दूसरे से द्वार पालक का उत्थापन किया जाता है। आगे संबोधन है -

हे ! ध्वजों से सजाए हुए तोरण द्वार के रक्षक !
रत्नमय कपाट की अर्गला खोल दीजिएगा"।

गोपियों की प्रार्थना से प्रसन्न मंदिर पालक ने (प्रासाद के गौपुर का) माणिक्य किवाड खोलकर सभी गोपियों को अन्दर जाने की अनुमति दे दी।

आगे द्वारपालक (निजी अंतपुर के रक्षक) खडे थे। उनकी कृपा एवं अनुमति के बिना गोपियों का काम नहीं बनता था। उनको तोरण द्वार के रक्षक कहकर बुलाती हैं। ध्वजों से सजाए हुए द्वार हैं। मंदिरों के द्वार पर पताका प्रसिद्ध है - मंदिर का अलंकार है।

द्वारपालकों को इसका पता था कि श्रीकृष्ण से मिलने सबेरे गोपियां आनेवाली हैं। इनकी भक्तिपूर्ण एवं मधुर वाणी सुनने की इच्छा से वह तत्काल किवाड न खोलकर कुछ विवरण पूछने के बहाने वार्तालाप करने लगा। श्री कृष्ण पर अपना अति प्रेम दिखाते हुए आस्थान रक्षा की व्यसनी होकर, गोपियों से

उनका वृत्तांत पूछने लगा। इससे उनके बीच कुछ संवाद सा बना जो इस सूक्ति की आगे की पंक्तियों में व्यक्त है।

सूक्तियों में तो प्रत्यक्ष संवाद नहीं है। केवल गोपियों की वाणी ही मिलती है। लेकिन उस वाणी की शैली से प्रकट है कि संवाद जरूर चला था। पूर्व की सूक्तियों में भी (सहेलियों का उद्‌बोधन करते हुए) संवाद के रूप में ही अनुभव किया था। आगे भी संवाद रूप से ही समझेंगे। इसका रसास्वादन करेंगे।

द्वारपालक: सर्वथा भय से भरे स्थान इस व्रज में रात को कपाट खोलने की मांग करनेवाली तुम लोग कौन हो? इस समय यहां कैसे आयीं? तुरन्त वापस जाइए।

(द्वारपालक गोपियों की पूरी जानकारी रखने पर भी इस तरह बोला)

गोपियां:महात्मन्! श्री कृष्ण समस्त भय को दूर करने वाले हैं। ''भयनाशक'' हैं। उनके सान्निध्य में भय की प्रसक्ति ही कौन सी है?

द्वार:यह व्रज तो, परम दुष्ट कंस की राजधानी के पडोस में रहनेवाला साधु प्रवृत्ति गोपों से भरा गांव है। कृष्ण तो हमेशा साहसपूर्ण काम करने में निरत हैं। घास-फूस में भी असुर प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में कौन निडर रहेगा?

गोप:हम तो छोटी उम्रवाली गोप-बालिकाएं हैं। हमसे डरने की क्या बात है?

द्वार:इसका कौन पहचान करे कि कौन गोपी है या कौन राक्षसी? तुम सबको मालूम ही है कि पूतना राक्षसी होने पर भी गोपी के वेष में आयी थी। अतः असमय में आनेवालों से हमेशा सावधान रहना पडता है।

गो:पूतना तो वृद्धा थी। हम तो छोटी, उम्रवाली गोप-बालिकाएं हैं। हम बिलकुल कपट नहीं जानतीं।

द्वार:अरे! अरे! तुमको किसने बताया कि छोटी उम्रवाला कपट नहीं करता। तुम नहीं जानती कि एक असुर कृष्ण को मारने एक छोटी उम्र के बछडे के रूप में ही आया था। अतः कैसे विश्वास करें?

गो:सुनिए! हम तो आत्याश्चर्यमय दिव्य चेष्टित एवं मणिवर्ण श्री कृष्ण से पैरै (तमिळ शब्द) अर्थात् पुरुषार्थ लेने आयी हैं। कृष्ण के दर्शनाकांक्षी हैं। भगवान ने कल ही उपरोक्त बात का वचन दिया है कि सबेरे तुम लोग हमारे यहां

आकर पैरै (पुरुषार्थ) प्राप्त कर लो । "पैरै" शब्द का शब्दार्थ तो शब्द करनेवाली भेरी है । पहले ही इसमें उल्लिखित है यहां कि पैरै शब्द का अर्थ सामन्यतः पुरुषार्थ - भगवत् कैंकर्य है । हम तो भगवान की अनन्य भक्ता हैं । कृष्ण को ही उपाय तथा फल माननेवाली शुद्ध पवित्र हृदया हैं ।

द्वार:आपके आने के बारे में विवरण जानना तथा उस पर विचार करना हमारा कर्तव्य है । अच्छा, अब सच-सच बताइए कि आप अन्दर जाकर क्या करना चाहती हैं? तुम्हारे अपेक्षित पुरुषार्थ क्या चीज़ है? पूरा बताइए ।

गो:श्री कृष्ण को निद्रा से उद्बोधन करने, सुप्रभात स्तुति - करने आयी हैं । आप ही बताइए कि इससे बढ़कर पुरुषार्थ क्या होगा?

द्वा:तुम लोगों ने क्या कहा? सुप्रभात कीर्तन के लिए अन्दर जाना चाहती हैं ? अब इस वक्त प्रासाद के अन्दर जाना ही पहला अपराध है । शयन से जगाना अक्षम्य अपराध हो जाएगा । भगवान के दर्शन कर वापस जाएंगी तो कोई बडी चिन्ता की बात नहीं । अन्दर जाकर गडबड करने की इच्छुक तुम लोगों को किस प्रकार अन्दर भेजूं? यह तो बनने की बात नहीं । शीघ्र इधर से वापस जाइए ।

गो:हे महात्मन् ! हमें क्यों परेशान करते हैं? सुप्रभात स्तुति करना भगवत् भक्तों का नित्य-कर्म है । भगवत् सेवा है । हम परिशुद्ध होकर सुप्रभात गाने आयी हैं । अपने मुंह से हमें मत रोकिए । प्रारंभ में ही अपशकुन की तरह मत रोकिए । अपनी शोभन वाणी से हमें अन्दर जाने की अनुमति दीजिए ।

यह कहते हुए गोपियों ने दंडवत नमस्कार किया । (यहां ध्यान देने की बात है कि गोपियां समयोचित अति विनयशील बातें बोलती हैं । दक्षिण के मंदिरों में प्रवेश के वक्त द्वारपाल के सामने दंडवत नमस्कार करने की परंपरा है ।

इससे द्वारपाल बहुत प्रसन्न हुआ और बोला ।

द्वा:अच्छा ! अब कपाट खोलकर अन्दर जा सकती हैं ।

गो:अरे बन्धु ! ऐसा मत कहिएगा । हम आप की कृपा चाहती हैं । हम पर कृपा दिखाते हुए, अपने श्रीहस्त से ही, कपाट खोलें तो हम कृतार्थ होंगी । इसके अलावा यह कपाट तो इतना सुन्दर है कि अन्दर जाना चाहनेवालों के नेत्र व मन अपनी तरफ आकर्षित कर अपने में ही रोककर आगे बढने नहीं देता । यह किवाड भी अपनी सुन्दरता एवं आकर्षण से एक द्वारपालक का काम करते हुए सेवा कर रहा है । अतः श्री कृष्ण से प्रेम करनेवाले ये किवाड खोलकर हमें अन्दर जाने दीजिए ।

गोपियों का इस प्रकार कहने का तात्पर्य है कि जो निषेध करता है या रोकता है, उसी के हाथ से अंगीकार कराना ठीक है । उसको शांतचित्त एवं प्रसन्न कराना है । इसलिए गोपियां द्वारपाल से प्रार्थना करती हैं कि अपने हाथ से किवाड खोलकर हमें अन्दर जाने दीजिए । कृष्ण तो गोपियों की वाणी सुनने के बडे इच्छुक हैं । भगवान की कृपा एवं क़रुणा प्रकट है ।

**स्वापदेश**

जो भगवान के भक्त हैं, उनके एवं आचार्य आदि पूज्य बडों के आशीर्वाद लेकर भगवान के दर्शन करने जाना चाहिए । भगवान की भक्ति में लगना चाहिए । आचार्य ही हमारे उद्देश्य हैं । तभी द्वार (मंदिर का) खुलेगा । नियम विरुद्ध प्रेम करेंगे तो शूर्पणखा जैसे कष्ठ उठाना पडेगा । प्रधान शेषी से बढकर द्वार शेषी आचार्य ही हमारा प्रथम उद्देश्य है ।

## नंदगोप जी, यशोदाजी, श्री कृष्ण, बलरामजी का उद्बोधन

अम्बरमे तण्णीरे शोर् अरञ् चय्युम्
  एंम्पॅरुमान् नन्दगोपाला ! एंळुन्दिराय्;
काम्बनार्क्कु एंल्लाम् काळुन्दे ! कुल विळक्के ।
  एंम्पॅरुमाट्टि ! यशोदाय् । अरिवुराय्;
अम्बरम् ऊडु अरुत्तु ओंगि उळहु अळन्द
  उम्बर् कोमाने ! उरङ्गादु एंळुन्दिराय्;
चम्पॉर् कळ्ळलडिच् शॅल्वा ! बलदेवा !
उम्बियुम् नीयुम् उहन्दु - एलोर् एंम्पावाय् ॥ (17)

द्वारपाल ने स्वयं किवाड खोलकर, गोपियों को प्रासाद के अन्दर जाने की अनुमति दे दी । मंदिर के अन्दर पहुंचकर गोपियों ने वहां पर क्रमशः शयन करनेवाले नन्दगोपजी, यशोदाजी, श्री कृष्ण और बलराम जी को देखा । इसी क्रम से इनका उद्बोधन है - इस सूक्ति में । भर्ता का बिस्तर और अपने बच्चे के पालने से न मुक्त होनेवाली माताजी की तरह यशोदा नन्दगोप और श्री कृष्ण दोनों से दूर नहीं रहती ।

हमारे पूर्वाचार्य श्रीमंत्र में प्रणव की व्याख्या करते वक्त भगवान और चेतन दोनों से संबन्ध रखनेवाली महालक्ष्मी को - नन्दगोप और श्री कृष्ण के बीच सो जानेवाली यशोदा माता का दृष्टांत देते हैं । प्रथम दो पादों में

नन्दगोपजी का उद्बोधन है । उनका संबोधन उनकी दान वीरता की प्रशंसा करते हुए करती हैं ।

वस्त्र का ही, जल का ही, एवं अन्न का ही, धर्म बुद्धि से दान करनेवाले हे हमारे स्वामी ! नंदगोपजी । नंदगोपजी श्रीमान होने से विशेष दानी भी हुए होंगे । अपने सर्वस्व श्री कृष्ण का, गोपियों को दान करने से भी आप ऐसे सर्वस्व दाता कहे जाते होंगे ।

दान दिये जानेवाले हर वस्तु के शब्द के साथ ''ही'' जोडने से वस्त्र का ही, जल का ही, अन्न का ही मतलब यह है कि वस्त्र जल और अन्न का अपरिमित मात्रा में आप दान देते हैं ।

इस प्रकार नंदगोपजी को जगाकर, उनकी अनुज्ञा पाकर, आगे बढकर, यशोदा का उद्बोधन करती हैं - सुप्रभात गाकर जगाती हैं । आगे के दो पादों में यशोदाजी के सभी वनिताओं में से श्रेष्ट कहकर यशोगान करती हैं । सभी वनिताओं में से विशेषकर व्रज की गोपियों में से यशोदा अधिक भाग्यवती हैं । कारण अवतारों में भगवान की मातृत्वेन - माता के स्थान में जो महिलाएं हो चुकी हैं, उन सब में से यशोदाजी श्रेष्ठ बतादी जाती हैं ।

अदिति देवी वामन भगवान की माता थी ।

परन्तु जन्म के दिन में ही (भगवान वर्धित होकर) मावलि से भूमि (दान) मांगने चले गए । माता से उनका संपर्क अति अल्पकाल का था ।

रामावतार में तो राम की बाल लीलाओं का कोई वर्णन (रामायण में) नहीं मिलता । इसका पता नहीं चलता है कि माता कौसल्या को उनकी (बाल) लीलाओं को देखकर अनुभव करने एवं आनन्द उठाने का मौका मिला या नहीं ।

देवकी तो श्री कृष्ण की साक्षात् जननी थी । लेकिन माता देवकी का दुर्भाग्य कहें कि जन्म लेते ही कृष्ण उनको छोड़कर यशोदा के स्तनंध्य बन गए । कृष्ण की समस्त बाललीलाओं का प्रत्यक्ष अनुभव कर आनन्द उठाने का सौभाग्य यशोदा माता को ही मिला । इस प्रकार यशोदा माता सब से श्रेष्ठ ''कुलदीपिका'' हैं । गोपियों के द्वारा यशोदा माता का संबोधन सुन्दर बना है ।

''हे लता (तरुण कोंपल) समान सुन्दरियों में श्रेष्ठे । इस कुल का प्रकाशक मंगलदीप समाने ! हमारी स्वामिनी ! यशोदाजी ! निद्रा छोड़कर जागिए ।

कोळुन्दु (तमिऴ शब्द) "तरुण कोंपल" शब्द का प्रयोग बडा अर्थपूर्ण है। लता या पौधे को उसके जड में (नीचे का भाग) किसी तरह की हानि होनेपर, तुरन्त लता या पौधे के तरुण कोंपल पर ही उसका असर पडता है। अर्थात् पहले पहल तरुण कोंपल ही मुरझाने लगता है। इस प्रकार व्रज भूमि के निवासियों में से समाज की निम्न सीढी के स्तर पर रहनेवाले (किसी को) या किसी गोपी को कोई कष्ट या दुःख हो तो, तुरन्त उसका असर यशोदा पर ही पडता है। इससे उत्पन्न दुःख के कारण उसका मुंह मुरझा जाता है। मतलब व्रज की दूसरी गोपियों से यशोदा का इतना प्रेम और गाढा बन्धुत्व है। हे महाभाग्यवती ! कृपया जागकर हमें श्री कृष्ण की सन्निधि में पहुंचा दीजिए। यही हमारी प्रार्थना है।

इन बातों से प्रसन्न होकर यशोदाजी ने गोपियों को आगे पहुंचा दिया। अब श्री कृष्ण का सुप्रभात गाया जाता है।

(त्रिविक्रम का रूप लेकर) आकाश में छेद बनाकर अपने पैरों को ऊपर बढाकर लोकों को नापनेवाले ! हे देवाधिदेव ! निद्रा छोडकर उठ जाओ।"

गोपियों को अवश्य इसका ज्ञान है कि श्री कृष्ण ने ही पहले त्रिविक्रम का अवतार लिया था। यहां यह भी समझना चाहिए कि गोपियों के मन में त्रिविक्रमन् एवं श्री कृष्ण दोनों अवतारों का ऐक्य दृढ रूप से प्रतिष्ठित है।

सामान्यतः लोग मानते हैं कि त्रिविक्रम अवतार तो भगवान के परत्व का सूचक है। लेकिन आऴ्वार तथा उनके अनुयायी आचार्यों का विचार है कि यह सौशील्य और सौलभ्य का सूचक भी है। कारण है कि इस अवतार में भगवान ने (त्रिविक्रमन) उच्च नीच भाव का विचार न करते हुए, भूतल निवासी समस्त चेतनों के सिर पर अपना पादारविन्द रखा और समस्त लोक को नापा। सब से एक सरीके मिलने का, व्यवहार का यह स्वभाव ही सौशील्य कहलाता है। सब को सुलभ होना सौलभ्य है। ये दोनों गुण परत्व और सौलभ्य जैसे त्रिविक्रम भगवान में पाते हैं, वैसे ही श्री कृष्ण में भी है। इसलिए तिरुप्पावै प्रबन्ध में यत्र तत्र दोनों अवतारों का ऐक्य बताया जाता है। तिरुप्पावै की तीसरी सूक्तिमें, त्रिविक्रम भगवान का गुण गाया गया। आगे भी 24 वीं सूक्ति में श्री कृष्ण - त्रिविक्रम के श्री चरणों की जय पुकारी जाएगी। गोपियों के मन में यह भावना होने से देवाधिदेव कहकर संबोधन करती हैं। गोपियों की प्रार्थना है - सब के सिर पर बिना भेदभाव वात्सल्य से चरणारविन्द रखनेवाले (त्रिविक्रम अवतार) आपके अनत्य भक्ताओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

सौलभ्य का महत्व बढाने, देवाधिदेव संबोधनकर भगवान का महत्व बढाया जाता है। इस प्रकार के परत्व (शक्ति) के बिना सौलभ्य मूल्यहीन होता है। हमारे लौकिक जीवन में भी इसका अनुभव करते हैं।

लेकिन श्री कृष्ण नहीं जागे। जब वे नहीं उठे, तब गोपियों को उनके न उठने का संकेत समझने में देर न हुई। हाँ, हमने बलदेवजी को नहीं जगाया। उनको पहले जगाना चाहिए था। लेकिन बलदेव इनके आगे शयन कर रहे थे। अब श्री बलदेव को, उनके चरणों का यश गाते हुए जगाती हैं।

हे लाल, स्वर्णमय आभरण से अलंकृत पादवाले ! हे श्रीमान बलदेवजी! छोटे भाई (श्री कृष्ण) और आप दोनों निद्रा मत कीजिये - आप दोनों उठिए।

देवकी के छः पुत्रों को (श्री कृष्ण के पहले) कंस ने मार डाला था। लेकिन श्री कृष्ण इस आपद से बच गए। आचार्यों का कथन है कि श्री कृष्ण के पहले, देवकी के गर्भ में बलदेवजी का पदार्पण हुआ था। श्री बलदेवजी के पादारविन्द जहां रखे जाते हैं, उस स्थान का अवश्य कल्याण होता है। श्री कृष्ण को मृत्यु मुख से बचा दिया। व्रज के सारे अनिष्ट दूर हो गए और सब प्रकार की समृद्धियों से भूमि भर गयी। गोपियों का विश्वास है परम पावन, मंगलकारी आपको जगाने से हमारी इष्ट-सिद्धि जरूर होगी। बडे भाई का पुरुषकारत्व की भी प्रार्थना है।

''श्रीमन्'' आप तो शेषावतार हैं। अनवरत भगवत् कैंकर्य में निरत होना ही आपकी ''श्री'' है। रामावतार में छोटे भाई (लक्ष्मण) थे। अब कृष्णाव्रतार में बडे भाई हैं।

भाई को साथ जगाने का मतलब है कि आप जागकर कृपया अपने छोटे भाई को भी जगाइए। बलराम तो बडे हैं यह उचित भी है। गोपियां जानती हैं कि बलराम बात करने में बडे कुशल हैं। उनकी बातों से श्री कृष्ण जल्दी उठेंगे और वांछित फल देंगे। प्रार्थना करती हैं - प्रभो। आप कृपया जागकर अपने छोटे भाई को भी जगाइए। हमारे ऊपर कृपावान बना दीजिए कि वे हमें वांछित पुरुषार्थ प्रदान करें।

श्रीकृष्ण के उत्थापन में मंत्रार्थ (अष्टाक्षर) का अनुसन्धान किया जाता है। यहां पर श्री कृष्ण के लोकविक्रांत चरणों की प्रशंसा से सर्वव्यापकत्व रूप मंत्रार्थ का अनुसन्धान है। बलदेवजी के उत्थापन से मंत्रार्थ सारभूत भगवत्शेषत्व

का अनुसन्धान है। तात्पर्य है जीवात्मा भगवद्भक्तों का शेषभूत है, अर्थात् भगवच्छेषत्व की परिपाकावस्था है। भागवत शेषत्व; एक ही वस्तु की दो अवस्थाएं हैं। इन पर अपनी (गोपियों की) भक्ति प्रकाशित है।

**स्वापदेश**

भगवान की भक्ति करने - भगवान के अत्यन्त प्रिय प्रत्यासन्न सज्जनों का पुरुषकार प्राप्तकर उनकी सन्निधि में जाना चाहिए। यह श्री वैष्णव स्वरूप है। तभी कार्य का मंगल होगा।

**कमल के समान अपने शुभ हस्त से कपाट खोलो)**

उन्दु मद कळिर्ट्रन ओडाद तोळ्-वलियन्
नन्द गोपालन् मरुमहळे! नप्पिन्नाय्
गन्दम् कमळुम् कुळली कडै तिरुवाय्;
वन्दु एङ्गुम् कोळि अळैत्तन काण्, मादविप्
पन्दर्मेल् पल्काल् कुयिल्-इणङ्गळ् कविन काण्;
पन्दार् विरलि! उन् मैत्तुनन् पेर् पाडच्
चन्तामरैक् कैयाल् शीर् आर् वळै ओलिप्प
वन्दु तिरवाय् महिळ्न्दु एलोर् एम्पावाय्॥ (18)

आचार्यों का कथन है कि पुरुषकार के बिना भगवान प्रसन्न नहीं होते। पूर्व पद्य में गोपियों ने बडे प्रेम से श्री कृष्ण को जगाया। जब वे प्रसन्न होकर नहीं उठे तब गोपियों ने सोचा कि प्रधान महिषी नप्पिन्नै (नीला देवी) को जगाए बिना श्री कृष्ण की सन्निधि में हम गए- यह उचित नहीं। रुक्मिणी देवी ही श्री कृष्णावतार में भगवान श्री कृष्ण की प्रधान महिषी मानी जाती है। नीला देवी का तमिळ नाम नप्पिन्नै है। नीलादेवी के अंशतया अवतीर्ण होने से नप्पिन्नै नीलादेवी कहलाती है। नप्पिन्नै यशोदा के भाई कुंभ की पुत्री व्रजवासिनी गोपी थी। व्रज में गोप-कुल को अपनानेवाले श्री कृष्ण की, आप अनुरूप एवं प्रिय महिषी थीं। आचार्यों का कहना है कि कंस वध के पहले, जबकि श्री कृष्ण व्रज में ही विराजते थे, उनसे परिणय हो चुका था। इसलिए आळ्वारों की गोष्ठी में (नीलादेवी) नप्पिन्नै की ही प्रसिद्धि है। गोदा देवी भी इस मार्ग को अपनाती है। तिरुप्पावै में इसलिए इस पद्य में नीलादेवी का उत्थापन करती है। संबोधन है हे नन्दगोप की पुत्र-वधू! श्री नप्पिन्नै देवी! भारत की परंपरा है कि स्त्रीयां विवाह के बाद पतिगृह में रहती हैं और उसीमें अभिमान रखती हैं। ससुर संबन्ध

विशेष रहने से नीलादेवी भी नंदगोप संबन्ध का विशेष आदर करती थी। गोपियां भी इस परंपरा से परिचित होने से "नंदगोप की पुत्र-वधू" संबोधन करती हैं।

इस संबन्ध में नंदगोप के दो विशेषण दिए गए हैं।

(1) मद बहनेवाले हाथियों के स्वामी। अथवा मत्त हाथी को जीतनेवाले या मत्त हाथी सदृश।

(2) युद्ध भूमि से पीठ दिखाकर पलायन न करके, शत्रुओं को पराजित करने लोक-विलक्षण भुजबलवाले। दोनों का तात्पर्य यह है कि नन्दगोपजी हाथी के समान अथवा हाथी को भी अपने हाथ से ही दबा देनेवाले अमित पराक्रमवाले हैं।

नन्दगोप का यह विलक्षण बल भी भगवान की ही देन थी। मतलब है - भगवान भक्तों को अपना अनुभव देते हुए उनको अपेक्षित शक्ति एवं बल भी प्रदान करते हैं। यही विलक्षण बल यहां कीर्तित है।

लेकिन नीलादेवी ने कोई उत्तर न दिया। गोपियों ने सोचा कि शायद उनका अभिप्राय था कि कौन जाने कि ये गोपियां किस बहू को संबोधन कर रही हैं। शायद इस अभिप्राय का अनुमान कर (जानकर) गोपियाँ स्पष्ट शब्दों से संबोधन करती हैं - हे नप्पिन्नै देवी ! कृष्ण की विवाहित धर्मपत्नी ! आपकी ही कृपा मांगती हैं। आप कृपा कर जागिए। और किवाड खोलिए। जब इसका भी कोई जवाब नहीं मिला तो कहती हैं - हे सुगन्धवाहक केशवाली !

शायद आपका विचार है कि प्रत्युत्तर न देने से आपको यहां अनुपस्थित मानकर इधर से निकल जाएंगी। लेकिन आपके केश-पाश का सुगन्ध ही, यहां कृष्ण के साथ आपकी उपस्थिति को बता रहा है। आपका केश-पाश सुगन्धित होकर चारों ओर सुगन्ध फैला रहा है। यह लीला छोडिए। किवाड खोलिए।

अब नीलादेवी ने अन्दर से ही यह उत्तर दिया होगा कि प्रातः काल होते ही कपाट खोल दूंगी। तब प्रातः काल का लक्षण बताया जाता है।

(1) मुर्गे इधर-उधर और सर्वत्र जाकर बाँग दे रहे हैं - बोल रहे हैं। (2) माधवी लता पर कोकिल बैठकर बारंबार "चूं चूं" कर रही हैं। अतः प्रातः काल हो चुका।

यह सुनकर भी निद्रा का अभिनय करती हुई नीलादेवी चुप रही। फिर गोपियां उसकी प्रशंसा करने लगती हैं। गेंद से युक्त अंगुलीवाली देवी !

खिडकी से देखने पर नीलादेवी अन्दर हाथ में गेंद पकडकर लेटी दीख पडी। शायद रात भर श्री कृष्ण के साथ स्पर्धापूर्वक गेंद खेलकर उसको जीत

लिया। अतः अपने विजय के कारण उस गेंद को हाथ में रखकर थकावट के मारे लेटी है (थी)। उक्त संबोधन से यह मतलब निकलता है।

अब नीलादेवी ने लेटे-लेटे गोपियों से पूछा कि अब क्या करना है?

गोपियां बहुत सन्तुष्ट हुई और उत्तर देती हैं - हम और क्या करेंगी? हम सब मिलकर आपके स्वामी और हमारे नाथ श्री कृष्ण का नाम संकीर्तन करेंगी।

नीलादेवी : ठीक है। इस कपाट का ऐसा प्रबन्ध कर रखा गया है कि आप बाहर से उसे खोल सकती हैं। देरी क्यों? किवाड खोलकर अन्दर आइए।

गोपियां: किवाड खुलने मात्र से हम तृप्त नहीं होंगी। परन्तु आप प्रसन्नतापूर्वक आप ही प्रेम से (दौडते-दौडते) हमारी ओर आ जावें। आपकी शोभा देखकर, हाथ की चूडियों की मधुर ध्वनि सुनकर हम धन्य होना चाहती हैं। लाल कमल पुष्प के समान अपने हाथ से ही किवाड खोलिए। यही हमें अभीष्ट है। चूडियों की मधुर ध्वनि सुनकर हमको भी प्रसन्नता एवं तृप्ति होगी। हमारे लिए आप चार पग चलीं। यह पुरस्कार हम को भी मिलेगा। हां, उससे श्री कृष्ण भी जाग जाएंगे। इसलिए कर्तव्य के लिए किवाड नहीं खोलना है - कि हम आपके यहाँ आकर चिल्लाती हैं। आप अपने हृदय से प्रसन्नतापूर्वक अपने शुभहस्त से किवाड खोलिए। यह भी इसका मतलब है कि हम अपने प्रयत्न मात्र से ही नहीं, आपके पुरुषकार में श्री कृष्ण को प्राप्त करने आयी हैं।

यहां गोपियों का उत्तम संस्कार प्रकट है कि किसी के यहां कृष्ण के यहां भी स्वयं किवाड खोलकर जाना नहीं चाहती।

आचार्य रामानुज को गोदा के प्रति विशेष भक्ति थी। वे बार-बार बडे प्रेम से तिरुप्पावै की आवृत्ति और अनुसन्धान करते थे। वे विशेषतः इस सूक्ति का विशेष सम्मान करते थे। तिरुप्पावै प्रबन्ध से इस अनन्य प्रेम के कारण श्री रामानुज तिरुप्पावै जीयर के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। (''जीयर'' सन्यासी को कहते हैं)

**स्वापदेश**

महालक्ष्मी के लिए पुरुषकारत्व, उपायत्व एवं उपेयत्व तीनों हैं। नित्यमुक्त जैसी गोपियां शेषी हैं।

भगवान के शंख एवं चक्र निग्रह के लिए मशहूर है। लेकिन लक्ष्मी के आभरण (चूडियां) निग्रह को जानता ही नहीं। हमें भगवान के अनुग्रह की अपेक्षा है। निग्रह के बिना अनुग्रह प्राप्त करने भगवान के चरणों में शरणागति

करने, महालक्ष्मी का पुरुषकार आवश्यक है । महालक्ष्मी का पुरुषकार करके भगवान के चरण में जाना चाहिए ।

## हे प्रभो ! अपनी अभय वाणी दीजिए

कुत्तु विळक्कु एरियक् कोट्टुक्कार् कट्टिल् मेल्
मर्त्तण्ड्र पन्च शयनित्तिन् मेल् एरिक्
कोतु अलर् पूङ्कुऴल् नप्पिन्नै कोङ्गै मेल्
वैत्तुक्किडन्द मलर्-मार्पा ! वाय्तिरवाय् ।
मैत् तडङ्कण्णिनाय् । नी उन् मणालनै
एत्तनै पोदुम् तुयिल् एऴ ओट्टाय् काण्
एत्तनै येलुम् पिरिवु आर्द्र किल्लायाल्
तत्तुवम्; अन्ड्रु तहवु-एलोर एम्पावाय् । (19)

भक्तों पर अनुग्रह करने श्री कृष्ण और नप्पिन्नै में जो होडा-होडी होती है, उसका प्रतिपादन इस सूक्ति का केन्द्रबिन्दु है जो बिलकुल नित्य नवीन है । (विशेषता यह है कि इसमें आधुनिक भावनाएं प्रकट हैं)

पिछली सूक्ति में इसका अनुभव किया कि सखियों की प्रार्थना सुनकर उनपर अनुग्रह दिखाती हुई नीलादेवी शयन से उठने लगी ।

कृष्ण तो लेटे-लेटे यह नाटक सुन रहे थे । अब कृष्ण ने सोचा अरे ! यह क्या कर रही है? भक्तों पर स्वयं अनुग्रह करने उठ रही है । इससे भक्तों के बीच मेरी बदनामी होगी । इस प्रयत्न से इसे रोकना चाहिए । इस प्रकार विचार करते हुए नप्पिन्नै को रोककर पलंग पर ही लिटा दिया । फिर भी नीलादेवी ने अपना प्रयत्न न छोडा ।

कृष्ण तो इससे कम न थे । श्री कृष्ण ने नीला देवी को उठने का मौका न देकर, इस तरह उसकी छाती पर लेट गए कि वह उठ न सकी । इस स्पर्श से परवश चित्त होकर ऐसे ही चुप लेट गयी । बाहर खडी गोपियों ने यह विलक्षण दृश्य देखकर, और दोनों के चुप रहते देखकर, निर्वेद के साथ श्री कृष्ण एवं नीलादेवी से जो प्रार्थना की, उसका वर्णन इस गाथा में है ।

तिरुप्पावै स्तुति पद्य (तनियन्) का प्रथम पद में "नीलातुङ्गस्तन गिरि तटी सुप्तमुद्बोध्य कृष्णं " (पृष्ट सं 1 देखें) इस प्रकृत सूक्ति का तात्पर्य बताता है ।

गोपियों का संबोधन है - प्रार्थना है ।

नीलादेवी के स्तन पर अपना वक्ष रखकर शयन करनेवाले हे विकसित हृदय ! मेरे भगवान ! मुख खोलकर हमसे एक बात कीजिए । यह संबोधन तो भगवान को बहुत प्यारा लगेगा । तो भी इसमें गोपियों की स्त्रीयोचित इर्ष्या भी प्रकाशित होती है क्या? अर्थात् यह भावना प्रकट है कि :

श्री कृष्ण पर गाढा अनुराग एवं भक्ति होने पर भी हमें आपका संपूर्ण अनुभव नहीं मिलता । देवदेवमहिषी होने के कारण नीला देवी को यह भाग्य प्राप्त है, जो उचित ही है । लेकिन हमें भगवान का दिव्य दंपतियों का कैंकर्य अवश्य मिलना चाहिए ।

कृष्ण और नप्पिन्नै कहां और कैसे सोते हैं? चारों ओर पंचमुखी मंगलमय दीपस्तंभ जल रहे हैं । गजदंत के पैरों से बना खाट है । अति मृदुल, सुलक्षणपूर्ण एवं पांच गुणों से युक्त (सौन्दर्य, शीतल, कोमल, सुगन्ध व शुभ आदि बिस्तर के ५ गुण) शयन पर चढकर, गुच्छ-गुच्छ होकर खिलनेवाले पुष्पधारक केशवाली नीलादेवी के स्तन पर अपना वक्ष रखकर शयन करते हैं । कृष्ण का हृदय पुष्प जैसा विकसित है - मतलब है भगवान का वक्ष देवी के संश्लेष से फूल गया है । विकसित है । कोई-कोई अरसिक लोग यह पूछ बैठते हैं कि निर्विकार बताए जानेवाले भगवान को देवी के संश्लेष से यह विकास कैसे?

लेकिन प्रमाणों में कहा जाता है कि भगवान में कर्मकृत विकारों का अभाव है । यह तो भक्त संश्लेष प्रयुक्त विकास है । ज्ञानियों ने भी इसका वर्णन किया है । बालकृष्ण भगवान की लीलाएं हैं । खेल-खेल में महत्वपूर्ण तत्व का प्रतिपादन है । भक्तजन के संश्लेष से भगवान के दिव्य-मंगल विग्रह में होनेवाला विकास, प्रणयित्व, भक्तवात्सल्य आदि गुणों का सूचक होकर, मंगलमय होता है - जो नित्य सत्य है ।

गोपियों की प्रार्थना है मुख खोलकर हमसे प्रेमसूचक एक बात कीजिए - आप उत्तर दीजिए - तात्पर्य है - आप अपने वक्ष को नीलादेवी को दीजिए । परन्तु हमें दुःखनाशक अपनी अभय वाणी मात्र दीजिए । हम कृतार्थ हो जाएंगी।

यहां यह समझना चाहिए कि दिव्य दंपतियों के मिलाप में बाधा डालना गोपियों का विचार नहीं है । अभयवचन मांगती हैं ।

गोपियों का यह वचन सुनकर, भगवान के मन में बडी दया उत्पन्न हो गयी। उनको अभय वचन देकर संतुष्ट करने की चेष्टा की। लेकिन नीला देवी ने अब इशारे से मुख खोलने से, उत्तर देने से रोक दिया। हां - भक्तों को अनुग्रह करने में उनके बीच होडा-होडी हुई। दोनों के बीच यह अद्भुत (वार्तालाप) बातचीत हुई होगी।

नीलाः (भगवान को (गोपियों को) अभय वचन - उत्तर देने से रोकते हुए) ये गोपियां तो मेरी सखियां हैं। उनसे पहले वार्तालाप करना मेरा ही काम है। मैं उत्तर दूंगी। आप कष्ट न करें।

भगवानः ये मेरे भी भक्त एवं सखियां हैं। मुझसे मिलने आयी हैं। मैंने कल ही उनको आज सबेरे आने के लिए कहा था। इनका स्वागत करना और अनुग्रह करना मेरा काम है।

नीलाः आपका कहना तो ठीक है। आप तो भक्तों पर दया दिखाकर, अनुग्रह करनेवाले ठहरे। इन गोपियों ने पहले (17 वीं सूक्ति) आपको ही जगाया था। तब उन पर ध्यान देकर प्रत्युत्तर क्यों नहीं दिया? अब वे मेरी शरण में आयी हैं। मैं उनका स्वागत करुंगी। जो मौका छूट गया, वह पुनः आपको नहीं मिलेगा।

भगवान : (अब जोर देकर कहते हैं) सुनो देवी ! तुम्हारा काम तो पुरुषकार (शिफ़ारिश करना) मात्र है। फल देने का काम तो मेरा है। अब मैं ही इनसे वार्तालाप करूंगा।

नी : आपका वचन तो बिलकुल सत्य है कि आप ही मोक्ष प्रदान कर सकते हैं। लेकिन अब गोपियां "मोक्ष" मांगने नहीं आयी हैं। उनको अब मोक्ष देने का प्रसंग भी नहीं है। अब गोपियाँ हमारे घर पर आयी हैं। सविनय प्रार्थना करती हैं। गोपियां मेरी शिकायत कर मुझे बदनाम न करें कि नीला देवी ने बात तक न की। इस प्रकार वाद-विवाद के कारण गोपियां उपेक्षित रह गयी कि कौन उनसे पहले बोले? गोपियों को (खिडकी के द्वारा देखकर) वस्तु स्थिति समझने में देर न हुई कि अब नीला देवी ही भगवान को उठने एवं बात करने से रोकती रही है। इसलिए फिर नीलादेवी से ही प्रार्थना करती हैं।

संबोधन है - हे अंजनालंकृत विशाल नयनवाली ! (नीलादेवी) तुम अपने पति श्री कृष्ण को एकक्षण भर के लिए भी शयन से उठने न देती हो।

अल्पकाल का भी (उनसे) विश्लेष का सहन न कर सकती हो। अहो ! तुम्हारा ऐसे रहना उचित नहीं है। यह बात तथ्य (सत्य) है।

इस प्रकार गोपियां नप्पिन्नै की प्रशंसा करते हुए उसको अपना दोष बताने में भी नहीं हिचकतीं अर्थात्-

गोः हमने संकल्प किया था कि व्रत समाप्त होने तक आंख में काजल नहीं लगाएंगी। फूल से न साजएंगी। आप तो इस संकल्प के विरुद्ध पुष्प धारण करती हैं। काजल भी लगाती हैं। यह तो पहला दोष है। दूसरा दोष यह है कि हमारे प्रति अनुग्रह दिखाने उद्युक्त भगवान को उस काम से रोक रही हैं।

(भगवान तो स्वतंत्र हैं - दंडधर हैं। चेतन का अपराध देखकर उसकी उपेक्षा भी कर सकते हैं - दंड भी दे सकते हैं) लेकिन तुम तो नित्य अज्ञान को दूर करनेवाली, कारुण्य रुपिणी, अशरण्य शरण्या आदि विरुद से भूषित तुमको भी हमारे ऊपर निर्दयता कहां से आ गयी? तुम्हारा तो भगवान से नित्य संश्लिष्ट है। इसलिए इसका यह प्रयोजन, हमें उनसे मिला देना ही है। भक्तों की भलाई के लिए यह तुमको अवश्य करना है।

अत्यन्त प्रिय सखी होने के कारण बडी स्वतंत्रता से अपनी बातें ज़ोर देकर कहती हैं। साथ ही उसको धर्म की याद भी दिलाती हैं।

इस सूक्ति का संवाद अत्यन्त रसपूर्ण ही नहीं, बल्कि बिलकुल आधुनिक विचार वाला एवं वर्तमान के अनुकूल है। यह तो नित्य नवीन है।

इसमें भगवान और नीलादेवी (महालक्ष्मी) का दैवी प्रेम, सामान्य लौकिक भाषा में बताया जाता है। महालक्ष्मी तो कारुण्यमयी है - अनुग्रहमयी है - यही उसका प्राकृतिक स्वभाव है। भक्त को उसकी कृपा का पात्र बनाना - पुरुषकार ही इनका स्वभाव है - तत्व है। यह सत्य है। इस महान तत्व को, सत्य को, इस सूक्ति में एक लौकिक अनुभव के समान प्रकटित किया है। यह इस सूक्ति का तत्व शिखर है।

**स्वापदेश**

वैष्णव संप्रदाय में दिव्य दंपति, मिथुन ही उद्देश्य है। उत्तम है। तत्व, हित एवं पुरुषार्थ में तत्व - दिव्य दंपति है; हित - शरण्य दंपति है; पुरुषार्थ - शेषि दंपति है - इस प्रकार भी बताया जाता है। यहां भगवान को प्राप्त करने, शरण्य दंपति (दोनों) सिद्धपूर्ण उपायभूत होते हैं। इसका तत्वार्थ है।

## अभी अनुग्रह करो । (नप्पिन्नै से)

मुप्पत्तु मूवर् अमरर्क्कु मुन्-शॅन्डु
कप्पम् तविर्क्कुम् कलिये ! तुयिल् एॅळाय्;
शॅप्पम् उडैयाय् । तिर्ल् उडैयाय् ! शॅट्रार्क्कु
वॅप्पम् काडुक्कुम् विमला ! तुयिल् एॅळाय्;
शॅप्पु अन्न मॅन्-मुलैच् चॅव्वाय्च् शिरु मरुङ्गु ल्
नप्पिन्नै नङ्गाय् ! तिरुवे ! तुयिल् एॅळाय्;
उक्कमुम् तट्टॉळियुम् तन्दु उन् मणाळनै
इप्पोदे एॅम्मै नीर् आट्टु - एलोर् एॅम्पावाय् । (20)

पूर्व सूक्ति में प्रदर्शित दिव्य दंपतियों की परस्पर स्पर्धा इतने में भी शांत न हुई । फलतः दोनों चुप रह गए ।

लेकिन गोपियों के मन में यह शंका उठती है कि हमने नीलादेवी से जो बात कही थी - उससे शायद नीलादेवी अप्रसन्न है और श्री कृष्ण भी । इसको अतिशंका कहते हैं ।

लेकिन वास्तविक बात यह है कि उनको गोपियां के प्रति कोई अप्रसन्नता नहीं, लेकिन यह समझ सकते हैं कि नीलादेवी भगवान की सुविधा जानकर गोपियों की प्रार्थना, मांग को भगवान से निवेदन करना चाहती थी ।

लेकिन गोपियों की आतुरता क्षण प्रति क्षण बढ रही है । अब गोपियां श्री कृष्ण एवं नीलादेवी की प्रशंसा कर उनको शयन से उठाने का प्रयत्न करती हैं । अब गोपियां उनकी स्तुति करने लगीं ।

पूर्व सूक्ति में भगवान के रसिकत्व एवं प्रणयित्व गुण का वर्णन किया था । अब प्रस्तुत गाथा में आपके शौर्य, वीर्य आदि गुणों का वर्णन किया जाता है । संबोधन है-

तैंतीस देवताओं के सामने उनको कोई दुःख आने के पहले ही उपस्थित होकर उनका कंप अर्थात् उनका दुःख दूर करनेवाले हे विक्रमी भगवान ! शयन छोडकर उठिए ।

देवताओं को भी कभी-कभी बडी आपत्तियों का सामना करना पडता है । (उदाः- हिरण्याक्ष, रावण आदि राक्षस एवं असुरों के द्वारा) ऐसे समय भगवान ही इन पर कृपा कर उनका दुःख दूर करते हैं । कष्ट का निवारण करते हैं ।

हां। लोक रक्षण और विशेषतः भक्तों का रक्षण ही भगवान अपना विशेष गुण मानते हैं। भगवान हमेशा अपने भक्तों को समय-समय पर होनेवाली आपत्तियों को पहले ही निवृत्त कर देते हैं। दुःख का आगमन और निवारण दोनों का पता नहीं लगता है। ऐसे आश्रित संरक्षक हैं। गोपियां भगवान से कहती हैं :- कामुक, राजस एवं स्वार्थी अहंकारी देवताओं को भी आप स्वयं पहले जाकर रक्षा करनेवाले हैं। हम तो उनसे विपरीत हैं। आप के नित्य कैंकर्य मांगने वाली सत्वगुण संपन्न, आपकी भलाई चाहनेवाली और अनन्यगति हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान के कतिपय गुणों से स्तुति की जाती है। गोपियों के कपट रहित एवं पवित्र मन की वाणी है।

हे आर्जव ! आश्रितों के रक्षक गुणवाले !

हे बलशालिन् ! शत्रुओं का नाश करने पर्याप्त बलवाले एवं शत्रुओं को ज्वर यानी भय देनेवाले।

परिशुद्ध स्वभाव ! शयन छोडकर उठिए।

आर्जव का मतलब है कि मन, तन, वाणी से एक रुप रहना। अर्थात् कपट न करना। आर्जव का उपयोग भक्तों के रक्षण में है। अर्थात् भगवान जिसकी रक्षा का वचन देते हैं, उसकी रक्षा आवश्य करते हैं।

भगवान के प्रधानतम छः गुणों में बल नामक एक गुण है। अर्थात् - भगवान इस संसार के चेतनाचेतन रुप समस्त वस्तुओं को अपने शरीर से बिना प्रयास धारण करते हैं। इस सामर्थ्य का नाम बल है। इस बल का परिचय गोवर्धन धारण प्रसंग में प्रकाशित हुआ। विमला ! अर्थात् किसी दुष्ट को दंड देते वक्त भी भगवान का निर्दयत्व अथवा पक्षपात नहीं दिखाई पडता। उस दोष से दूर रहते हैं। भगवान के दंड या सम्मान पाने का कारण संबन्धित व्यक्ति का कर्म - अर्थात् सौजन्यता या दुर्जनता ही होगी। इसके अतिरिक्त भगवान का पक्षपात कुछ नहीं।

उत्तरार्द्ध में नीलादेवी की स्तुति की जाती है। गोपियों को आश्चर्य होता है कि भगवान की स्तुति करने पर भी उनके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता। गोपियां सोचने लगीं कि हमने नीलादेवी पर निर्वेद प्रकट किया था। शायद इससे उनको रोष हुआ हो। ऐसा सोचकर नीलादेवी को संतुष्ट कर उनके पुरुषकार में अपनी इच्छा की पूर्ति करने के विचार से नीलादेवी की अनुपम सुंदरता की प्रशंसा करती हैं। हे स्वर्णकलश के समान (विरह का सहन करने में असमर्थ) कोमल स्तन, लाल मुख (अधर) और सूक्ष्म मध्य भागवाली!

हे नीलादेवी ! हे महालक्ष्मी ! शयन से उठिए । आचार्यों का कथन है कि महालक्ष्मी का पुरुषकार कभी व्यर्थ नहीं होता । महालक्ष्मीजी, अपराधी चेतन और भगवान दोनों के बीच खडी होकर, उचित उपदेशों के द्वारा दोनों को समझाकर परस्पर अनुरक्त बनाती हैं । आपका सौन्दर्य भी चेतन के लाभ के लिए भगवान को अपने वश करने में उपयुक्त होगा । गोपियों की कपट रहित प्रार्थना है कि हे देवी ! हमारी प्रार्थना सुनकर भी प्रसन्न न होनेवाले भगवान को आप अपने सौन्दर्य से परवश बनाकर हमपर अनुग्रह करनेवाले बना दीजिए । आगे का संबोधन ''महालक्ष्मी'' ! ही उक्त पुरुषकारत्व को दृढ बनाने के लिए है । नीलादेवी लक्ष्मी का अंश ही मानी जाती हैं । हे नीलादेवी ! आप तो कृष्णावतार में पुरुषकार कृत्य में महालक्ष्मी जैसी ही हैं । इसलिए कृपया शयन से उठिए ।

प्रसन्न नीलादेवी भगवान की इच्छा जानकर गोपियों से कहती हैं ।

नीलादेवी : मैं तो निद्रा नहीं कर रही । भगवान को बताने अनुकूल मौके की प्रतीक्षा में हूँ । अब बताइए कि मुझे क्या करना है ।

गोपियां : उठकर व्रतोपकरण ''पंखा और दर्पण'' और अपने वल्लभ श्री कृष्ण को (इन सबको) हमें प्रदान कर भगवान के विरह दुःख से संतप्त हमको अभी इसी क्षण में स्नान करा दीजिए । भगवान से मिला दीजिए ।

(यहां स्नान करा देने का अर्थ भी भगवान से मिलाना है । यहां ''अभी'' शब्द का विशेष महत्व है । अर्थात् गोपियों की आतुरता प्रकट है ।

पहले भी कई स्थानों में बताया गया है कि गोपियों का खास लक्ष्य भगवान से मिलकर अनुग्रह प्राप्त करना ही है । व्रत तो व्याज - मात्र है । यहां स्नान करने का अर्थ तात्पर्य भी - भगवदानुभव है ।

श्री कृष्ण और नीलादेवी में जो होडा-होडी हुई, ऊपर इसका विवरण है । उसमें आखिर भगवान ने पुरुषकारत्व के लिए उसको (नीलादेवी) ही मौका देने, नीलादेव्री से ही पहले गोपियों के निवेदन का उत्तर दिलाया । नीलादेवी से गोपियों की अंतिम प्रार्थना का तात्पर्य है कि आप को (पुरुषकार द्वारा) हमारी इच्छा की पूर्ति करनी चाहिए । हमें भगवान से मिला दीजिए ।

**आचार्यों का कथन है ।**

यहां पंखा कहने से संसार ताप का हरण करनेवाला द्वय मंत्र, ''आइना'' कहनें से आत्म स्वरूप का प्रकाशक ''मूल मंत्र'' मांगे जाते हैं । अर्थानुसन्धान के साथ नित्यानुसन्धान का भी बोध होता है ।

**स्वापदेश**

महालक्ष्मी नप्पिन्नै से गोपियों की प्रार्थना है -

जीव और भगवान के उत्तम रीति से मिलन की प्रार्थना करती हैं। शेष दंपति का ही कैंकर्य करना हमारा उद्देश्य है।

### जन्म से आपकी भक्ता
### अभिमान छोडकर विनय से आयी हैं।

एर्ट्र कलङ्गळ् एंदिर् पाङ्गि मीदु अळिप्प
  मार्ट्राति पाल् चॉरियुम् वळ्ळर् परुम् पशुक्कळ्
आर्ट्रप् पडैत्तान् महने ! अरिउराय्;
  ऊर्ट्रम् उडैयाय् ! परियाय् । उलहिनिल्
तोर्ट्रमाय् निन्ड्र शुडरे ! तुयिल् एळाय्
  मार्ट्रार् उनक्कु वलि तालैन्दु उन् वाशर्कण्
आर्ट्रादु वन्दु उन् अडि पणियुमा पोले
  पोर्ट्रि याम् वन्दोम् पुहळ्न्दु - एलोर एम्पावाय् ॥ (21)

पूर्व सूक्ति में गोपियों के द्वारा प्रशंसित नीलादेवी (भगवान का इशारा पाकर) गोपियों से कहती हैं -

नीलादेवी: हे सखियो। तुम लोग बडे सबेरे आकर क्यों इतना कष्ट उठाती हो? मैं तुम्हारा सब काम करा दूंगी। मुझे तुम लोगों से अलग न समझो। मैं भी तुम लोगों में से एक हूँ। हम सब मिलकर भगवान की स्तुति करेंगी- यह कहते हुए बाहर आकर गोष्ठी में शामिल हो गयी।

श्री कृष्ण को इस पर बडा अभिमान था कि वे नंदगोप के पुत्र हैं। इसलिए गोपियों का विचार है कि नंदगोप का पुत्र कहने से वे बहुत प्रसन्न होंगे। पहले उनके कई पराक्रमों से युक्त प्रशंसा से शायद वे प्रसन्न नहीं हुए। उनके अभिप्राय में वे महत्व के नहीं थे। अतः अब गोपियां नंदगोप की विलक्षण प्रशंसा करते हुए, उनके अभिमत संबोधन करती हैं। पहले (सूक्ति सं. 17) नंदगोप का औदार्य और (सूक्ति सं. 18) बल प्रशंसित हुआ। अब आपके ऐश्वर्य और गो सम्मृद्धि का वर्णन है। नंदगोप की दुधार, उदार एवं बृहत्काय गाएं निरन्तर इतना दूध देती हैं - स्रवित होता है कि कितने ही घडे जुटाए जाएं, वे सब भरकर ऊपर उमड पडते हैं। बरतनों की कमी होती है - न दूध

की । सभी बरतन भर जाते हैं । आगे बरतन रखनेवाला कोई नहीं होता । प्रथम एवं तीसरी गाथा में भी गाएं प्रशंसित हैं । उसमें उनके दूध देने का औदार्य बताया गया । अब बताया जाता है कि वे दूध देने में ही औदार्य नहीं, लेकिन उत्तम गुणों से भी युक्त हैं । गाएं बडी आकारवाली होते हुए अत्यधिक दूध देने में समर्थ होने के साथ, सींग से मारना, पैर से मारना, आदि दोषों से मुक्त हैं । बच्चों के लिए भी सुलभ हैं । उनसे डरने की कोई बात नहीं है । श्री कृष्ण अपने सौलभ्य से गोप-बालक और बछडों से मिलते थे । उनसे एक रस हो जाते थे । गोपियों का संबोधन है:- परमोदार बडी २ गायों को विशेषतः अपने पास रखने वाले एवं ऐसे महामहिम नन्द गोपजी के पुत्र आप कृपा कर उठिए ।

मतलब है - हम जानती हैं कि आप हम पर अनुग्रह करने के उद्धेश्य से ही गोपों का स्थान व्रज में - नन्दगोपजी के पुत्र के रूप में पधारे हैं । हमारे जैसे पामर लोगों को अनुग्रह करने के लिए आप यहां पधारे हैं । इसलिए आपके पास आकर प्रार्थना कर रही हैं । हमारी प्रार्थना मानना आपका स्वधर्म है ।

दूसरा संबोधन है :- हे भक्तरक्षण में श्रद्धावान ! भगवान का दृढत्व वेद के प्रमाण से स्थापित है । आश्रितों के रक्षण करने में सुदृढ रहना - यह भगवान का एक महान गुण है । आगे का तीसरा एवं चौथा संबोधन है - हे परब्रह्म भूत ! इस लोक में आविर्भूत तेजो रुपिन ! जागिये ।

भगवान के सभी वैभवों का पूर्णतया कभी वर्णन नहीं हो सकता । ब्रह्म शब्द भगवान का वेदान्त सिद्ध नाम है, जिसका स्वरूप और गुण अपरिमित एवं अतिश्रेष्ठ है ।

भगवान का यह असाधारण स्वभाव - गुण है कि इस संसार में अवतार लेते-लेते आप और प्रकाशमान बन जाते हैं ।

यहां यह ध्यान देने की बात है कि संसार में जन्म लेते-लेते यह जीव अविद्या, कर्म-दुःख आदि से विवश होकर मलिन बनता जाता है । संसार का संबन्ध छूटने पर ही प्रकाश पाता है । भगवान का स्वरूप इससे विपरीत है । संसार में अवतार लेने से आपको कोई दोष नहीं लगता । उलटा आपका तेज़ बढता है । कारण यह है कि राम, कृष्ण आदि अवतारों में ही आपकी, दया, क्षमा, सौलभ्य एवं सौशील्य आदि गुण प्रकाश पाते हैं । परमपद और क्षीरसागर में इनकी आवश्यकता न होने से (विषय के अभाव में) ये गुण गूढ रहते थे । मतलब है कि कर्म वश होकर जन्म लेने से जीव कलंकित होता है, कृपा परवश

होकर अवतार लेने से भगवान उज्जवल होते हैं। इसलिए संबोधन है - हे लोक में आविर्भूत तेजोमय !

अब नीलादेवी भी गोष्ठी में शामिल है। इसलिए भगवान से धैर्य के साथ बोलती हैं। (पहले दया की भावना प्रकट होती थी)

गो : हमारी प्रार्थना मानकर न उठेंगे तो आपके तेज़ की हानि होगी। आपका अवतार भी अर्थहीन हो जाएगा। ऐसा न होने दीजिए। आप जल्दी उठिए।

अब गोपियां एक अद्भूत उदाहरण देती हैं। शत्रु लोग अपने पराक्रम में विफल होने से आपके महल के सामने अगति बनकर आपकी शरण में आते हैं।

हे प्रभो ! हम भी अब ऐसे विनय के साथ, आपकी स्तुति करती हुई आपकी शरण में आयी हैं। हम पर कृपा दृष्टि रखना आपका स्वधर्म है। इसमें गोपियों का विचार है कि भक्ति, विनय आदि सद्गुणों से बहुत दूर, आपके शत्रुओं के समान, हम सब आसुरी प्रकृति की नहीं हैं। बल्कि हम जन्म से ही भक्तिपूर्ण परम सात्विक होने पर भी, आपकी आज्ञा टालकर संसार में ही स्त्रीयोचित गर्व से भटकती रह गयीं। अब आपकी कृपा से हमारा अभिमान चूर चूर हो गया। हां, आपके सुन्दर गुणों के सामने हम आपसे हार गयीं। अभिमान छोड़कर आपके दर्शन के लिए आयी हैं। हम जन्म-जन्म से आपकी भक्तिन हैं। तो भी हमारे मन में स्त्रीयोचित यह अभिमान थोडा रह गया था कि प्रेयसी के पास आना पुरुष का कर्तव्य है, न कि प्रेयसी स्वयं प्रिय को ढूंढकर उनसे मिलने जावे। अतः प्रभु को हमारे पास आना चाहिए। इसका ज्ञान न मिला - भान न हुआ कि किंकर होने के कारण, हमें ही स्वयं आपकी सन्निधि में पहुंचकर आपसे योग्य कैंकर्य मांगकर प्राप्त करना है। अब आपके अनुग्रह से हम अपनी भूल समझ सकीं। स्वाभाविक स्त्रीत्व का अभिमान छोड़कर आपके महल में, अनन्य गति होकर आपकी शरण में पहुंच गयी हैं। यह नैच्चानुसन्धान करने का एक प्रकार है। इस प्रकार गोपियां अपने पक्ष को विनय से, लेकिन उसी वक्त अधिकारपूर्वक प्रस्तुत करती हैं।

**स्वापदेश**

**हम (तुम्हारी बन्धु) तुम्हारी प्रशंसा/स्तुति करते हुए, शरण में आयी हैं। (श्री कृष्ण से गोपियां) निरुपाधिक शेषत्व से हारकर, शरीर को ही आत्मा समझना छोड़कर, हम ही कर्ता हैं, हम ही भोक्ता हैं, ऐसे गर्व को भी दूरकर, कर्माधीन होने के कारण, इनको पुनः देने पर भी स्वीकार न करते हुए, आपके गुणों से हारकर**

विनय पूर्वक आयी हैं। हमारे लिए आप ही समस्त विध प्राप्य हैं। उन प्राप्यों को प्राप्त करने, उत्तम उपाय, सिद्धोपाय के रूप में अंत तक हमारे साथ देनेवाले प्रपत्ति का अनुष्ठान कर, आपके चरणों में प्रपत्ति करते हुए आयी हैं।

## सुन्दर उभय नेत्रों से कृपा दृष्टि की प्रार्थना

अङ्कण् मा ञालत्तु अरशर् अभिमान
पंङ्गमाय् वन्दु निन् पळ्ळिक् कट्टिर् कीळे
शङ्गम् इरुप्पार् पोल् वन्दु तलैप्पेय्दोम्
किङ्किणि वाय्च् चय्द तामरैपूप्पोले
चङ्कण् चिरुच् चिरिदे एम्मेल् विळियावो?
तिङ्गळुम् आदित्तियनुम् एळुन्दार् पोल्
अङ्गण् इरण्डुम् कोण्डु एङ्गल् मेल् नोक्कुदियेल्
एङ्गळ् मेल् शापम् इळिन्दु - एलोर् एम्पावाय्। (22)

पूर्व सूक्ति में गोपियों ने प्रमाण सहित अपने अनन्यगतित्व का निवेदन करते हुए कृष्ण के अनुग्रह की प्रार्थना की जो श्री कृष्ण का स्वधर्म है।

नप्पिन्नै भी अब गोपियों की गोष्ठी में आ गयी जिससे गोपियों का उत्साह बढ गया। अब भी भगवान चुप रहे। शायद वे गोपियों की विशेष स्तुति और सुनना चाहते थे। भक्त की स्तुति भगवान को बहुत प्रिय लगती है।

गोपियां प्रार्थना करती हैं।

हे प्रभो ! आप किसी कारणवश हमारी उपेक्षा करने पर भी हम किसी दूसरे के यहां नहीं जा सकतीं। आप स्वयं जानते हैं कि हम आपकी अनन्य भक्ता हैं। हम आपके गुण और प्रेम से हारकर आपकी सेवा करने आयी हैं। पूर्वजन्म का कोई पाप है कि हमें आपके विरह में दुःख उठाना पडता है। आपकी कृपा दृष्टि और अनुग्रह मात्र से पाप से छुटकारा पाकर धन्य हो जाएंगी। इस प्रकार भगवान का कैंकर्य मांगना ही इस सूक्ति का केन्द्र बिन्दु है।

पूर्व सूक्ति में कथित दृष्टांत (राजाओं का) का ही विशद वर्णन है। वहां शत्रु राजाओं की बात की गयी। यहां ऐश्वर्य मदमत्त राजाओं (शत्रु एवं मित्र दोनों) की बात की जा रही है। इस विशाल भूमि के किसी कोने का राजा बनना भी आपके अनुग्रह का फल है। इस प्रकार एक (क्षुद्र) राज्य का शासक मात्र होने से राजा लोग गर्व की सीमा- भूमि तक पहुंच जाते हैं। थोडे समय में ही इस गर्व के फल-स्वरूप कई तरह के दुःख पाते हैं। इससे उनका गर्व

चूर्चूर हो जाता है। फिर अपनी भूल के लिए पछताकर (विभवावतार और अर्चावतार में) आपकी सन्निधि में उपस्थित हो जाते हैं। आपकी सेवा में निरत रहते हैं। इन राजाओं में कोई ऐसे भी होंगे जो जन्म से भगवद्भक्त हैं। कभी गर्व नहीं करते। भगवान को छोड़कर रहने पर प्रकृतिवशात् गर्व के गर्त में पडने के भय से आपके चरणों की छाया में रह जाते हैं। "सुन्दर एवं विशाल पृथ्वी तल पर शासन करनेवाले राजा लोग अपने अभिमान का नाश होने पर, आकर आपके विराजने के सिंहासन के नीचे जैसे जत्था बनकर रहते हैं।" इस प्रकार हम भी स्त्रीत्वाभिमान इत्यादि सभी गर्व छोडकर आपके निवासस्थान आकर, आपके पास पहुंच गयी हैं। अनन्यार्ह शेषत्व के अचल भावना से आपके चरणों में आयी हैं।

गोपियों की भाषा स्पष्ट है। भगवान की कृपा-दृष्टि पाने, आपका अनुग्रह पाने आयी हैं। क्या आपकी कृपा-दृष्टि हमारे ऊपर न पडेगी?

आपकी कृपा-दृष्टि एक दम हमारे ऊपर पडे तो शायद सहन नहीं कर सकेंगी। (गंगाजी का महा - प्रवाह भी कई स्थानों मे रुक-रुक कर ही बहता है।)

"छोटी किंकिणी के मुख के समान, (यानी अर्धविकसित) कमल पुष्प की तरह, आपकी लाल आंखें - आपकी कृपा-दृष्टि हमारे ऊपर क्यों नहीं पडेगी?

आप धीरे-धीरे, थोडा-थोडा करके आंख खोलते हुए क्रमशः हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिए। आपके मनोहर नेत्र छोटी किंकिणी के मुख के समान अर्ध-विकसित कमल पुष्प सदृश है। भगवान के नेत्र स्वभाव से लाल होते हैं। भक्तों के प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण लालिमा बढती है। यहाँ भगवान की आंखों की एक अद्भूत उपमा दी जाती है।

चन्द्रमा और सूर्य ये दोनों - शायद उगते होंगे, इस तरह से अपने सुन्दर दोनों नेत्रों से आप (अगर) हमारे ऊपर कृपा-दृष्टि डालेंगे तो हमारे ऊपर का शाप दूर हो जाएगा। तात्पर्य है -

चन्द्रमा शीतल एवं मनोहर रहता है। सूर्य तो तीक्ष्ण एवं तेजस्वी। दोनों कभी एक समय में नहीं उदय होते।

प्रकृति का यह नियम है कि कमल पुष्प सूर्योदय के वक्त खिलता है और चन्द्रोदय के समय बन्द हो जाता है। हम कल्पना कर सकते हैं - दोनों का (सूर्य

एवं चन्द्र) एक साथ उदय होने पर कमल आधा विकसित और आधा बन्द रहेगा। हमारे अपराधों के दर्शन में नेत्रों को बन्द हो जाना चाहिए और कोई गुणलेश रहे तो उसे देखने खुलना चाहिए। परम भक्तों के लिए शीतल और आनन्द प्रदायक होगा। द्वेष करनेवाले दुश्मन एवं पापी जीवों के लिए संतापक एवं भयंकर होगा। भगवान की कृपा दृष्टि का यह फल है कि हमारे ऊपर के सभी पाप निकल जाएंगे। भगवान की स्वाभाविक कृपा दृष्टि, दोनों नेत्रों का, भक्तों के लिए कल्याणकारक होता है। हे प्रभो ! आपकी दोनों आंखों की कृपा-दृष्टि से, हमारे पूर्व जन्म के सभी पाप (अनुभोक्तव्य प्रारब्ध कर्म) दूर हो जाएंगे, जिसके कारण हमें विरह दुःख भोगना पडता है। आपकी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि मात्र से सभी पाप दूर हो जाएंगे। फल स्वरूप हमारा आपसे विरह जन्म दुःख भी दूर हो जाएगा। समस्त कल्याण के पात्र बनेंगे। हमारा एकमात्र उद्देश्य आपकी प्राप्ति ही है। हे प्रभो। हमें ऐसे पवित्र अपनी कृपा-दृष्टि का लक्ष्य बना दीजिए। भगवान के प्रेम से हारकर, अनन्य गति होकर भगवान की शरणागति करती हैं - प्रेमी की सेवा कैंकर्य के लिए उत्सुक हैं। भगवान का कैंकर्य ही एक मात्र लक्ष्य है।

**स्वापदेश**

गोपियां इस सूक्ति में अनन्हार्य शेषत्व को बताती हैं। मायन् - पॅरुमायन्, कट्टुण्णप् पण्णिय, पॅरुमायन्। पॅरुमायन = बडा मायी, अपने को बंधवानेवाले। जो छोटी रस्सी किसी के लिए उपयोगी नहीं थी, उसीसे भगवान श्री कृष्ण बंध गए। आचार्य इसमें अनन्हार्य शेषत्व बताते हैं।

### सिंहगीत-यात्रोत्सव के दर्शन की इच्छा।

मारि मलै मुळैञ्चिल् मन्निक् किडन्तु, उरङ्गुम्
  शीरिय शिंगम् अरिवुर्टूत् ती विळित्तु
वेरि मयिर् पॊङ्ग ऍप्पाडुम् पेर्न्दु उदरि
  मूरि निमिर्न्दु मुळङ्किप् पुरप्पट्टुप्
पोतरुमा पोले नी पूवैप्पू वण्णा, उन्
  कोयिल् निन्ड्रु इङ्ङने पोन्तरुळि, कोप्पु उडैय
शीरिय चिङ्कासनत्तु इरुन्दु, याम् वन्द
  कारियम् आराय्न्दु अरुळ् - एलोर ऍम्पावाय्॥ (23)

**हम अनुमान कर सकते हैं कि बडे सबेरे गोपियों के आगमन, और उनकी प्रेम एवं भक्तिपूर्ण स्तुति से गोपियों के प्रति - श्री कृष्ण बहुत प्रसन्न हो गए और आदर से उनसे बोले-**

हे मेरी प्रिय गोपियो ! बडे सबेरे उठकर सभी गोपियों को जगाकर गोष्ठी बनाकर हमारे यहां के द्वारपालक आदि को जगा कर, तुम लोग अर्थी बनकर मेरे पास पहुंच गयीं। इसमें आपको बहुत कष्ट उठाना पडा। स्वयं तुम लोगों के पास पहुंचकर तुम लोगों की आवश्यकता जानकर सेवा करना तो मेरा कर्तव्य था। यही मेरा स्वरूप भी है। अब यह तो उल्टा हो गया।

भक्ति में तो तुम लोग ऋषि मुनियों से भी श्रेष्ठ हो। अब मैं तुम लोगों की इच्छा पूर्ण करना चाहता हूँ। अब तुम लोग अपनी इच्छाएं बिना कोई संकोच बता देना। जो मांगती हैं, सब कुछ दे दूंगा।

इस प्रकार भगवान ने अपना तत्व, स्वरूप, योग्यता और स्वभाव प्रकट किया।

इससे प्रसन्न गोपियां प्रत्युत्तर में बिनती करती हैं।

हे प्रभो ! हमारी प्रार्थना शय्या पर रहस्य में आपसे बतायी सुनायी जानेवाली नहीं है। मगर, आप कृपया दरबार में सिंहासन पर विराजिए, फिर हम अपनी प्रार्थना सुनाएंगी। दूसरी बात यह भी है कि अब हमें आपके शयन काल के सौन्दर्य का दर्शन मिला। इसके साथ आपके उठने की, चलने की एवं सिंहासन पर विराजमान होने की शोभा के दर्शन भी करना चाहती हैं। आप कृपया अपनी शय्या से उठकर, अपनी मनोहर गति से चलकर सिंहासन पर विराजिए। वहां हम अपनी प्रार्थना यथा क्रम सुनाएंगी। गोपियों की प्रार्थना का सुन्दर चित्र आगे पढ़ेंगे। प्रकृत सूक्ति में उठने एवं चलने की, (शोभा यात्रा) विराजने की सुन्दरता आदि का चित्र है।

प्रकृत सूक्ति के पूर्वार्ध में श्री कृष्ण का, शयन से उठकर अन्तपुर से बाहर पधारकर, सिंहासन पर विराजने तक का बडा रोचक चित्र है। वर्षाकाल में पहाडकी गुफा में (अपनी स्त्री के साथ) ठीक मिलकर लेटते गाढ निद्रा करनेवाला, पराक्रम में श्रेष्ठ सिंह जागकर, चिनगारी निकल आवे, इस प्रकार आंख खोलकर, (अपनी जाति के लिए उचित) सुगंध बहनेवाले केशर को (अयाल) बिखराते हुए, चारों ओर शरीर हिलाकर, दृष्टि फैलाकर देखता है (कोई आगंतुक आया है क्या?) आलस्य निकालने के लिए, हाथ पैर लंबा कर, गर्जन करते हुए अन्दर से निकलकर (जिस प्रकार) बाहर आता है, ऐसा परम गंभीर सिंह, भगवान का उपमान बताया जाता है। गंभीरता के साथ मनोहर भी लगता है। (पहली सूक्ति में ही श्री कृष्ण बाल सिंह कहे गए थे)

चौमासे में जब बरसात के पानी से रास्ता कीचडमय बन जाता है, लोग अपने-अपने घर पर ही रह जाते हैं। इस प्रकार सिंह भी इस समय में शिकार छोडकर पर्वतों की गुफा में निश्चिंत सो जाता है। बाद में निद्रा छोड़कर उठते वह जो-जो काम करता है, उसका वर्णन ऊपर किया गया है। सिंह की उक्त चेष्टाएं मनोहर दीख पडती हैं। अब गोपियां श्री कृष्ण की भी विविध चेष्टाएं - विविध सौन्दर्य देखने के लिए इच्छुक हैं।

इस सौन्दर्य ने आपकी शक्ति को भी छिया रखा है। गोपियां - सिर्फ आपका सौन्दर्य नहीं, लेकिन इस सौन्दर्य में छिपी (राख से ढके आग के समान) आपकी शक्ति के दर्शन भी चाहती हैं।

भगवान भी शायद शयन काल में गोपियों का काम पूरा न कर पाए। अब उस काम को पूरा करने के लिए जागने की प्रार्थना की जाती है।

''हे अतसि पुष्प समान रंगवाले श्री कृष्ण ! आप अपने मंदिर से इस दिशा में, यानी आस्थान मंडप में कृपया पधारकर, मनोहर आकारवाले अति श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजकर, हमारी अपेक्षा का, (हमारे आने के निमित्त कार्य पर) कृपा कर, विचार कीजिए।

गोपियों की बडी गोष्ठी में आकर इस प्रकार पुकारे जाने पर भगवान के मन में शायद यह शंका उठेगी कि ''क्या किसी दुष्ट ने इनको कोई कष्ट दिया? उस दुष्ट पर क्रोध से आपके नेत्र अधिक चमकने लगते हैं। हाथ पैरों का हिलाना भी स्वाभाविक है। मनोहर भी है। भक्तों के अभयप्रदान का गंभीर स्वर गर्जन कहा जा सकता है। (इस प्रकार आस्थान मंडप पधारकर दिव्य सिंहासन पर विराजने की प्रार्थना गोपियों के द्वारा की जाती है।) यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गोपियां अति शांतिपूर्वक प्रार्थना करती हैं। कोई व्यग्रता नहीं। जल्दबाजी भी नहीं करती।

(इसलिए यहां किसी दुष्ट के द्वारा दुःख पहुंचाने की बात नहीं है)

भगवान के दिव्य सिंहासन पर विराजने के बाद स्तुति वचनों से प्रसन्न कराकर, आपसे अभय वचन पाकर, बाद में यथा-क्रम अपनी प्रार्थनाएं उनके विचारार्थ सुनाना चाहती हैं। (गोपियों की समग्र प्रार्थना 29 वीं सूक्ति में मिलेगी। यह उनकी पूर्व तैयारी है।

''श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजकर हमारी इच्छा और अपेक्षा पर विचार कीजिए''

दिव्य धर्मासन पर विराजकर, प्रजा के सुख-दुःख सुनना, उसकी जांच करना शासक का कर्तव्य है। प्रभु की यह आज्ञा कभी बदलेगी नहीं, और सब को मान्य है। अन्यथा असमय में निवेदन करने पर भगवान शायद उस प्रार्थना को टाल भी सकते हैं। इस कारण से सिंहासन पर विराजने की प्रार्थना है।

**स्वापदेश**

कर्म परतंत्र होने से, प्रयोजनान्तर लोगों से बढकर, उसीको अनन्य प्रयोजन माननेवाले भक्त, भगवत् प्राप्ति विरोधी साधनान्तर निष्ठों से बढकर, साध्योपाय साधनान्तर निष्ठ लोग भी अपने दोषों से मुक्त होने कोई दूसरी गति न पाकर भगवान से प्रार्थना करते हैं - स्वयं ईश्वर ही इसे समझकर, हमारे लिए आवश्यक सभी अनुग्रह करेंगे। पूर्वजों का कहना है कि इसमें यही प्रार्थना की जाती है।

**मंगलशासन**

अन्ड्र इव् उलहम् अळन्दाय् ! अडि पोर्ट्रि !
चेन्ड्र अङ्गुत् तन्निलङ्गै चेट्राय् तिरल् पोर्ट्रि
पोन्ड्रच् चकडम् उदैत्ताय् ! पुहळ् पोर्ट्रि !
कन्ड्र कुणिला एरिन्दाय् ! कळल् पोर्ट्रि !
कुन्ड्र कुडैया एडुत्ताय् ! गुणम् पोर्ट्रि !
वेन्ड्र पहै केडुक्कुम् निन्कैयिल् वेल् पोर्टि
एन्ड्र एन्ड्र उन् शेवकमे एत्तिप् परै काळ्वान्
इन्ड्र याम् वन्दोम् इरङ्गु - एलोर एम्पावाय !! (24)

भगवान भक्त पराधीन हैं। यह भगवान का एक महान विरुद है। भक्त प्रेम से भगवान की प्रशंसा में स्तुति करते हैं। भगवान इस पवित्र प्रेम के बंधन में बंध जाते हैं। अपने प्राण-प्यारे भक्तों की सभी इच्छाएं पूरी कर देते हैं। क्यों, भक्त के किंकर भी बन जाते हैं। (उदा. अर्जुन का रथ हांकनेवाले सारथी तक बन गए।) अपने इस महान गुण, भक्त-पराधीनता का प्रकाशन करते हुए, गोपियों की इच्छा के अनुसार, अपनी शय्या छोडकर आस्थान मंडप की ओर चलने लगे। गोपियों में श्री कृष्ण के (चलने का) सौन्दर्य के दर्शन करने, उनसे यह प्रार्थना की थी। लेकिन यह दृश्य देखकर (श्री कृष्ण के चलने का) गोपियों के मन में बडा संकोच एवं पश्चात्ताप होने लगा। भगवान के चरणों की अतिमात्र कोमलता उनके ध्यान में आयी। ऐसे सुकुमार दिव्य चरणों को श्री कृष्ण ने इस

कठोरतम भूमि पर धर दिया है न? इससे आपको कितना दुःख पहुँचता होगा? हमने (कठोर चित्तवाली) ही इसकी प्रार्थना की थी। यह तो बडा अनुचित हो गया। ऐसा विचार आते ही अत्यन्त प्रेम परवश होकर आपका मंगल गाने लगीं। प्रकृत सूक्ति में गोपियां आपका मंगलाशासन करती हैं।

भगवान के अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन से भक्त परवश हो जाते हैं। अपने स्वकार्य को एकदम भूल जाते हैं। भगवान का मंगल चाहने लग जाते हैं। (रामायण में भी दंडकारण्य के प्रसंग में यही देखते हैं कि ऋषि मुनिगण आपका (श्री राम चन्द्रजी) स्वागत कर मंगलाशासन करने लगे।

यहां एक शंका भी की जा सकती है कि भगवान तो सर्वशक्तिमान हैं। समस्त दोष दूर करनेवाले हैं। सर्व कष्ट निवारक हैं। आपका अमंगल होना असंभावित है।

इसके अलावा मंगलाशासन तो आशीर्वाद देना है। आशीर्वाद देने की शक्ति बडों में है न कि छोटो में। चेतन जीव तो अपना मंगल चाहते हुए भगवान के पास जाता है। यह तो स्वरूप के विरुद्ध भी है।

इस संबन्ध में लोकाचार्य स्वामीजी के विचार का सारांश यहां उद्धृत है।

भगवान के प्रति भक्तों की भक्ति (अवस्था) दो प्रकार की होती है।

(1) ज्ञानावस्था (2) उत्कट प्रेमावस्था

ज्ञानावस्था में भक्त भगवान को सर्वोपरि, सर्वशक्तियुक्त, मंगलमय मानकर, उन्हीं को अपना एक मात्र रक्षक मानकर आपसे अपनी रक्षा मांगते हैं। यह तो सर्वव्यापक है।

लेकिन जब यह ज्ञान ही विकसित होकर, अधिक प्रेम रूपी बन जाता है, भगवान का अनुपम सौन्दर्य ही भक्त के अनुभव का विषय बन जाता है। भगवान के पूर्वोक्त गुण एकदम विस्मृत से हो जाते हैं। इस तीव्र प्रेम दशा की भावना/ भावुकता बड़ी बिलक्षण होती है। अत्यधिक प्रेम के कारण, भगवान भक्त के लिए अपना रक्ष्य-वस्तु सा हो जाता है। आपकी रक्षा की चिंता करने लगता है। प्रेमान्धता के कारण अपने को रक्षक (?) एवं भगवान को रक्ष्य मान लेता है। तदनुसार उनकी रक्षा करने आतुर हो जाता है। यह परिस्थिति के अनुसार मानसिक, मौखिक, अथवा कायिक भी होती है। मौखिक प्रयत्न का नाम है - मंगलाशासन अथवा जय-जयकार बोलना। इस प्रकार भगवान के मंगलाशासन करनेवालों के अनेक चरित्र उपलब्ध हैं। यह असाधारण दशा आळ्वारों में विद्यमान

पाते हैं। परियाळ्वार तो भगवान की सुन्दरता में परवश होकर, "पल्लाण्डु पल्लाण्डु" "जय विजयी भव" गाने लगे। उनकी पोष्य पुत्री आंडाळ भी उनका अनुकरण करते हुए, भगवान का मंगलाशासन गाने लगती है। इनकी भावना, काल को भी लांघकर जाती है कि अतीत चरित्रों के लिए अब मंगलाशासन करती है।

श्री कुलशेखर आळ्वार तो रामायण कालक्षेप सुनते वक्त रावण के साथ श्री राम चन्द्रजी के युद्ध का प्रसंग सुनकर उनकी मदद करने सेना लेकर रवाना हो गए थे। (कायिक)

प्रकृत सूक्ति के प्रथम पाद में त्रिविक्रमावतार में तीन लोकों को नापनेवाले भगवान के श्री चरणों का मंगलाशासन किया जाता है।

उस समय में (जब कि इन्द्र आदि देव-गण महाबलि से पीडित हुए थे) तीन लोकों को अपने ही चरणों से नापनेवाले हे त्रिविक्रम भगवान ! आपके उन श्री चरणों की जय हो।

शायद उस समय मंगलाशासन करनेवाला कोई न रहा हो। असुर एवं देवता अपनी-अपनी चिंता में लीन थे।

अब गोपियां मंगलाशासन करती हैं।

त्रिविक्रमावतार का वृत्तांत तो एक दो घंटो में समाप्त हो गया। विशेष कोई भी आपत्ति न आ पडी। रामावतार की बात कुछ दूसरी है। इसलिए अब आगे (दूसरे पाद में) रामावतार का स्मरण करते हुए आपके अप्रतिम पराक्रम का मंगलाशासन करती हैं।

"उधर (श्रीलंका) जाकर (जहां सीतापहरण करनेवाला रावण निवास करता है) सुंदर लंकापुरी का नाश कर देनेवाले हे रामचन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम की जय हो।"

हम अनुमान कर सकते हैं कि इस प्रकार त्रिविक्रम अवतार, रामावतार का मंगलाशासन सुनकर, श्री कृष्ण यों बोले-

रामावतार में तो मुझे बहुत मंगलाशासन प्राप्त हुए थे। श्री रामायण तो मंत्रलाशासनमय काव्य है। मंगलाशासन के प्रताप से ही मैं सीता के वियोग दुःख को पार कर सका। इसके अलावा रामावतार तो कभी बीत गया। अब मैं कृष्ण आपके सामने उपस्थित हूं। क्या श्री कृष्ण का कोई ऐसा काम नहीं जो मंगलाशासन पाने योग्य है? इसे सुनकर गोपियां श्री कृष्ण के वीर पराक्रम संबन्धी प्रसंगों को लेकर मंगलाशासन करती हैं। (तीसरे पाद से)

"शकटासुर नष्ट हो जाय, इस तरह से अपने चरणों से (उस शकट पर) लात मारनेवाले हे श्री कृष्ण ! तुम्हारे चरणों की यशकीर्ति की जय हो ।

पहले शकटासुर भंजन करनेवाले पादारविन्द की जय बोलती हैं । दूध पीने की इच्छा से रोने की भावना करते हुए पैरों को फटक कर उस गाडी को मारा (जिसमें असुरावेश था) जिससे वह असुर मर गया ।

पहले भी पादारविन्द का, (त्रिविक्रमन एवं रामचन्द्र आदि) यश गाया गया था । प्रस्तुत प्रसंग में पादरविन्द की यह महिमा है कि वहां माता-पिता इत्यादि किसी रक्षक के अभाव में, शकटासुर द्वारा प्राप्त आपत्ति को बालक श्री कृष्ण ने स्वयं अपने पादों से मिटा दिया । कृष्णचन्द्र की रक्षा करने से पादारविन्द का यह चिरन्तन यश उसका रक्षकत्व स्थापित है । इसलिए यहां भी पादारविन्द की जय बोली जाती है ।

कृष्ण ने ऐसा कहा होगा कि यह वृतांत तो (शकटासुर) शैशवावस्था का है । दूसरे वृतांत का वर्णन करो । शायद इसके उत्तर में वत्सक कपित्थासुर का वृत्तांत मंगलाशासनपूर्वक गाया जाता है ।

इस प्रसंग में एक वज़नदार वस्तु (बछडे) को उठाया और उसे घुमाकर ऊपर कपित्थ पर फेंक दिया । दोनों एक साथ नष्ट हुए, मर गए । एक वज़नदार वस्तु को उठाने में, ज़ोर से दूर फेंकने में पैरों को भूमि पर सुदृढ रखना पडता है, नहीं तो उठानेवाला गिर जाएगा । अतः इस काम में हाथ की तरह पैरों की शक्ति भी आवश्यक है - इसलिए यहां भी पैरों का मंगलाशासन उपयुक्त है ।

ये सब सुनकर श्री कृष्णं बहुत प्रसन्न हुए । और आगे इस दिशा में और किसी वृतांत का वर्णन करने प्रोत्साहित किया ।

पांचवें पाद में गोवर्धन धारण का वृतांत है ।

हे ! गोवर्धन पर्वत का छत्र के रूप में धारण करनेवाले ! (तुम्हारे सौशील्य, सौलभ्य आदि गुणों की जय हो ! गोवर्धन धारण की कथा से तो सब परिचित हैं ।

जब कृष्ण ने उनसे कहा कि स्वयं इन्द्र ने अपने कृत्य पर पछतावा प्रकट करते हुए, मेरे पास आकर माफ़ी मांगी और मेरा मंगलाशासन भी किया था ।

यह सुनकर गोपियां भगवान के दिव्यायुध का मंगलाशासन करती हैं । छठे पाद में :-

"शत्रुओं को जीतकर द्वेष मिटानेवाले हे विजयी ! तुम्हारे हस्तगत वेलायुध (भल्ला) की जय हो !

गोप जाति के लोग हमेशा हाथ में वेल् (भाला) रखते हैं। इसके अनुसार श्री कृष्ण के हस्त में वेल (भाला) नामक आयुध शोभायमान है जो वास्तव में चक्रराज का ही रुपान्तर है। ज्ञानी आचार्यों का कहना है कि चक्रराज श्री सुदर्शन ही भगवान के विभिन्न अवतारों में यथाप्रसंग अनेक रूपों का धारण करता है। जैसे-

वराह भगवान की दंष्ट्रा।
नरसिंह भगवान का नख।
परशुराम जी का परशु।
श्री रामचन्द्र का धनुष, बाण।
बलराम जी का हल।
श्री कृष्ण का वेल - (भाला)।

इस प्रसंग में वेलायुध का मंगलाशासन है जो श्री चक्रराज का मंगला शासन सम होता है।

श्री पेरियाळ्वार ने भी तिरुपल्लाण्डु दिव्य प्रबन्ध में भगवान के दिव्यायुधों का मंगलाशासन किया है। उनकी पोष्य पुत्री के मुंह से भगवान के दिव्यायुधों के मंगलाशासन की वाणी उचित है। गोपियां श्री कृष्ण के जीवन का आदि से अद्यतन प्रसंग तक पहुंच गयीं।

इससे प्रसन्न भगवान ने आज्ञा की। गोपियो ! तुम लोगों की स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ; तुम्हें क्या चाहिए ? तुम लोगों की इच्छा की पूर्ति करना मेरा कर्तव्य है। बताओ तो सही।

गोपियां:- इन प्रकारों से तुम्हारे वीर चेष्टाओं का ही यशोगान करती हुई, हम आज आपसे पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए आपके पास आ गयी हैं। दया कीजिये। गोपियां उपरोक्त प्रकार निवेदन करती हैं:-

हमारी दूसरी क्या इच्छा हो सकती है? यही इच्छा है कि इस प्रकार आपके नानाविध दिव्य चरित्रों का नित्य मंगलाशासन करती हुई आपके पास ही रह जाएं। यही हमारा पुरुषार्थ है। इसी पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हम आपके पास आपकी कृपा मांगने आयी हैं।

अतः कृपा कीजिएगा।

संक्षेप में, विशेषतः प्रकृत सूक्ति में भगवान के चरणारविन्दों की महिमा एवं पराक्रम गाती हैं, उनका जय जयकार किया जाता है। मंगलाशासन किया जाता है। आखिर अपना निवेदन व इच्छा बताती हैं।

आपके पादारविन्दों की जय हो। श्रीचरणों की जय हो।

पराक्रम की जय हो।
यश की जय हो।
गुण की जय हो।
हस्तगत वेलायुध की जय हो।

गोपियों की प्रार्थना के अनुसार श्री कृष्ण शयन से उठकर पैदल चले। सिंहासन की ओर उसकी सुन्दरता से पुलकित होकर (अडिमलर) पुष्प सम मृदुल चरणों का जय जयकार बोलती हैं।

(उपरोक्त प्रकार जय जयकार बोलने से जबान को षडरस भोजन से कम आनन्द नहीं मिलता)

**स्वापेश**

पुरुषार्थ बिना प्रयत्न चुप रहने से प्राप्त नहीं होता। पुरुषार्थ को अर्थित होकर प्राप्त करना चाहिए। उसे मानकर हम अपने अभिमत लक्ष्य की पूर्ति के लिए यहां आयी हैं। हमारे ऊपर कृपा करनी चाहिए। चेतन पर कृपा करना भगवान का स्वरूप है। चेतन भी हमेशा चिंताकुल है कि भगवान को कब क्या आपत्ति आएगी। "दया" करना दोनों का स्वरूप है। गोपियां भगवान की सुन्दरता एवं प्रेम से परवश होकर अपने आने का लक्ष्य - "अभिमत पुरुषार्थ प्राप्ति" तत्काल निवेदन करने में असमर्थ पाती हैं। मंगलाशासन करने युक्त विषय वैलक्षण्य है - भगवान का स्वरूप।

**जन्म वृत्तांत !**
**हम तुमको मांगने आयी हैं।**

ओरुत्ति महनाय्य् पिरन्दु ओर् इरविल्
ओरुत्ति महनाय् ओळित्तु वलरत्
तरिक्किलान् आहित् तान् तीङ्गु निनैन्द
करुत्तैप् पिळैप्पित्तुक् कञ्जन् वयिर्ट्रिल्

नॅरुप्पु एॅन्र निन्ड्र नॅडुमाले उन्नै
अरुत्तित्तु वॅन्दोम्, पॅरै तरुतियाहिल्
तिरुत् तक्क शॅल्वमुम् शेवकमुम् याम् पाडि
वरुत्तमुन् तीरन्दु महिळ्न्दु - एळोर एॅम्पावाय् ॥ (25)

हम मान सकते हैं कि पूर्वोक्त मनोहर मंगलाशासन रूपी स्तुति सुनकर श्री कृष्ण आनन्द सागर में निमग्न होकर बोले:-

''वाह-वाह'' प्रिय गोपियो ! तुम लोगों के वचन (मेरी जीत के जय जयकार) बहुत मीठे, हृदयस्पर्शी एवं प्रेम - भरित हैं) यह तो तुम लोगों के लिए जन्म-सिद्ध है। बडे सबेरे उठकर, ठंड की कोई परवाह न करती हुई, यहां पहुंचने में तुम लोगों को बडा क्लेश हुआ है। आपको वांछित फल प्राप्ति अवश्य होगी।

श्री कृष्ण का प्रोत्साहन पाकर प्रत्युत्तर में गोपियां बोलीं : आपकी दिव्य लीलाओं का गान करती हुई, सानन्द आनेवाली हम को क्लेश या दुःख कैसे? हम सब आनन्द का अनुभव करती हुई आराम से यहां पहुंच गयी हैं। आपको छोडकर यहां और कौन सी चीज़ अपेक्षित है? उक्त भावना प्रकृत सूक्ति में प्रकट करती हैं - गोपियां। पूर्व सूक्तियों में भगवान के कई लीलाओं का, प्रभाव का अनुभव किया। अब सब से विलक्षण एक वैभव अर्थात् जन्म-वृत्तांत पर प्रकाश डाला जाता है।

आळ्वारों का विचार है कि भगवान बडे कुतूहल के साथ इस संसार में अवतार लेते हैं। जन्म (अवतार) लेने मात्र से किसी पर दोष न लगेगा। जीव तो अपने पूर्व कर्म के कारण इस संसार में जन्म लेकर कई प्रकार का दुःख भोगता है। पाप कार्य करने पर बडे कष्ट से शरीर छोडकर नरकादि में जाता है। इस कारण से जन्म निन्दित है।

मगर भगवान का अवतार इससे बिलकुल भिन्न है। संसार के सभी चेतनों के उद्धार के लिए अपनी असीम कृपा से प्रेरित होकर भगवान अवतार लेते हैं। समस्त दोषों से रहित अर्थात् इस लोक में जन्म संबंधी सभी दोषों से दूर रहते हैं। इसलिए आपका जन्म अवतार कहा जाता है। (कृपया सूक्ति सं. 21 भी देखिए)

श्री कृष्ण का जन्म वृत्तांत अति अद्भुत एवं विलक्षण है।

''भाग्यवती एक महिला (देवकीजी) के पुत्र के रूप में जन्म लेकर, अवतार के उसी दिन रात को (आयप्पाडी-गोकुल) व्रज में नन्दगोप के यहां पधार कर, भाग्यवती (यशोदा नामक) एक महिला का पुत्र बनकर गुप्त रूप से वर्धित हो रहे थे।

सूक्ति में देवकी या यशोदा का नाम लिए बिना, ऑरुत्ति - एक महिला - एक महिला कहना बड़ा गंभीर है। एक महिला ने (देवकी) अपने गर्भ में भगवान का धारण कर जन्म दिया। दूसरी महिला ने (यशोदा) स्तन्य दिया। बडे प्रेम से पाला-पोसा। आपके विलक्षण बाल लीलाओं का खूब अनुभव किया। इस भाग्य को सूचित करने के लिए ही नाम लिए बिना ''ऑरुत्ति'' एक महिला का उल्लेख है। यहां ''एक'' शब्द से मतलब है - ''अद्वितीय'' संबोधन है:-

(कंस) स्वयं (आपकी वृद्धि का) सहन न कर सकते हुए, द्रोह की चिंता करनेवाले कंस के अभिप्राय को व्यर्थ बनाकर, उस कंस के पेट में आग के समान (दुःख देते हुए) रहनेवाले हे सर्वेश्वर। परम प्रेमशालिन् !''

अपना जन्म स्थान मथुरा छोडकर सुंदर व्रज भूमि में पहुंच जाने पर भी दुष्ट कंस, द्वेष भावना के कारण, आपकी वृद्धि का सहन न कर सका। कपट बुद्धि से उनका (कृष्ण) द्रोह करता रहा। किसी प्रकार मारने की चिंता में रहा। कृष्ण ने कंस के इस प्रयत्न (विचार) को व्यर्थ बना दिया। कंस के वृत्त को उलटा कर दिया।

कंस गुप्त रूप से असुरों को व्रज भेजकर श्री कृष्ण को उन असुरों के हाथ से मारने के प्रयत्न में रहा। लेकिन कृष्ण ने कंस द्वारा प्रेरित सभी असुरों को स्वयं संहार कर दिया।

कंस का निमंत्रण पाकर श्री कृष्ण धर्नुयज्ञ देखने जब मथुरा पधारे, तब कंस द्वारा गुप्त रूप से प्रेरित कुवलयापीड (हाथी) और दूसरे असुरों को मारकर कंस के पेट में आग डाल दी। आग के समान दुःख दिया। आखिर कंस को भी संहार कर दिया। यह है कंस के विचार को उलटा बनाने की बात। यह ''द्रोह की चिंता'' विशेष प्रयोग है। मतलब है:- तीन कारणों से - अर्थात मन, वाक्, काया से अपराध करने पर ही आप किसी जीव को अपराधी मानकर दंड देने उद्यत होते हैं। शरीर मात्र से या सिर्फ वाक् से अपराध करने पर उसे प्रमादिक अथवा अबुद्धिपूर्वक समझकर तुरन्त दंड देना उचित नहीं समझते। जब आगे परीक्षा लेने पर मालूम हो

जाय कि इस पापी के हृदय/मन में द्रोह भी भरा है, आप (भगवान) उसको दंड देते हैं।

कृष्ण की उपस्थिति में ही या उनके सुनते-सुनते कंस ने अपने नौकर असुरों को यह आज्ञा दी कि इन बालकों को पकडो। मार डालो। गोपों को मार डालो।

तब कृष्ण ने विचार किया कि कंस के मन में ही द्रोह भरा है। इसी कारण "द्रोह की चिंता करनेवाला" कंस का प्रयोग है। इस प्रकार, कंस मन वाक्, काया तीनों से द्रोही ठहरा।

कंस द्वारा पीडित साधुजनों के मन में जो भय रूपी अग्नि थी, उसे दूरकर, श्री कृष्ण ने कंस के पेट में डाल दिया। अर्थात् कंस प्रेरित असुरों के संहार से साधु पुरुषों के मन का भय मिटता गया, कंस के मन में वह बढता गया संबोधन है - नेडुमाले ! हे सर्वेश्वर परम प्रेम शालिन् !

तमिऴ् भाषा में "**माल**" शब्द का यह अर्थ भी है - व्यामोह या सीमातीत प्रेम। भक्तों पर अपरिमित प्रेम के कारण ही भगवान का नाम तमिऴ् में (**माल, नॆडुमाल-तिरुमाल हो गया।**) तिरु-लक्ष्मी। भक्तों के शत्रु को (कंस जैसे असुर) अपना शत्रु मानकर उसको दंड देते हैं। संबोधन में इस विलक्षण शब्द का प्रयोग है।

**गोपियों की प्रार्थना है :**

आपसे (पुरुषार्थ मांगती, अथवा आपकी सेवा मांगती) यहां पहुंच गयी हैं। हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ को आप अगर दे देंगे तो श्री लक्ष्मीजी के योग्य आपके ऐश्वर्य का, पराक्रम का भी कीर्तन कर विश्लेष दुःख मिटाकर आनन्दित हो जाएंगी" ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगी।

यह अर्थ प्रतीत होगा कि हम आप से कुछ मांगने आयी हैं। लेकिन गोपियों का हार्दिक विचार है कि हम आपको (श्री कृष्ण) ही मांगने आयी हैं)

गोपियां भगवान को ही अपना धारक, पोषक और भोग्य रूप अर्थात् अपना सर्वस्व माननेवाली हैं। उच्च कोटि के भक्त तो हमेशा आपकी (भगवान) सेवा करते पास ही रहना चाहते हैं, न तो कोई दूसरा पुरुषार्थ लेकर लौटना चाहते हैं। गोपियों का अपेक्षित, स्वयं भगवान ही है। इस प्रकार यहां गोपियां अनन्य प्रयोजनत्व का प्रख्यापन कर रही हैं।

तिरुप्पावै प्रबन्ध में आदि से कई सूक्तियों में व्रत की और व्रतोपकरणों (पऱै) की जो बात कही गयी है, यहां भी व्रतोपकरण "पऱै" मांगी जाती है। अर्थात् स्वयं भगवान को प्राप्त करना चाहती हैं। आगे गोपियां अपने दुःख

निवृत्ति एवं परमानन्द प्राप्ति का वर्णन करती हैं। गोपियां भगवान से कह रही हैं। "हे प्रभो आपके ऐश्वर्य का एवं पराक्रम (लीलाओं) का गान करती हुई चलने वाली हमको रास्ते में किसी प्रकार का क्लेश नहीं हुआ। मगर आनन्द ही आनन्द रहा"। उत्तम लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न ही आनन्ददायक होता है। लक्ष्मी जी का उचित ऐश्वर्य कहने का तात्पर्य है - लक्ष्मीजी भगवान के अत्यंत अनुरूप एवं अतिप्रिय स्वरूप विग्रह, गुण वैभव ऐश्वर्यशाली हैं - इत्यादि से दिव्य दंपतियों का परस्पर अनुरुप्यता की प्रशंसा करते हुए गोपियों का कीर्तन है।

पांचवीं सूक्ति की टीका में ही इसका उल्लेख है कि श्री कृष्ण की तरह आचार्य/भक्तों की भी दो माताएं हैं।

(1) गायत्री (2) अष्टाक्षत्री

आचार्य, भक्त गायत्री में जन्म लेकर अष्टाक्षरी में पोषित हैं।(प्रत्येक जीव के लिए भी यह लागू होता है) आचार्य का लक्ष्मी समानत्व कहा जाता है। लक्ष्मी का काम है - चेतन के विषय में भगवान से सिफारिश करना। आचार्य का भी यही काम है। भगवान पुरुषकार के बिना किसी को स्वीकार नहीं करते। पुरुषकार कृत्य करनेवाली लक्ष्मीजी के ये तीन गुण हैं :- चेतन के प्रति कृपा, भगवान के प्रति पारतंत्रय तथा अनन्यार्हत्व विशेष रूप से अनुसंधेय होते हैं।

**स्वापदेश**

हमारा स्वरूप लाभ- उनकी प्रपत्ति करने से जो प्राप्त होता है, उसी के सदृश है। सभी सुख सफलताएं आदि सब की प्राप्ति एवं दुख निवृत्ति होकर परमानन्द भी उनको आश्रय करने से ही प्राप्त होगा। यह तत्व इसमें बताया जाता है।

गोपियां श्री कृष्ण से कुछ प्राप्त करने के बदले स्वयं कृष्ण को ही प्राप्त करना चाहती हैं। यह उनकी अंतरंग कामना है। लक्ष्मी जिस संपत्ति को चाहती है, उसी संपत्ति को गोपियां भी चाहती हैं।

**प्राचीन व्रत-श्रेयः परंपरा की प्रार्थना :**

माले ! मणिवण्णा ! मारहळ्ि नीर् आडुवान्
मेलैयार् शय्वनहळ् वेण्डुवन, केट्टियेल् ।
ज्ञालत्तै एल्लाम् नडुङ्ग मुरल्वन
पाल् अन्न वण्णत्तु उन् पाञ्चजन्नियमे

पोल्वन चंगङ्कल् पोय्प्पाडु उडैयनवे;
चालप् परुम् परैये पल्लाण्डु इशैप्पारे
कोल विळक्के, कॉडिये, वितानमे ;
आलिन् इलैयाय् । अरुळ् - एलोर एम्पावाय् । (26)

पूर्व सूक्ति में गोपियों ने अपने अनन्य प्रयोजनत्व का प्रकाशन करते हुए व्रतोपकरण की बात की। हम अनुमान कर सकते हैं कि इसे सुनकर भगवान ने कहा :-"तुम लोग परस्पर विरुद्ध बातें करती हैं। तुम्हारे अपेक्षित पदार्थ का स्पष्ट विवरण कहो।" (भगवान तो सब जानते हैं - गोपियों के मुंह से सुनना चाहते हैं) प्रत्युत्तर में गोपियां स्पष्ट शब्दों में अपनी इच्छाएं प्रकट कर श्री कृष्ण से निवेदन करती हैं। प्रकृत सूक्ति में गोपियों की प्रार्थना है।

हे प्रभो ! मार्गशीर्षक नामक यह व्रत पूर्वजों से अनुष्ठित है। हमारे बडों की आज्ञा से अब हम इस व्रत का अनुष्ठान कर रही हैं। आपका भी आश्वासन प्राप्त है। इसके लिए पाञ्चजन्य शंख, भेरी, दीप, ध्वज, वितान आदि वस्तुएं अपेक्षित हैं। आप कृपाकर इन सब को प्रदान कीजिए।

पहले अवतारिका में इसका विवरण दिया गया है कि मार्गशीर्ष व्रत का अनुष्ठान करने के लिए ही गोप वृद्धों ने गोपियों को श्रीकृष्ण के पास जाने का आदेश देकर आशीर्वाद दिया था। अपने बडों को प्रसन्न करने के लिए और देश की संपन्नता के लिए व्रतानुष्ठान आवश्यक है। व्रत के लिए कृष्ण से आवश्यक सामग्रियां मांगने में गोपियों की होशियारी प्रकट है। उनकी प्रार्थना में एक चमत्कार है, जिसको श्री कृष्ण ने भी समझ लिया, लेकिन उसे प्रकट नहीं करते।

चमत्कार यह है कि गोपियां श्री कृष्ण से ऐसी सामग्रियां मांगती हैं, जिनको लेते हुए भगवान को ही स्वयं इनके साथ जाना पडेगा। क्योंकि पहले ही गोपियों को आश्वासन दिया है कि वे व्रत की पूर्ति के लिए अपनी तरफ से सब मदद दे देंगे। - जैसेः-

पाञ्चजन्य के समान शंख स्वयं पाञ्चजन्य ही हो सकता है; (जो भगवान के हस्त को अलंकृत करता है) न कोई दूसरा। पाञ्चजन्य भगवान से अलग नहीं हो सकता। पाञ्चजन्य शंख को किसी दूसरे को देकर भगवान अपने स्थान में उसके बिना कैसे रहेंगे? शंख लेकर भगवान को ही स्वयं गोपियों के साथ जाना पडेगा। अर्थात् वे इनका अगुआ बनकर जायेंगे। शंख बजानेवाला

सबके आगे ही रहता है। पांञ्चजन्य आदि भगवान के मांगने का अर्थ-भगवान को ही मांगना है, जो गोपियों का उद्देश्य है। जब भगवान को आगे करके उनके शंखनाद से यात्रोत्सव निकलेगा, तब भगवान की महिमा के अनुकूल भेरी, दीप, ध्वज, वितान और आगे पल्लाण्डु गाते हुए चलनेवाले आदि की आवश्यकता है। यह गोपियों की होशियारी है।

सूक्ति के आरंभ में भगवान के प्रति संबोधन है - **(माले)** हे व्यामुग्ध (पूर्व सूक्ति में **नंडुमाल** का संबोधन है) इससे प्रकट है कि हाल में भगवान ने गोपियों के प्रति अपना विशेष व्यामोह प्रकाशित किया है। इसलिए पुनः यह संबोधन है।

गोपियों की विज्ञप्ति सुनकर भगवान ने सोचा कि छोटी उम्रवाली ये गोप कन्याएं बडे सबेरे उठकर बहुत परीश्रम उठाकर, सब को जगाकर, नीलादेवी का पुरुषकार प्राप्त कर, मुझको आस्थान मंडप में पधारने बाध्य कर, मधुर स्तुति में अपने अनन्य प्रयोजनत्व का प्रदर्शन कर रही हैं। इनका ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य विलक्षण एवं अद्‌भुत है। ऐसा सोचकर गोपियों पर आपका (श्रीकृष्ण) प्रेम उमडकर उठा और व्यामोह सूचक अपनी दृष्टि से इन गोपियों को निहारते हुए परवश चित्त रह गए। गोपियां भी इस भावना को समझकर उनकी व्यामोह की स्तुति करती हैं। इसलिए पुनः उक्त संबोधन है ''**माले** - हे भक्तों के विषय में व्यामोह करनेवाले। मणिवण्णा ! (मणिवर्णा) नील मणि के समान

गोपियों का विचार है कि ''व्यामोह'' श्रीकृष्ण का असाधारण स्वभाव है। श्री रामचन्द्र का प्राकृतिक स्वभाव शरणागत वात्सल्य है। श्री कृष्ण का व्यामोह इससे आगे बढ गया है। शरणागतों के प्रति ही व्यामोह नहीं लेकिन सर्वसाधारण भक्त से भी व्यामोह। ''मणिवर्णा'' संबोधन ही आपके सौलभ्य, सौन्दर्य आदि कई गुणों को प्रकट करता है। आचार्यों ने मणिवर्ण का और कई उदाहरण देकर - मणि सदृश - प्रमाण देते हुए लंबी व्याख्या की है। उनमें से एक यहां उद्‌धृत है :-

रत्न बडे प्रयत्न से प्राप्त किया जाता है। उसके गुण से अज्ञ, उसे अल्प कीमत पर बेच देता है। कीमत समझनेवाले व्यापारी को उस मणि के मिलने पर, वह उसे उचित कीमत पर बेचता है। सार्वभौम को मिलने पर स्वयं पहनते हैं। इस प्रकार अज्ञ लोग भगवान को भी, धन, पुत्रादि क्षुद्र सांसारिक प्रयोजन के लिए बेच देते हैं। अर्थात् अल्प फल पाकर निवृत्त हो जाते हैं। कुछ विशेषज्ञ लोग मोक्ष पाकर लौट जाते हैं। परम भक्त भक्ताग्रेसर हमेशा आपका ही अनुभव करते हुए, ब्रह्मानन्द

का अनुभव करते रहते हैं। आपसे कोई चीज़ नहीं मांगते लेकिन स्वयं परम योग्य आपका नित्यानुभव करने में निरत हैं। इस प्रकार मणिवण्णा !

रत्न के खो जाने से जिस प्रकार रो-रोकर चिल्लाते हैं, विरहित भक्त विरह के आंसू बहाते हुए परेशान रहता है। अर्थात् एक क्षण मात्र भी भगवान के स्मरण, ध्यान बिना निकल जाय तो चिल्लाते हुए परेशान हो जाते हैं। विवेकी जन ही परतत्व को पहचान सकते हैं। इस प्रकार मणि से भगवान का साम्य है - प्रमाण भी है। इसलिए आप "**मणिवण्णन्**" हैं।

"(प्रलयकाल में) वटपत्र पर शयन करनेवाले भगवान ! जो बडों से अनुष्ठित किया जाता है, ऐसे मार्गशीर्ष स्नान (व्रत) के अनुष्ठान के लिए अपेक्षित वस्तुओं के बारे में अगर सुनना चाहते हैं तो सुनिए - कहेंगी ; सुनिए। **सुनना चाहते हैं तो सुनिए** - इसपर विशेष ज़ोर देती हैं। अर्थात् कृष्ण का ध्यान आकृष्ट कर उनको व्यामोह से होश में लाने के लिए इस प्रकार बोलती हैं।

मार्गशीर्ष व्रत का विधायक कोई शास्त्र उपलब्ध नहीं है। समाज कल्याण के लिए शिष्ट पूर्वजों से अनुष्ठित होने के कारण, हम भी उसका अनुष्ठान करने के लिए उद्यत हैं। बडों के द्वारा ज्ञान का शास्त्रार्थ बताया जाता है। अर्थात् इसका शिष्टाचार। वेद एवं शास्त्र जैसे शिष्टाचार भी एक प्रमाण है।

आगे व्रत के अनुष्ठान के लिए अपेक्षित सामग्रियों की लंबी सूची बतायी जाती है।

सारा पृथ्वी मंडल कांप उठे, ऐसी ध्वनि करनेवाले, दूध के समान वर्णवाले (यानी सफेद) आपके पाञ्चजन्य के ही समान पाञ्चजन्य शङ्ख, अत्यन्त विशाल और बहुत बडी भेरी, मंगलाशासन करनेवाले, मङ्गलदीप, ध्वज एवं छादनी (छत्री) इन सब को कृपया दीजिए।

पहला पदार्थ शङ्ख है। इसके बारे में इस सूक्ति की व्याख्या के आरंभ में ही बताया गया है। सारी पृथ्वी कांप उठे, ऐसी ध्वनिवाले, दूध के समान सफ़ेद रंगवाला, आपके पाञ्चजन्य के ही समान पाञ्चजन्य शङ्ख। भगवान के पाञ्चजन्य के समान भगवान का पाञ्चजन्य ही होगा। कोई दूसरा नहीं हो सकता। गोपियों का आशय है कि अपना ही शंख लेकर स्वयं कृष्ण पधारें और उनका नेतृत्व करे।

शोभा यात्रा के निकलने की सूचना शंख बजाकर दी जाती है। भगवान से इस आशय की प्रार्थना है कि उन्हीं को शंख बजाकर यात्रा (व्रत) का

शुभारंभ कर उनका मार्ग दर्शन करना चाहिए। नेतृत्व लेना चाहिए। (जैसे महा भारत युद्ध के आरंभ में शंख बजाया)

शंख नाद के बाद भेरी बजाना आवश्यक है। उसको जय भेरी भी कहते हैं। इसके अनुकूल बहुत बडी भेरी मांगी जाती है। श्री कृष्ण के वैभव को बढाने की दृष्टि से श्रेष्ठ एवं बडा होना चाहिए। गोष्ठी की शोभा बढाने के लिए मंगलदीप होना चाहिए। भक्तगण एवं महात्मा लोग मंगलाशासन (पल्लाण्डु - जय विजयी भव) के गीत गाते हुए आगे रहेंगे। दूर से देखनेवालों को बोध करने अनुकूल एवं सुन्दर प्रतीक ''झंडा'' चाहिए। लोग समझेंगे कि वह भक्त एवं महात्मा और प्रतिष्ठित लोगों की गोष्ठी है। श्री कृष्ण के सिर पर हिम न पडे - इसके लिए रक्षक 'छतरी' की आवश्यकता है। उपरोक्त सब सामग्रियां प्रदान करने की प्रार्थना है। (हमें इसका परिचय है कि आज कल भी बड़े-बड़े मंदिरों में विशेष रूप से दक्षिण) इसी प्रकार भगवान की शोभा यात्रा निकलती है। भगवान के दर्शन करने के लिए आने में अशक्त भक्तों के यहां, भगवान स्वयं पधारकर दर्शन देते हैं। ये सब भगवान को आगे कर यात्रोत्सव-शोभा-यात्रा निकालने की तैयारी नहीं है तो और क्या?

हम अनुमान कर सकते हैं कि गोपियों की लंबी सूची सुनकर उनकी श्रद्धा एवं विश्वास की परीक्षा लेने के लिए श्री कृष्ण ने कहा कि तुम लोगों ने बड़ी लंबी सूची दी है। इन वस्तुओं में कुछ दुर्लभ भी हैं। कहां से लाऊं? यहीं पर ''वटपत्र शायिन'' संबोधन का प्रयोजन है।

''हे वटपत्र शायिन्! आप सब सामग्रियां अपनी कृपा से दीजिए। इससे मालूम होता है कि गोपियां वटपत्र शयन वृत्तांत एवं उसके महत्व से परिचित हैं। इसमें भगवान की एक विलक्षण शक्ति बतायी जाती है।

नम्माळ्वार का संबोधन है - (तिरुवायमोळि में) (प्रलय के समय) समस्त लोकों को निगलनेवाले! इतने विशाल मुंहवाले महाप्रलय के समय जब समस्त जगत नष्ट प्राय हो गया, और सब कुछ पानी में समा गया, सर्वत्र पानी ही पानी रहा तब भगवान एक छोटे बालक के रूप में उस पानी के ऊपर एक वटपत्र पर शयनित रहे।

आपके विशाल पेट में सारा जगत समा गया। (आचार्यों का कहना है कि और भी जगह खाली थी) ये सब हमारी कल्पना में भी नहीं आ पाती। हां, इस प्रसंग से भगवान का अघटित घटना सामर्थ्य प्रकाशित किया जाता है।

आगे गोपियां अपने पक्ष का समर्थन करती हैं। हम आपकी विपुल एवं विलक्षण शक्ति से परिचित हैं। आपको हमारी इच्छित आवश्यक सामग्रियां (व्रत के अनुष्ठान के लिए) देने की कृपा हो तो, आपके पास इन सामग्रियों का कोई अभाव नहीं, देने में आपको कोई असुविधा या कष्ट भी नहीं। मतलब है संसार में आप सदृश दुर्लभ (पदार्थ) और कौन-सा है? अब तो बडी दृढता एवं विश्वास के साथ बोलती हैं - आप सब कुछ अवश्य दे सकते हैं। भगवान तो स्वयं इनके साथ है। तब बाकी सब मांगी हुई सामग्रियां भगवान के साथ हैं। यह अभिप्राय है। इसमें भक्तों का भगवान पर विश्वास और (भविष्य में) नित्य-यौवन की कुतूहलता का परिचय मिलता है। यौवन छलकता है।

**स्वापदेशः-**

सभी दुःख निवृत्ति जैसे भगवान की कृपा से ही होती है, उसी प्रकार हमारे लिए सभी आवश्यक भोग की वस्तुएं, भोगापवर्ग, भोगस्थान आदि सब भगवान के अनुग्रह से उनके द्वारा ही दिया जाना है। हमारे प्रयत्न मात्र से नहीं। उनके अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। यह तत्व इसमें बताया जाता है।

### आपके श्री हस्त से सम्मान की इच्छा - सम्मान का विवरण

कूडारै वल्लुम शीर्क् गोविन्दा ! उन्तन्नैप्
पाडिप् परैकॉण्डु याम् परु सम्मानम्:
नाड्डु पुहळुम् परिशिनाल् नन्ड्राहच्
चूडहमे, तोळ्वळैये, तोडे, शविप्पूवे,
पाडहमे, एन्ड्रु अनैय, पल् कलनुम् याम् अणिवोम्;
आडै उडुप्पोम्, अदन् पिन्ने पार् चोरु
मूड, नेय् पेय्दु मुळ्ङ्गै वळिवारक्
कूडियिरुन्दु कुलिर्न्दु - एलोर एम्पावाय् ॥ (27)

पूर्व सूक्ति में गोपियों की प्रार्थना का वचन (वास्तविक मांग) सुनकर श्री कृष्ण उनकी प्रार्थना का तात्पर्य समझ गए। भगवान भक्त की भाषा समझते हैं। गोपियां सिर्फ उनको ही नहीं, उनकी शोभा बढानेवाली सभी दिव्य सामग्रियों को भी मांगती हैं। श्री कृष्ण इस प्रकार विचार करने लगे।

ये गोप कन्याएं तो वास्तव में अनन्य प्रयोजन परमभक्ताग्रेसर हैं। इस अर्थ को सूचित करती हुई, गोपियों ने कहा था कि हम तुमको ही मांगती हैं।

**शंख, भेरी आदि व्रतोपकरण देने की जो प्रार्थना है, उसका यही अर्थ है कि आप अपनी उपरोक्त दिव्य सामग्रियां लेकर, स्वयं पधारें। उसके अनुगुणतया ''भेरी ही मांगनी है''**

(1) पांचजन्य शंख के समान, शंख मांगने का तात्पर्य पाञ्चजन्य धारी मुझको ही मांगना है। (पांच जन्य तो मुझसे अलग होकर किसी दूसरे के पास नहीं रह सकता) आशय यह है कि शंख लेकर स्वयं श्री कृष्ण पधारें।

2. घट नर्तन के वक्त मेरे कमर में जो भेरी बंधी थी, उसकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर, मेरी उस विशिष्ट भेरी को ही मांगती हैं।

3. मंगलाशासन करनेवालों को मांगती हैं। ये गोपियां पंचायुध एवं नित्यसूरियों के साथ मुझको ही प्राप्त करना चाहती हैं।

4. 'मंगलदीप' शब्द से यानी (हाल में नीला देवी से युक्त) लक्ष्मी सहित मुझ को ही चाहती हैं/मांगती हैं। लक्ष्मीजी का अवतार नीलादेवी है।

5. ध्वज शब्द से गरुड-ध्वज। वह किसी दूसरे के उपयोग में नहीं आ सकता। इसके द्वारा भी मुझे ही मांगती हैं।

6. वितान शब्द से भी हिम बाधा से रोकनेवाला शेषजी के साथ मुझ को ही मांगती हैं। मथुरा से व्रज गमन के समय (बालकृष्ण) मेरे पीछे रहते हुए मुझे वर्षा से बचाया था। शेषजी (बलराम) के साथ मुझको ही मांगती हैं।

**इस प्रकार सिर्फ मुझे ही नहीं, मेरे समस्त परिजन परिचारक सहित मुझ को ही मांगनेवाली - (बडे सभ्य ढंग से) इन गोपियों की वाक्चातुरी एवं भक्ति वर्णनातीत है। इसलिए ये मेरे अनुग्रह प्राप्त करने योग्य हैं।**

**हम अनुमान कर सकते हैं कि श्री कृष्ण ने इस तरह सोचकर उन गोपियों से प्रकट में कहा कि तुम लोग अलभ्य वस्तुओं को ही मांग रही हो। प्रयत्न कर तुम लोगों की अपेक्षित सभी सामग्रियां दे दूंगा। इनको लेकर आनन्दपूर्वक जाओ और व्रत पूरा करो।**

**बोलो (गोपियों से) अब और क्या आज्ञा है ! (प्रेम का संबोधन) भगवान को भक्तों की आज्ञा के पालन में बड़ा आनन्द आता है। गोपियां आगे विनय से प्रार्थना करती हैं।**

गोपि: प्रभो ! आपने बडी कृपा की है। सभी उपकरण व्रत के लिए दे दिए। हां, हमें तभी पूर्ण तृप्ति होगी कि आपके सान्निध्य में व्रत का समंगल सफलतापूर्वक पूर्णतया संपन्न होने के बाद आपके श्रीहस्त से विशेष सम्मान पाना चाहती हैं। प्रकृत सूक्ति में इसका विवरण है।

प्रारंभ में भगवान का एक अद्भुत संबोधन किया जाता है- "अपने से मिलने के अनिच्छुक को भी जीतने में समर्थ कल्याणगुणवाले ! हे गोविन्दा ! तात्पर्य है:

अपने से न मिलते हुए दूर-दूर रहनेवालों को भी अर्थात् (1) प्रणय रोषवाले (2) नैच्यानुसंधान निरत (3) द्वेषी एवं (4) उदासीन लोगों को भी भगवान उचित उपायों से जीतकर अपने वश में कर लेते हैं।

अपने परम भक्तों को जीतने के विषय में करना ही क्या है? मतलब है दूसरों को भगवान जीत सकते हैं - न तो भक्तों को। आप भक्त पराधीन होने से भक्तलोग वास्तव में आपको जीत लेते हैं। (इन भक्तों की श्रेणी में गोपियां भी आती हैं) इसलिए यहां संबोधन बड़ा रसपूर्ण एवं युक्तियुक्त है - (न कि हे शत्रुओं को जीतनेवाले)

(1) प्रणयरोषवाली प्रेयसी के विषय में आप अत्यन्त विनय का प्रदर्शन करते हैं। अति मनोहर श्रृंगार लीला करने में अपना सामर्थ्य दिखाते हैं, जिससे वे कोप छोडकर प्रसन्न हो जाती हैं।

(2) नैय्यानुसन्धान से विमुख होनेवाली को भगवान अपने शील गुण दिखाकर जीत लेते हैं। स्वयं महान होते हुए भी क्षुद्र जनों से मिलने का स्वभाव ही शील या सौशील्य कहलाता है।

(3) शौर्य और पराक्रम से शत्रु को जीत लेते हैं।

(4) उदासीनों के प्रति भगवान अपने सौन्दर्य, लावण्य, इत्यादि आकर्षक गुणों का प्रयोग कर जीत लेते हैं।

आजकल भी, मंदिरों में इसका अनुभव करते हैं, जहां अर्चावतार भगवान विराजमान हैं। भगवान के इन महा वैभवों का वर्णन करता है - प्रकृत संबोधन। दूसरा संबोधन "गोविन्दा" यह भगवान का एक असाधारण विरुद है। गोवर्धनोद्धरण होने के बाद, इन्द्र को ज्ञानोदय हुआ। भगवान के दर्शन कर अपनी भूल के लिए पछतावा प्रकट करते हुए क्षमा मांगी। अपने कामधेनु के दूध से आपका अभिषेक किया और "गोविन्दा" विरुद से विभूषित किया। यह नाम भगवान को बहुत प्रिय है। इस नाम से संबोधित करने का कारण आगे की सूक्ति में (२९ में) स्पष्ट किया जाएगा।

**गोपियां आगे बोलती हैं -**

तुम्हारा नाम संकीर्तन कर (तुम से अपने) पुरुषार्थ पाने के बाद हमें जो बड़ा सम्मान मिलना चाहिए वह इस प्रकार का है -

गोपियां: नाम संकीर्तन करते-करते हमें व्रतोपहरण तो प्राप्त है। इससे हम कृतार्थ होनेवाली नहीं। हमें आपकी ओर से ऐसा विलक्षण सम्मान होना चाहिए जिसकी प्रशंसा सारा देश करे। अर्थात् गोपियों को श्री कृष्ण की प्राप्ति का भी जन समर्थन - सार्वजनिक प्रशंसा की इच्छा है। जन समर्थन का मूल्य भी ये जानती हैं। हां, यह तो वास्तव में भगवान की विलक्षण कृपा और औदार्य की ही प्रशंसा है। (जैसे अपने राजतिलक के वक्त श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान का सम्मान किया) गोपियों की भक्ति और भगवान की कृपा दोनों प्रशंसा के पात्र होंगे, जो भक्तों को अपेक्षित है। गोपियों की प्रशंसा भगवान की प्रशंसा में ही परिवारित होती है। कारण भगवान के अनुग्रह से ही गोपियां प्रशंसापात्र हुई हैं। ऐसी प्रशंसा प्राप्ति या प्रशंसा सुनने में कोई आपत्ति नहीं - जैसे पुष्प के साथ रेशा भी सुगन्धित होने का पात्र बनता है। यह तो लोककल्याण कारक प्रशंसा है। यह देखकर उदासीन लोग भी भगवान की भक्ति करने लगेंगे। कितना व्यावहारिक है।

गोपियों द्वारा प्रस्तुत सम्मान की सूची देखिए-

''चूडी, भुजा का आभरण, कर्णकुंडल, कर्णपुष्प, पाद का अलंकार पैंजनी इत्यादि अनेक अभूषणों को हम ठीक तरह से पहनेंगी। इसके बाद उत्तम वस्त्र पहनेंगी।

पहले मंत्रासन एवं स्नानासन हुआ (मार्गशीर्ष स्नान) अब अलंकारासन। अर्थात् पहले पाणिग्रहणपूर्वक ही भगवान से संबन्ध होगा। भगवान के पकडे जानेवाले हाथ का आभरण चूडी।

पाणिग्रहण के बाद आलिंगन करते समय, अगर भुजा शून्य रहेगी तो भगवान का रस बिगड जाएगा। इसलिए भुजाओं के आभरण-केयूर। पीछे कान से कान मिलाकर रहस्य संलाप होता है। अतः कर्णभूषण अपेक्षित है। कान के निचले भागों में पहनने के आभूषण कुंडल, ऊपर के लिए कर्ण-पुष्प। प्रणय के उन्मस्तक हो जाने पर ऐसा प्रकरण भी आ सकता है जब प्रणय कोप को शांत करने जब नायक प्रयेसी से बड़ा प्रेम दिखाएगा, प्रेयसी के पैर पकडने को भी उद्यत होगा। उस वक्त पैरों को शून्य रखना बडा अनुचित है। इसलिए पादाभरण भी अपेक्षित है। दूसरे अंग भी उचित आभरणों से अलंकृत होने चाहिए।

ये सब श्री कृष्ण की प्रसन्नता के लिए। गोपियां तो अपने लिए कुछ नहीं करती। सुन्दर वस्त्र के बिना ये सब सजावट बेकार होगी। फीकी पड जाएगी। इसलिए सुन्दर वस्त्र भी मांगा जाता है। (द्रौपदी ने गोविन्द नाम पुकार कर अक्षय वस्त्र प्राप्त किया। गोपियां भी गोविन्द नाम संकीर्तन करती हैं। उपरोक्त सब अलंकार की सामग्रियां सब के लिए मांगी जाती हैं। (बहुवचन का प्रयोग)

अब भोज्यासन है -

''क्षीरान्न मांगा जाता है - वह भी किस प्रकार का?

क्षीरान्न को (वह अन्न) इस तरह घी से ढांका जाय, अर्थात् उसमें अधिक घृत उँडेलकर, (वह घृत भी) कोहनी के द्वारा बह जाय, इस तरह से आप और हम सब मिलकर, ऐसा शांति-पूर्ण शिशिर भोग (शीतलता-प्रसन्नता का प्रतीक) भोगेंगी। प्रसन्न चित्त होंगे - होंगी।

यह सब से मूल्यवान सम्मान है कि जिससे हम सब का हृदय तृप्त एवं शीतल हो जाए। क्षीरान्न प्राप्ति और खाने में कितनी सरसता है। आजकल की दृष्टि से भी आधुनिकता की कमी नहीं।

घृतपूर्ण - श्रेष्ठ क्षीरान्न मांगा जाता है।

गोपियों ने वृत के अनुष्ठान निमित्त, व्रतांग के रूप में घी, दूध आदि का सेवन छोड दिया था। (सूक्ति सं.२) अब व्रत की सफ़ल एवं मंगलपूर्ण समाप्ति में दिव्य विग्रह को क्षीरान्न देकर आनन्दित करना भी आवश्यक है। जिस उद्देश्य एवं विचार से आभूषणादि मांगे गए, उसी विचार से क्षीरान्न भी मांगा जाता है। सिर्फ अपने लिए नहीं। श्री कृष्ण और सब के लिए।

भगवान के भोग के लिए भगवान की प्रसन्नता के लिए गोपियों ने अपनी सजावट की इच्छा की। अब आपके साथ रहकर, क्षीरान्नसेवन का समय है। भगवान के भोग के लिए ये सब तैयारियाँ हैं एवं आडंबर रचा जा रहा है - जो उनके अनुकूल हो।

तुम, हम सब मिलकर - इस प्रकार स्पष्ट वाणी है। आप दिव्य दम्पतियों (कृष्ण और नप्पिन्नै) के साथ हम सब को यह भोग प्राप्त होना चाहिए।

**क्षीरान्न कैसा होगा? इतना घृत उँडेला जाना चाहिए - हाथ में कौर लेते ही वह घृत हाथ में से कोहनी तक बहकर ज़मीन पर बहे - गोप समाज की संपन्नता और हृदय की विशालता का परिचय मिलता है। और एक स्थान में नाच्चियार तिरुमॊऴि (आंडाल श्री सूक्ति) में आंडाळ का वचन है।**

मालिरुञ्चोलै नम्बिक्कु नान्
नूरु तडाविल् वेण्णैय् वाय् नेरन्दु पराविं वैत्तेन्;
नूरु तडा निरैन्द अक्कार अडिशिल् शान्नेन् ।

श्री वनाचल (मालिरुञ्चोलै-मदुरै ज़िला में एक दिव्य क्षेत्र है) नम्बि (प्रभु) को मैंने सौ घडों में (तडा - बहुत बडा पात्र) मक्खन समर्पित करने को (मुंह से) बोल रखा है । सौ घडों भर मधुर क्षीरान्न कहा है । वर्धमान विभववाला श्री प्रभु आज आकर इनको ग्रहण करेगा क्या?

सौ घडों में मक्खन और क्षीरान्न; यह है आंडाळ का विशाल हृदय एवं भक्ति भावना ।

इससे हमारा हृदय ताप अर्थात् - भगवद्-विच्छेद ताप दूर होगा । सब शीतल एवं प्रसन्न होंगे । (शांति प्राप्त करेंगे) यह कैसे दूर होगा? आपसे मिलकर आप दोनों के (कृष्ण और नीला देवी) हस्त से सम्मान पाकर, क्षीरान्न का सेवन करने से चिरकाल के विरह से संतप्त हमारा हृदय एकदम शीतल (ठंडा) एवं शांत हो जाएगा । ऐसा महान पुरुषार्थ संपूर्ण समाज के लिए प्रार्थित है ।

इससे बढकर कल्याणकारी संपन्न समाज, सर्वजन समर्थित सामूहिक भावना एवं जन-कल्याण चेतना, और विशाल हार्दिक भावना की कामना की जा सकती है? भगवान के अनुग्रह से यह भारत में ही संभव है ।

और एक मुख्य बात पर भी ध्यान देना है । इसमें क्षीरान्न के सेवन में (भूख मिटाने) सिर्फ खाने की प्रधानता नहीं; सामूहिकता एवं एकता की भावना है, जो अटूट है । भगवान की सन्निधि में सब मिलकर भगवान का अनुग्रह प्राप्त करते हैं जो मीठा एवं शीतल है - क्षीरान्न इसका प्रत्यक्ष प्रतीक है ।

सामाजिक दृष्टिकोण से भी इसका महत्व है । आजकल कुछ समारोह, शादी, जन्मदिन आदि के समय में भी इस तरह आडंबरपूर्ण भोज का प्रबन्ध किया जाता है जिससे मित्रता एवं भाईचारे का संवर्धन हो । कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर विचार कर निर्णय लेने के लिए भी बैठक बुलाकर इस तरह भोज का प्रबन्ध किया जाता है - जो अंग्रेजी में (Get together) कहा जाता है । तमिळ नाडु के लिए, भारत के लिए यह प्रथा कोई आधुनिक नहीं है । हम अपनी पुरानी परंपरा आंडाळ के समय की परंपरा का अनुकरण करते हैं । इसका संबर्धन कल्याणकारी है ।

श्री कृष्ण मिलन - अर्थात् सान्निध्य की प्राप्ति, भगवान का भोग एवं श्री कृष्ण और भक्तों के साथ सह भोज, श्री कृष्ण के संग में, सभी संसार तापों का दूर होना, हृदय शीतल होना एवं शांति, यही सम्मान का शिखर है। सिर्फ गोपियों के लिए नहीं लेकिन संपूर्ण समाज के लिए।

**स्वापदेश**

भगवान की प्रपत्ति करने से सिद्धोपाय भगवान हमें जो-जो अनुग्रह करते हैं और जो-जो संपत्ति और सौभाग्य देते हैं, उसके बारे में बताती हैं। इस लोक को छोडकर जाते वक्त इस जीव को परब्रह्म को पाने लायक बनाते हैं - उचित अलंकार करते हैं। कैंकर्य को ही प्रधान मानकर जाने पर भी उस कैंकर्य करने लायक बनने आंतरिक ब्रह्ममालंकार करके परब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनाते हैं। हमारा स्वरूप ही कैंकर्य होने पर भी कैंकर्य करने में प्रतिबंध रूपी रुकावटों को दूर करते हैं।

भगवान का ऐश्वर्य और उनकी कृपा हमें उद्देश्य रूप पुरुषार्थ देता है। सब उनका ही अनुग्रह है। कृत्य है। अपना कुछ नहीं। यह तत्व इसमें बताया जाता है।

**(सूक्ति सं. 27 & 28)**

तिरुप्पावै दिव्य प्रबन्ध की प्रत्येक सूक्ति अपने में पूर्ण है। प्रत्येक सूक्ति में एक विचार है/उपदेश है। लेकिन इस संबन्ध में आचार्यों का यह कहना है कि सूक्ति सं. 27 का विचार सूक्ति सं. 28 में ही पूर्ण होता है। सूक्ति सं. 27 में "कुलिर्न्दु" "शीतल होकर" शब्द अंतिम शब्द है। (उसके बाद एलोर् एम्पावाय् है) सूक्ति सं. 28 करवैहळ् पिन् शेन्डु कानम् शेर्न्दु उण्पोम्"

(हम) गायों के पीछे जाकर, जंगल पहुंचकर वहां भोजन करेंगी।

अर्थात् : शीतल होकर, गायों के पीछे जाकर, जंगल पहुंचकर भोजन करेंगी।

व्रत की समंगल पूर्ति और श्री कृष्ण एवं नप्पिन्नै द्वारा सम्मान प्राप्ति के बाद उत्सव एवं भोज (सहभोज) की तैयारी है। आंडाल की वाणी है:- अलंकार (आभूषण एवं वस्त्र) एवं सम्मान प्राप्ति से शीतल होकर, सानन्द श्री कृष्ण के सान्निध्य में सब एक साथ इकट्ठा होकर, गाय बछडों के साथ कानन पहुंचकर, वनभोज का आनन्द उठायेंगी। आनन्दोत्सव में गोपियां गाय-बछडों को भी नहीं भूलती, नहीं छोडती। महत्वपूर्ण कार्य के समंगल सफल पूर्ति होने पर उत्सव एवं

वनभोज (पिकनिक) मनाया जाता है। इससे सूचित है कि गोपियों को अपनी वांछित "परै" एवं उत्तम पुरुषार्थ, श्री कृष्ण की प्राप्ति हो गयी है। आजकल भी यह उत्सव श्री कृष्ण की प्रसन्नता के लिए प्रति वर्ष मनाया जाता है। अत्यन्त रसपूर्ण एवं व्यावहारिक हमारी प्राचीन परंपरा है। हमारी संस्कृति है।

## हम महा भाग्यवती हैं।

करवैहळ् पिन् चन्डु कानम् चेरन्दु उण्पोम्,
अरिवु ओन्डूम् इल्लाद आय् क्कुलत्तु उन् तन्नैप्
पिर्वि परुन्तनैप् पुण्णियम् याम् उडैयोम्;
कुरैवु ओन्डूम् इल्लाद गोविन्दा ! उन् तन्नोडु
उरवेल् नमक्कु इङ्गु ओळिक्क ओळियादु:
अरियाद पिळ्ळैहळोम् अन्पिनाल् उन्तन्नैच्
चिरुपेर् अळैत्तनवुम् शीरियरुळाते
इरैवा नी ताराय् परै - एलोर् एम्पावाय् ॥ (28)

पूर्व की दो सूक्तियों में गोपियों ने भगवान से पाञ्चजन्य शंख, भेरी आदि कई दिव्य पदार्थों की और समंगल व्रत समाप्ति के बाद कतिपय सम्मानों (आभूषण, वस्त्र आदि) की प्रार्थना की थी।

गोपियों की वाक् चातुर्य-पूर्ण वाणी (वचन) और विशेष अर्थ भरी प्रार्थना पर भगवान ने पुनः पुनः बडी सावधानी के साथ विचार किया।

श्री कृष्ण जो गोपियों की आंतरिक भावना से परिचित थे, अपने मन में निश्चय कर लिया कि गोपियां मुझे ही अपने नित्यसूरि परिजन परिवार सहित मांगती हैं। इसके अलावा उनसे अपेक्षित वस्तु केवल सांसारिक पदार्थ नहीं। जो सम्मान मांगती हैं, वे सत्कार (सम्मान) संसार छोडकर परमपद - गामी मुक्तात्मा को वहां मिलनेवाला सत्कार है।

जिसको मुक्त "भोगावाली" कहते हैं - अर्थात् ऐसे भक्तों को मिलनेवाला "भोग" सम्मान।

यह तो मानव अपना सूक्ष्म शरीर (मानव मरते ही बाह्य शरीर छोडकर सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है।) भी छोडकर दिव्य शरीर पाकर, परमपद - गामी चेतन के स्वागत में मिलनेवाला स्वागत एवं सम्मान है।

(तिरुवाय्मोळि (नम्माळ्वार) शतक 10, दशक 9, 10 देखिए। परमपद जानेवालों का स्वागत सत्कार)

उसके बाद चेतन जीव भगवान की सन्निधि में (परमपद) पहुंचकर सतत उनका परिपूर्ण अनुभव (ब्रह्मानन्द) प्राप्त करता है। यहां वही अनुभव गोपियों से क्षीरान्न भोग कहा गया है। अतः साक्षात् मुक्त भोगावली मांगने वाली ये गोपियां अपनी वाक् चातुरी वाणी से स्पष्ट न मांगकर, रहस्यात्मक ढंग से कुछ बात कर रही हैं।

इस प्रकार विचार करते हुए श्री कृष्ण ने कहा कि हे गोपियो ! तुम्हारी रहस्यात्मक वाणी का आंतरिक अभिप्राय मैंने समझ लिया। तुम तो उत्तम पुरुषार्थ मांगती हो। शास्त्र की मर्यादा है कि पुरुषार्थ पाने तदनुगुण उपाय का अनुष्ठान भी करना चाहिए। उपाय के बिना कैसे प्राप्त करोगी।

तुम लोगों ने कौन से उपाय का अनुष्ठान किया है जिससे मैं तुम लोगों की प्रार्थना, फल स्वरूप (सफल) बनाऊं?

प्रकृत सूक्ति में गोपियों के द्वारा उक्त प्रश्न का उत्तर है। गोपियां यह जानती हैं कि शास्त्रों में विदित कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि उपायों से बढकर आकिंचन्य व अनन्यगतित्व से युक्त मानव शीघ्र आपका (भगवान) कृपा पात्र बनता है। भगवान अब इनकी निष्ठा के बारे में गोपियों के अपने मुंह से ही स्पष्ट वाणी में सुनना चाहते हैं। सांकेतिक भाषा में नहीं।

इस सूक्ति में अपने आकिंचन्य और अनन्यगतित्व का निवेदन करते हुए अपने कृत अपराधों के लिए (कोई हों) क्षमा मांगती हैं। स्पष्ट वाणी में -

गोपियों का संबोधन है-

किसी प्रकार की न्यूनता से शून्य (सर्वथा परिपूर्ण) हे गोविन्दा !

भगवान ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि छः गुणों से इस कारण परिपूर्ण हैं कि इनसे अपने भक्तों का अज्ञान आदि न्यूनताओं को दूरकर देते हैं। भक्तों को पूर्ण बना देते हैं। अर्थात् दोषहीन बना देते हैं। हम गोपियां ज्ञान शक्ति आदि गुणों से परिपूर्ण होती तो आपके पास क्यों आतीं ? इसके अलावा आपकी पूर्णता का उपयोग कब और कैसे होगा? इसलिए आप अपनी परिपूर्णता को सफल बनावें। ये भगवान की अपनी भाषा में ही जवाब देती हैं।

गोपियों की और परीक्षा लेने और उनकी मीठी वाणी सुनने के विचार से भगवान ने कहा - "मेरी प्रशंसा करने मात्र से तुम लोगों का काम संपूर्ण

रूप से सफल नहीं होने का। इसमें अपने उपाय एवं अनुष्ठान के बारे में बताओ तो सही; मैं समझूं कि तुम सब लोग इसके अधिकारी हो।

गोपियां:- हे हमारे स्वामी। हम गायों के पीछे जाकर जंगल पहुंचकर शरीर पोषण के लिए जो कुछ मिले उसे खा डालती हैं। भोजन नियम से भी हम अज्ञात हैं। बिलकुल ज्ञान से शून्य गोपकुल में अवतीर्ण आपको, हम अपने सजातीय के रूप में पाने से पर्याप्त पुण्यवती हैं। सुकृत हैं। आगे बोलती हैं।

हम कर्म योग, ज्ञान योग का गन्ध तक नहीं जानतीं। (जप, तप, तीर्थयात्रा आदि कर्मयोग के साधन कहलाते हैं।)

हमारा कर्म तो जंगल में गायों के पीछे जाना है, (जो प्राप्त हो उसे खाना है।) अर्थात् हम अपना काम धर्म मानकर श्रद्धा से करती हैं। कर्तव्य निष्ठ हैं, यही हमारी कृष्ण भक्ति है।

हे स्वामी ! हमारे पास अपने स्वप्रयत्न से कमाया हुआ कोई सुकृत नहीं है (अपना आकिंचन्य प्रकट करती हैं) हां, इसका यह अर्थ नहीं कि हम सुकृत से शून्य हैं। आपके अपनी निर्हेतुक कृपा से प्रदत्त मूल्यवान सुकृत हमारे पास है। ज्ञानहीन गोप-कुल में हमारे बन्धु (सजातीय के रूप में) के रूप में, आपने अवतार लिया है। आपके साथ हमारा यह संबन्ध ही हमारा बडा भाग्य है। बडा सुकृत है। इसीके बल पर हम आपके सम्मुख उपस्थित होकर, निडर खडी होकर, बात कर रही हैं। इसलिए हम पूर्ण अधिकारी हैं।

(ज्ञानी लोग तो आपको साक्षात् धर्म का स्वरूप मानकर नमन करते हैं। वेद उपनिषद का वाक्य है- भगवान को ढूँढना चाहिए - और जानना चाहिए।)

इस प्रकार सब से ढूंढे जानेवाले पुण्य धर्म स्वरूपी आपने हमको ढूंढकर गोपकुल में हमारे बन्धु होकर अवतार लिया है। यह क्या अल्प सुकृत है। जान लीजिए कि हम ऐसी महाभाग्यवती हैं। क्या, किसी दूसरे को यह भाग्य प्राप्त है? मिलेगा? हम तो महाभाग्यवती हैं। हमारा महान सुकृत है। अब हमारी प्रार्थना को आप किसी प्रकार टाल नहीं सकते। गोपियां इस प्रकार अपना दृढ बन्धुत्व प्रकट करते हुए पूर्ण विश्वास के साथ, निर्णयात्मक, अधिकार की भाषा में बोलने लगती हैं। कृष्ण तो अपना हो गया। अब सांकेतिक भाषा - शिष्टाचार क्यों? भगवान भी गोपियों के मुंह से यही अपनत्व की मीठी भाषा सुनने के इच्छुक थे। अब श्री कृष्ण क्या करेंगे? श्री कृष्ण ने सोचा :-

अहो ! इनका बडा भाग्य है । बडे-बडे ज्ञानी पुरुषों को भी दुर्लभ सुदृढ अध्यवसाय इन सरल गोपियों में देखा (पाया) जाता है । परम पुरुषार्थ प्राप्त करने इनसे उत्तम अधिकारी और कौन होगा? फिर भी तुरन्त अपना विचार न प्रकट करते हुए उनकी निष्ठा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से पूछा - हे गोपियो ! यह तो सत्य है कि मैं यशोदा एवं नंदगोप का पुत्र होकर आपके बीच रहता हूँ । पुत्र के रूप में उनका कार्य करना मेरा कर्तव्य है । यह बताओ कि तुम लोगों के वचन को भी मुझे मानना चाहिए? उत्तर में गोपियां बोलती हैं-

तुम्हारे साथ हमारा संबन्ध, इधर आपसें और हम से तोड डालने को अशक्य है । इसका मतलब है-

आपका यह कथन अनुचित है कि हमारा और आपका कोई बन्धुत्व संबंध नहीं । कारण, आपसे हमारा भी पुष्कल बन्धुत्व है । आप जानते हैं कि यशोदा नंदन, नंदगोपात्मज जैसे आपका प्रिय एवं और एक शुभ नाम गोपीजन वल्लभ है । उक्त नाम (विरुद) पाने के लिए ही आपने गोकुल में अवतार लिया है । हमारे बीच में रहनेवाला भर्तृ-भार्या भाव रूप संबन्ध, न तो हमसे या न आपसे तोडा जा सकता है । अब आप ही बोलिए, भर्ता होकर आप हमारी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं? हमारा साक्षात् सुकृत (कृष्ण) आप ही हैं । मक्खन, दही, दूध ही नहीं, प्रेम भी खिलाकर इस प्रणय की वृद्धि कर रही हैं । अपना सुहृत कृष्ण के साथ अपना संबन्ध प्रकट करते वक्त गोपियां बडी दृढता से अपना पक्ष ''बन्धुत्व'' स्थापित करती हैं । भगवान को अब उनकी बात माननी पडी । खूब प्रसन्न हुए, फिर भी कृष्ण कृष्ण ही ठहरे । उनसे बोले-

अब तुम लोग मुझे गोपीजनवल्लभ, गोविन्दा आदि नाम से पुकारती और मेरे साथ असाधारण बन्धुत्व बता रही हैं । लेकिन पहले तो मुझे बार-बार ''नारायण'' नाम से ही पुकारा जो सर्वात्म संबन्ध का ही संकेत है । मुझे लगता है कि ठेठ पहले से यह भावना तुम लोगों के मन में न थी । मैं कैसे जान सकूंगा कि तुम्हारा सच्चा भाव कौन-सा है?

यह सुनकर गोपियों के मन में बडी लज्जा एवं पश्चात्ताप हुआ कि कृष्ण के विचार में उनको ''नारायण'' नाम से बुलाना, उनको पसन्द नहीं है । पहले तीन दफ़े (नारायण नाम से) पुकारा है । (सूक्ति सं. 1,7,10) प्रभु ने हमारे इस अपराध को पहचान लिया । अब भगवान से इसके लिए क्षमा मांगने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं है ।

**गोपियों की वाणी है ।**

"ज्ञान शून्य बालिकाएं हमने प्रेम से आप को गौण नाम से जो पुकारा (पहले) इसलिए आप आश्रित वत्सल ! कृपया नाराज़ मत होइये । क्षमा कीजिएगा । (हमारे अपेक्षित) पुरुषार्थ प्रदान कीजिए ।

हम तो ज्ञान शून्य बालिकाएं हैं । हे प्रभो ! अज्ञ गोप बालिकाएं होने से और अत्यन्त प्रेम परवशता के कारण हमने आपको नारायण आदि नाम से पुकारा । कृपया इस अपराध को क्षमा कर दीजिएगा ।

यहां यह समझना उपयुक्त होगा । भगवान के कुछ नाम परत्व सूचक होते हैं, कुछ नाम सौलभ्य सूचक ।

नारायण नाम परत्व सूचक नामों में से मुख्य है इससे आपके आदि पुरुष होना, सर्वव्यापकत्व, सर्वधारत्व आदि गुण प्रकट होते हैं । इसमें सौलभ्य आदि गुण निगूढ हैं । परत्व का गुण स्पष्ट रूप से प्रकटित है । "गोविन्द" नाम तो इससे भिन्न है । हमने पहले भी समझा है कि यह नाम गोप-गोपियों एवं गायों से भगवान का संबन्ध बताता है । यह भी बताया गया कि भगवान सौलभ्य के प्रकाशन के लिए गोकुल पधारे । भगवान ने गोपों से यह स्पष्ट व्यक्त किया है कि मैं तुम्हारा बन्धु बन गया हूँ । भगवान उनको गोविन्द, दामोदर, माधव, गोपीजन वल्लभ आदि सौलभ्य सूचक नाम पुकारनेवालों के प्रति बहुत प्रसन्न दीखते हैं । इस पृष्ठ भूमि में नारायण नाम गौण हुआ । गोविन्द का नाम महान हुआ ।

तिरुप्पावै प्रबन्ध में पहले तीन बार नारायण नाम का उच्चारण किया गया है । अब उसकी तुलना में (प्रायश्चित स्वरूप) गोविन्द नामोच्चारण भी तीन बार किया जाता है । सीधा संबोधन है । (अति निकटता) (सूक्ति सं 27, 28, 29) । शायद गोदा देवी की वाणी (उपदेश) का पालन करते हुए, आजकल भी भगवत् नाम संकीर्तन के वक्त भक्तगण विशेषतः गोविन्द नाम का कीर्तन करते हैं ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि (मूल गाथा में यह नहीं बताया गया है कि गोपियां किस नाम को गौण कहती हैं?) भगवान से क्षमा प्रार्थना के बाद आगे की सूक्तियों में गोविन्द का नाम ही लिया जाता है, न तो नारायणादि कोई दूसरा नाम । पहले तो गोपियां भगवान के परत्व से संबन्धित नाम संकीर्तन करती थीं । भक्ति की विकसित अवस्था में - भगवान के सौलभ्य गुण का अनुभव कर उनकी निकटता का अनुभव करते हुए, गोविन्द आदि पुकारने लगती हैं । अब निकटता अधिक है ।

हां, भगवान के अनन्त गुणों में कोई-कोई भक्त परत्व आदि गुणों को, श्रेष्ठ या मुख्य मानते हैं। दूसरा कोई भक्त सौलभ्य आदि को प्रधान मानता है। तीसरा और किसी गुण को। मतलब यह है कि भक्त को जब भगवान के जिस गुण का विशद अनुभव, साक्षात्कार होता है, वह उस वक्त उस गुण को प्रधान मानता है। परत्व और सौलभ्य दोनों का अपने २ स्थान में महत्व है। पहले गोपियां परत्व से संबन्धित नाम लेती थी। भक्ति की विकसित अवस्था में, निकटता में पहुंचकर, सौलभ्य से संबन्धित नाम। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि (भगवान का अपना प्रिय गोविन्द नाम गोपियों के लिए ज्यादा महान रहा हो - अर्थात् सौलभ्य सूचक। निकटता बढते-बढते, परत्व सौलभ्य में बदल जाता है। (लोक व्यवहार में भी दोस्तों से मित्रता एवं निकटता बढते-बढते, आदर सूचक संबोधन के स्थान में "आ" "जा" कहने में ही दोस्ती का महत्व माना जाता है। (पति-पत्नी में भी यह देखा जाता है।)

आचार्यों का कहना है कि प्रणव के मध्यमाक्षर 'उ' कार से जीव एवं ईश्वर का यही भर्तृ-भार्या भाव रूप, अभेद्य संबन्ध बताया जाता है।

भगवान सभी जीवों का भर्ता होकर हमारी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

**स्वापदेश**

प्रपत्ति करनेवालों के कृत्यों को बताकर, जैसे श्री रामानुज, श्रीभाष्यम में बताते हैं कि प्रपत्ति ही भगवान को प्राप्त करने के लिए वशीकरण उपाय है।

उस प्रपत्ति से वशीभूत भगवान हमारे अभिमत एवं पुरुषार्थ सिद्धि के लिए सर्वशक्त चैतन्य भूत, करुणापूर्ण, सिद्धोपाय स्वरूप होने की अपेक्षा करते हुए, गोपियों की क्षमा प्रार्थना है। आपसे हमने इसकी (पुरुषार्थ) अपेक्षा की। इस अपेक्षा की कामना/पार्थना के लिए भी क्षमा याचना करती हैं। यह ऐसा लगता है कि उक्त क्षमा याचना प्रकट करने (भावना प्रकर्ष से) व्याज रूप यह मार्गशीर्ष व्रत का अनुष्ठान करती हों। यह इसका तत्व है। ऐसा लगता है कि आंडाळ हमारे प्रतिनिधि स्वरूप यह प्रार्थना करती हैं।

**शरणागति का अनुष्ठान :**

चिर्ट्रञ् चिरुकाले वन्दु उन्नैच् चेवित्तु, उन्
पोर्ट्रामरै अडिये पोर्ट्रुम् पोरुळ् केळाय्;
पेर्ट्रम् मेय्त्तु उण्णुम् कुलत्तिल् पिरन्दु नी
कुर्ट्रेवल् एङ्गळैक् कोळ्ळामल् पोहाद;

इर्द्रैप् परै काळ्वान् अन्ड्रु काण् गोविन्दा ।
एट्रैक्कुम् एळ् एळ् पिरविक्कुम् उन् तन्नोडु
उट्रोमे आवोम्, उनक्के नाम आट्चेय्वोम्;
मट्रै नम् कामङ्गळ् मार्टू - एलोर् एम्पावाय् ॥ (29)

तिरुप्पावै (दिव्य प्रबन्ध) की यह शांति सूक्ति है । गोपियों के द्वारा अनुष्ठित व्रत (भावनात्मक) का मंगलाचरण है । आगे की सूक्ति फलश्रुति है ।

सभी गोपियां बडे सबेरे गोष्ठी बनाकर, नीलादेवी का पुरुषकार प्राप्तकर भगवान का प्रबोधन करती हैं । उनकी प्रार्थना के अनुसार श्री कृष्ण आस्थान मंडप के दिव्यसिंहासन पर विराजते हैं । गोपियों के मंगलाशासन से (स्तुति से) बहुत प्रसन्न हैं । गोपियां श्री कृष्ण के प्रश्नों के उत्तर में अपने अभीष्ट उद्देश्यों का समाहार करती हुई अब स्पष्ट बोलती हैं ।

इस प्रबन्ध में आरंभ से लेकर, परै-पुरुषार्थ, भेरी, व्रतोपकरण आदि शब्दों का बारंबार प्रयोग किया गया है । गोपियां अब समाहार करती हैं । गोपियों की प्रार्थना है - हे प्रभो ! जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके ही साथ रहती हुई, आप के सर्वकाल, सर्वदेश, सर्वावस्थोचित, सर्वविध सेवा करेंगी ।

यही हमारे अपेक्षित परमपुरुषार्थ हैं । कैंकर्यश्री की प्रार्थना है ।(दे. स्तुतिपद्य) भट्टर स्वामी का वचन है "श्रुतिशतशिरस्सिद्धमध्यापन्ती" है ।

गुणानुभव करने की दृष्टि से कोई-कोई भक्तजन परमपद की अपेक्षा इस संसार का ही विशेष आदर करते हैं । भगवान के सभी गुणों का (परमपद की अपेक्षा) प्रकाशन इस संसार में ही होता है । तिरुप्पाणाळ्वार एवं श्री तिरुमँगै आळ्वार आदि की दिव्य सूक्तियों में उक्त विचार का प्रतिपादन है । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हनुमानजी हैं ।

अयोध्या निवासी सभी चेतना-चेतन सब के सब श्री रामचन्द्रजी के साथ परमपद पहुंच गए । लेकिन श्री हनुमानजी चिरंजीवी होकर, राम के गुणों का अनुभव करते हुए (श्री रामायण कथा सुनते-सुनते) इस धरातल पर ही विराजमान हैं । इस प्रकार गुणानुभव, स्तुति आदि अनेक प्राकारों से भगवान की नित्य सेवा करने में इच्छुक गोपी-जन अपने अपेक्षित परम पुरुषार्थ श्री कृष्ण से प्राप्त करती हैं । आंडाळ (गोपियों) की प्रार्थना है- समाहार है ।

हे गोविन्दा! बडे सबेरे यहां पहुंचकर आपका नमस्कार कर, आपके स्वर्णसमान पादारविन्दों का मंगलाशासन करने का प्रयोजन सुनो ।

हे गोविन्दा ! बहुत समय से हम आपके प्रेम-पात्र हैं। हमने पहले अपने स्वरूप को नहीं समझा था। आज आपकी कृपा से हम अपने स्वरूप को ठीक जानकर, बडे सबेरे उठकर, नम्रता के साथ आपके आस्थान में आ गयी हैं। भगवान के चरणों को स्वर्ण-कमल सदृश पादारविन्द कहती हैं। तात्पर्य है कि भगवान ही हमारे उपाय, उपेय एवं परम भोग्य हैं। स्वर्ण से कोई दूसरी चीज़ खरीद सकते हैं। उसका आभरण बनाकर पहन सकते हैं। स्वर्ण उपाय एवं उपेय दोनों होता है। कमल तो भोग्यता में प्रसिद्ध है। इस दृष्टांत में भगवान के पाद-मूल, उपाय दशा में भी भोग्य बताया जाता है।

मंगलाशासन कर स्तुति करने का प्रयोजन "सुनो"। उक्त वैभववाले पादारविन्दों के विषय में हमारा कैंकर्य अब मंगलाशासन ही है। इसका फल एवं अपेक्षित पुरुषार्थ सुनो। हम संसार से संबन्धित कोई क्षुद्र फल की अपेक्षा नहीं करतीं। लेकिन हमारी मांग नित्य सेवा, नित्य कैंकर्य है जो निरन्तर चलता रहेगा। इस प्रकार गोपियां अपने अनन्यप्रयोजनत्व को स्थापित करती हैं। अपनी स्तुति एवं वार्ता के बीच में "सुनो" कहने का विशेष तात्पर्य है।

गोपियों की भक्ति-प्लावित मधुर वाणी सुनते २ उनकी सुकुमार मनोहरता निहारते, भगवान परवश-चित्त होकर स्तब्ध रह जाते हैं। उनका ध्यान आकृष्ट करने "सुनो" कहती हैं। अर्थात् यह निश्चय कर लेती हैं कि भगवान ध्यान देकर सुनते हैं। हम आपको एक अपूर्व विषय सुना रही हैं। अन्यपरता छोड़कर एकाग्र चित्त होकर सुनिये। हम आपकी माल हैं। आप हमारे मालिक हैं। मंगलाशासन करने का प्रयोजन सुनिये।

गाय चराते जीवन बितानेवालों के (गोपों के) कुल में जन्म लेनेवाले आपको, हमसे अंतरंग सेवा लिए बिना नहीं रहना चाहिए। अर्थात् आपको हमसे सेवा लेनी ही चाहिए। (विश्वास एवं दृढता दोनों की भावना है)

गोपियां अपनी इच्छा बताती हैं। उनकी प्रार्थना का सर्वस्व यही है - हे प्रभो ! आपको हमसे सेवा (कैंकर्य) लेनी ही चाहिए। यह वचन तो कुछ आज्ञा जैसा है। विनय की वाणी होगी। प्रभो ! हमारी सेवा को कृपाकर स्वीकार कीजिए। लेकिन गोपियां भगवान की वल्लभा, अंतरंग प्रेमी होने के कारण गोपियां भगवान से अपना विज्ञापन, अपनी प्रार्थना चाहे विनय की शैली में कर सकती हैं या आज्ञा की भाषा शैली में। भक्त एवं प्रेमी जनों के वार्तालाप में इसका कोई अंतर नहीं पडता है। भक्त एवं प्रेमियों के बीच ऐसे विभिन्न प्रकार के वार्तालाप होना स्वाभाविक है। दोनों स्थितियों में कैंकर्य की ही प्रार्थना है।

गोप-गोपी लोग तो वैकुंठ, परमपद आदि दूसरे स्थान जाकर आपकी सेवा करने में अशक्त हैं। ऐसे गोप-गोपियों की सेवा लेने के लिए ही हे प्रभो ! आपने इस गोपकुल में जन्म लिया है। आप इस अवतार प्रयोजन को सफल बनाइए। इसके अलावा गायों के ऊपर अपार प्रेम से उनके साथ विहार करने के उद्देश्य से गो-समृद्ध हमारे कुल में आपने अवतार लिया है। आपकी कृपापात्र उन गायों को चरानेवाली हम को आपका कृपा पात्र होना ही चाहिए। हमारी सेवा को अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

हम अनुमान कर सकते हैं कि भगवान अपनी लीला को अब भी चालू रखते हैं। इनकी बात सुनकर भगवान ने कहा- हे मेरी गोपियो ! अब आप लोग कुछ व्रतोपकरण लेने आयी हैं। अब ले लीजिए। उसे लेकर व्रत संपन्न कीजिए। बाद में योग्य अवसर पाकर तुम सब की सेवा अवश्य लूंगा।

इसके उत्तर में गोपियां पुनः स्पष्ट करती हैं - ऐसे ही व्रतोपकरण मात्र मांगने नहीं आयी हैं। हम निवेदन कर चुकी हैं। आप भी जानते हैं। (दे. सूक्ति सं. 27, 28) यह तो आपकी लीला है। हे गोविन्दा ! पुनः हम निवेदन करती हैं - "आज (आपके दिए जानेवाले व्रतोपकरण) शंख, भेरी आदि लेने के लिए ही हम नहीं आयी हैं; किन्तु सदा-सर्वदा आपके नित्य कैंकर्य प्राप्ति के लिए आयी हैं। "गोविन्दा" नाम से पुकारने का यह विचार है। गोप कुल में जन्म लेने से आप भी शायद इतने भोले-भाले हो गए हैं कि (दिखावा मात्र के लिए) कि आप हमारे हृदयगत भावना को शायद नहीं समझते।

पिछली सूक्तियों में और प्रकृत सूक्ति में यह स्पष्ट बताया जा रहा है कि मात्र व्रत करना गोपियों का उद्देश्य नहीं है। व्रत व्याज मात्र है। सिर्फ व्रतोपकरण लेने नहीं, किन्तु अपने हृदय की आशा, आपकी नित्य सेवा मांगना और प्राप्त करना है।

वास्तविक तात्पर्य रहस्यार्थ परमपुरुषार्थ प्राप्त करना है। भगवान की प्राप्ति एवं नित्य कैंकर्य प्राप्त करना है। शुरु से गोपियों की वाणी में दोनों भावनाएं प्रकट हैं। (व्रत के उपकरण गौण)

(हाल में व्रत के अनुष्ठान के व्याज से ही इन गोपियों को श्री कृष्ण से मिलने का अवकाश प्राप्त हुआ है। गोप-वृद्धों की प्रसन्नता के लिए, उनके विषय में उपकार स्मृति से व्रत का अनुष्ठान भी अनिवार्य हो गया। व्रतोपकरण भी मांगने का यही मतलब है।

इतना परिश्रम उठाकर आयी हैं कि ''हमेशा के लिए तथा आपके और हमारे प्रत्येक जन्म में भी हम आपके साथ संबन्ध रखनेवाली ही बनेंगी एवं आपकी ही सेवा करेंगी'' ।

इसके विरुद्ध हमारी दूसरी अपेक्षाओं को कृपया शांत कीजिये । अर्थात् हमारी दूसरी इच्छाओं को हमारे मन से हटा दीजिए; बदल दीजिए ।

इनकी बडी विलक्षण प्रार्थना है । जन्म-जन्मान्तरों में भी हम आपके साथ ही रहेंगी । आपका कैंकर्य ही करती रहेंगी । जब तक यह जीवन रहेगा, तब तक और हमें जन्म जन्मान्तर में भी आपकी अविच्छिन्न सेवा कैंकर्य का भाग्य मिलना चाहिए ।

यहां जन्म शब्द का तात्पर्य है - न केवल गोपियों का जन्म; साथ ही भगवान का जन्म (अवतार) भी । यह मतलब निकलता है कि भगवान चेतनों की रक्षा करने बारंबार इस संसार में अवतार लेते हैं ।

इस जन्म में ही गोपियों को मोक्ष मिलनेवाला है । मोक्ष प्राप्ति निश्चित है । तो भी गोपियों की अद्भुत प्रार्थना है कि आगे जब यहां लीला विभूति में भगवान अवतार लेंगे, तब इनको भी साथ ले आना चाहिए । जब भगवान इस लीला विभूति में अवतार लेते हैं, आपके साथ ही महालक्ष्मी जी आदि (जैसे राम के साथ सीता, कृष्ण के साथ रुक्मिणी) भी अवतार लेती हैं । अतः ये गोपियां भी उनके साथ (भगवान) जन्म (अवतार) लेना चाहती हैं । यह भी प्रार्थना है कि अवतारों में कभी आपसे विरहित नहीं होना चाहिए ।

प्रार्थना का आशय है -

1) वर्तमान शरीर जब तक इस संसार में रहेगा, तब तक नित्य कैंकर्य सेवा प्राप्त हो ।

2) उसके बाद परमपद में नित्य कैंकर्य सेवा मिले ।

3) भगवान के कोई अवतार हो तो, आप के साथ ही अपना भी जन्म हो ।

4) किसी जन्म में कभी आपसे बिछोह न हो जाये ।

5) एक क्षण मात्र के लिए भी आपकी सेवा छूट न जाय ।

**यह विलक्षण पुरुषार्थ परंपरा है । (गोपियों को, और उनके सदृश भक्तों को छोड़कर दूसरा कौन यह प्राप्त कर सकेगा?) तिरुप्पावै का यह केन्द्र बिन्दु है ।**

हम आपकी ही (''उनक्के'' तमिऴ् शब्द) सेवा करेंगी। **''आपकी ही सेवा''** इस पर विशेष जोर देकर कहती हैं।

कर्मवश होकर संसारी चेतन दूसरे कई लोगों की सेवा करता है। उससे कभी कुछ लाभ पाता है, कभी उसका स्वयं प्रयोजन भी मानता है। कई लोग भगवान की सेवा करते हैं और दूसरों की भी।

हां ! गोपियों की विलक्षण प्रार्थना है- हे प्रभो। आपकी कृपा से सिर्फ आपको छोड़कर दूसरे किसी को भी सेवा करने का दुर्भाग्य न हो। हां, भगवान् के परिजनों की सेवा, भक्तों की सेवा, आचार्य सेवा आदि तो भगवत् सेवा का ही एक प्रकारांतर है। अतः उक्त सेवा हम अवश्य करेंगी। उक्त रीति से कर्माधीन दूसरी किसी की सेवा करने का दुर्भाग्य न हो। तात्पर्य है आपकी प्रसन्नता के लिए ही हम आपकी ही सेवा करेंगी। विवरण है -

हमारी अन्य इच्छाओं, आशाओं को शांत कीजिये। ऊपर से इसका अर्थ होता है कि भगवत्सेवा को छोड़कर दूसरे पुरुषार्थों में हमें इच्छा न हो। परन्तु यह बेकार है। गोपियों ने पहले कई स्थानों में अपने अनन्य प्रयोजनत्व का सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है, जिसको सुननेवाले या अनुभव करनेवाले के मन में क्षुद्र लौकिक पुरुषार्थों की याद तक न आ सकेगी।

यहां पर ऐसी एक इच्छा की निवृत्ति भी मांगी जाती है जो भगवान की माया से अनन्य प्रयोजन परम भक्तों के मन में भी कभी-कभी उत्पन्न हुआ करती है। यह तो भगवान की लीला है - वह है स्वार्थ सेवा। अर्थात् भगवान की सेवा करने वाले बहुत लोग यह मानते हैं कि उस सेवा से अपने को आनन्द मिलेगा। शांति मिलेगी। अर्थात् वे अपने से अनुभूत सांसारिक दुःखों को पार कर सिर्फ ब्रह्मानन्द लूट लेंगे। गोपियों की भावना या कैंकर्य उपरोक्त प्रकार की नहीं है। हाँ, इनकी कामना इससे भी उत्तम एवं श्रेष्ठ है। विलक्षण है। यहीं पर ''दूर करो'', ''शांत करो''- (''मार्ट्रु'' तमिऴ् शब्द) विशेष महत्व रखता है।

हे प्रभो ! अपने स्वलाभ (आनन्द) के लिए आपकी सेवा करने की हमारी स्वार्थता को, अगर हमारे मन में हो तो मिटा दीजिए। अर्थात् हम आपकी प्रसन्नता मात्र के लिए ही आपकी सेवा करें, कैंकर्य करें। न तो किसी प्रकार के अपने दूसरे स्वभोग साधन के लिए। हमें ऐसी बुद्धि दीजिए। कृपा की प्रार्थना है।

मतलब है कि आपकी सेवा करते-करते, (अगर) उसमें हमें जो स्वार्थ साधन की बुद्धि होगी, उसको भी आप परिवर्तन कर दीजिए। आपकी प्रसन्नता के लिए सेवा करें। इनका विचार स्पष्ट है -

भगवान संसारी चेतन को पाकर (परमपद में) चेतन से नित्य सेवा लेकर स्वयं आनन्द पाते हैं। भगवान के उक्त आनन्द के निमित्त मात्र होना चेतन का काम है। यह भाव है, जब भगवान इस चेतन का अनुभव करते हैं, तब यह चेतन समुचित वाचिक एवं कायिक व्यापारों से भगवान का भोग बढाता है। चेतन भगवान का (अपना नहीं) यह भोग देखकर स्वयं कृतार्थ एवं आनन्दमय होता है। यही इसके चैतन्य का फल है।

इस पर ध्यान देना है - चेतन "मैं" भगवान का भोग्य हूँ। यानी भगवान मेरे भोक्ता हैं। अतः मोक्ष में चेतन लाभ से आनन्दित होनेवाले स्वयं भगवान हैं। भगवान के भोग को संकुचित नहीं करना है। सर्वात्मना परतंत्र रहकर भगवान के भोग के दर्शन से स्वयं आनन्द पाना ही चेतन का कार्य या प्रयोजन है। अर्थात् भगवान के आनन्द से यह भी खुश होता है। यही ब्रह्मानन्द है।

संसार में भी लौकिक जीवन में यह देखा जाता है कि अपने संतानों के सुख से माता-पिता प्रसन्न होते हैं और दुःख से दुःख का अनुभव करते हैं। उनके दुःख निवारण के लिए अपना सब कुछ त्याग करने में, परिश्रम करने में, प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। पुत्र-पुत्रियां भी अपने माता-पिता को आनन्दित पाकर स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं। संसारी लोगों में भी यह भावना देखी जाती है। भगवान तो हमारे माता-पिता एवं सर्वस्व हैं। भगवान के लिए भी हम सर्वस्व हैं। भगवान चेतन को अपने यहां पाकर (मोक्ष प्राप्ति) अति प्रसन्न होते हैं। हम में भी उक्त भावना का होना है कि भगवान की प्रसन्नता में ही हमारी प्रसन्नता निहित होनी चाहिए। यह जीव का एक मात्र लक्ष्य ही नहीं, न्यूनतम आवश्यकता है )

यह सूक्ति तिरुप्पावै की आत्मा है - जीवन केन्द्र है। इसमें गोपियों का एक मात्र उद्देश्य स्वष्ट प्रकटित है।

**स्वापदेशः**

हम आपका ही कैंकर्य करेंगी। यही हमारा उद्देश्य है। अर्थात् कैंकर्य मात्र हमारा उद्देश्य है। इस तत्व को इस प्रबन्ध में सिद्ध करती हैं। उस कैंकर्य को हमारे द्वारा संपन्न करने लायक बनानेवाले सिद्धोपायक भगवान ही हैं। यही विचार करना चाहिए कि हम जो कुछ करते हैं, सब उनके कृत्य हैं। कृपा है।

इसके अलावा साध्योपाय कैंकर्य करते वक्त हमारे मन में कोई अपतृण (कळै-तमिळ् शब्द) उत्पन्न होंगे - अर्थात् मैं करता हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ। यह मेरे लिए है - अपना है - इस प्रकार अपनेपन आदि दोष (अपतृण) अगर हमारे मन में उठेंगे तो उसे भी निकाल कर उत्तम कैंकर्य में लगने, अनुग्रह करने की प्रार्थना है।

आखिर इस सूक्ति में "परै" को स्पष्ट भाषा में प्रकट करती हैं - उनकी मांगी वस्तु (अभिलाषा) कृष्ण का प्रेम है एवं उनका कैंकर्य है। सर्वत्र सर्वकाल, सात-सात जन्मों में यही परम पुरुषार्थ बताती हैं। इस प्रकार प्रेम विकसित कैंकर्य हीं अपेक्षित है। यही इस प्रबन्ध का प्राण है - आत्मा है। परम पवित्र साध्य/लक्ष्य है।

## फलश्रुति

वङ्गक् कडल् कडैन्द मादवनैक् केशवनैत्
तिङ्गल् तिरुमुहत्तुच् चेयिळैयार् चन्डु इरैञ्जि
अंगुप् परैकोण्ड आट्रै अणि पुदुवैप्
पैङ्कमलत् तण् तरियल् पट्टर्पिरान् कोदै चोन्न
चङ्कत् तमिळ् मालै मुप्पदुम् तप्पामे
इंगु इप् परिशु उरैप्पार् ईरिरण्डु माल् वरैत्तोळ्
चेङ्कण् तिरुमुहत्तुच् चॅल्वत् तिरुमालाल्
एङ्गुम् तिरुवरुळ् पॅट्र इन्पुरुवर् एम्पावाय् ॥ (30)

पूर्व सूक्तियों में गोपियों ने कृष्ण भगवान से "परै" अर्थात् पुरुषार्थ नित्य सेवा मांगी। भगवान की प्रसन्नता के लिए नित्य सेवा (कैंकर्य) मांगती हैं। प्रकृत सूक्ति में आण्डाळ की वाणी है कि भगवान ने उन पर बडी कृपा की। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसे सफल बना दिया। गोपियों ने अपने वांछित फल परै-परम पुरुषार्थ प्राप्त किया। प्रकृत सूक्ति में इसका वर्णन और फलश्रुति है।

भगवान अपनी कृपा-दृष्टि से, मनोहर इंगित से, मंदहास से, एवं गंभीर अनुग्रहपूर्ण वचन से गोपियों पर अपने अनुग्रह को प्रकाशित किया।

भावना प्रधान, एवं भावुक वर्णन करनेवाली गोदा देवी से प्रोक्त इस तिरुप्पावै प्रबन्ध का पाठ करनेवाले, अध्ययन करनेवाले भक्त लोग भी भगवान का कृपा पात्र बनकर ब्रह्मानन्द पाएंगे। चन्द्र के समान मुखवाली एवं उत्तम आभूषणों से भूषित गोपियों ने लहरों से युक्त सागर का (क्षीर सागर) देवताओं के लिए मंथन करनेवाले लक्ष्मीपति श्री कृष्ण भगवान के पास पुरुषार्थ जो पाया, उस वृत्तांत का वर्णन करनेवाली "(गोदा देवी)"।

उक्त वचन का तात्पर्य है कि भगवान ने क्षीरसागर का मंथन कर, अपने पादाश्रित भक्त देवताओं की इच्छा की पूर्ति कर उनको तृप्त किया। उस वक्त स्वयं लक्ष्मी को प्राप्त कर माधव होने से भगवान बहुत प्रसन्न थे। अब गोपियों के अनुग्रह करते वक्त भी भगवान का मुखमंडल ऐसा ही प्रसन्न दीख पडा। परत्व और सौलभ्य (प्रकटन) की दोनों स्थितियों का उल्लेख है। आचार्यों का कहना है कि माधव कहने से "द्वय" मंत्र का महत्व बताया जाता है।

देवता लोग तो प्रयोजनांतर एवं स्वार्थी थे। भगवान ने उनके लिए (देवता लोग) बहुत परिश्रम करके अपने वासस्थान क्षीरसागर को भी मंथन कर डाला। (परत्व) गोपियां तो अनन्य प्रयोजन भक्ताग्रेसर हैं। उनकी प्रार्थना सफल करने में आप क्या विलंब करेंगे ?

नहीं ! नहीं ! शायद इस महत्व को दर्शाने के लिए ही यहां समुद्र मंथन का उल्लेख है - गोदा देवी द्वारा। देवता लोग तो अमृत चाहते थे न कि भगवान को। भगवान तो भक्तों की इच्छा की पूर्ति करनेवाले हैं। इसलिए उनको अमृत दिया।

गोपियों की हार्दिक भावना - इच्छा है और कई स्थानों पर प्रकट भी की है कि अपने अपेक्षित अमृत स्वयं श्री कृष्ण ही हैं। भगवान ने देवताओं के स्वार्थ को सफल बनाया। तब गोपियों के कैंकर्य की अपेक्षा को सफल बनाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। प्रकृत सूक्ति के प्रथम पाद में यह भावना प्रकट है।

जिन गोपियों ने पुरुषार्थ पाया वे कैसी हैं? चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली एवं उत्तम आभूषणों से भूषित हैं। वह भी नप्पिन्नै और कृष्ण के हाथों से सर्वाभरण भूषित हैं। ये दोनों इनको भगवान की कृपा से प्राप्त विशेषण हैं। प्राकृतिक सुन्दरता तो है ही। हां, सुन्दर कृष्ण का चिंतन एवं स्तुति करते-करते और भी सुन्दर होने में क्या आश्चर्य है? हृदय की सुन्दरता मुंह पर प्रकाशित है चन्द्रमा के समान। यह भी उल्लेखनीय है कि यहां जो आभूषण उल्लिखित हैं, वे सब इनकी इच्छा के अनुसार श्री कृष्ण और नप्पिन्नै ने इनको पहनाया। इससे दोनों की (बाहर एवं भीतर) सुन्दरता एवं प्रसन्नता ज्वलित है।

तिरुप्पावै की प्रथम सूक्ति में बताया गया है कि भगवान सूर्य और चन्द्र के समान मुखवाले हैं। इसमें सूर्य समान होना भगवान का असाधारण धर्म है। अतः (उसको छोड़कर) गोपियां (का मुंह) "चन्द्र समान" हो गया है। श्रुति के अनुसार भी मोक्ष पानेवाला चेतन भगवान के कुछ असाधारण लक्षणों को (जगत्कारणत्व, लक्ष्मीपतित्व आदि कतिपय लक्षण) छोडकर दूसरे अंशों में

भगवान के समान हो जाते हैं। इस प्रकार गोपियों से प्राप्त सायुज्य प्रकट किया जाता है। भगवान ने भी इनको खूब सम्मानित किया। (सूक्ति 27) पहले भी इसका उल्लेख है। अतः हम समझ सकते हैं कि गोपियों को लौकिक और पारलौकिक दोनों पुरुषार्थ प्राप्त हो गए। वे कृतकृत्य हो गयीं।

आगे की पंक्ति में प्रबन्ध की कवयित्री का उल्लेख है।

"जगत के अलंकार भूत श्रीविल्लिपुत्तूर नगर के (स्वामी) हरे कमल पुष्पों की सुशीतल माला से अलंकृत श्री भट्टनाथ स्वामीजी की सुपुत्री द्वारा पट्टरपिरान गोदा देवी से प्रोक्त (यह प्रबन्ध)"

ख्याति लाभ, सत्कार आदि से विरक्त आळ्वार लोग अपने प्रबन्ध के अंत में अपना नामांकन इसलिए करते हैं कि उससे लोग उस प्रबन्ध में विश्वास करें।

(वेद में भी यह क्रम पाया जाता है) यह दिव्य प्रबन्ध गोदा देवी से प्रोक्त है। अनुगृहीत है - (बिलकुल प्रामाणिक है) भक्त इसे सुनकर इस ग्रंथ का विशेष आदर करेंगे। यह तो प्राचीन परंपरा है। इस प्रबन्ध में अपने को पट्टरपिरान कोदै कहती हैं। इसके अलावा स्वामी जी गोदादेवी के गुरु भी थे। गोदा का दृढ विश्वास है कि स्वामीजी से संबन्ध होने के कारण ही अपना मंगल कल्याण होनेवाला है। इससे आण्डाळ का महत्व एवं आचार्य संबन्ध भी प्रकट किया जाता है।

पट्टरपिरान कोदै कहते हुए, गोदा ने भट्टनाथ स्वामी जी के भी दो विशेषण दिए हैं-

(1) जगत के अलंकार भूत श्रीविल्लिपुत्तूर (पुदुवै) नगर के स्वामी। श्रीविल्लिपुत्तूर का संक्षिप्त नाम पुदुवै है।

यह जगत का अलंकार कहा जाता है जो बिलकुल सत्य है। यहां इस दिव्य देश में (1) वटपत्रशायी भगवान, (2) श्री महालक्ष्मीजी के अपरावतार गोदा देवी एवं (3) आचार्य सार्वभौम् श्री विष्णुचित्त (भट्टनाथ) स्वामी प्रभृति (जिनका यहां पर अवतार हुआ था) तीनों की मूर्तियों का विराजमान होना बहुत प्रसिद्ध है। (भट्टनाथ आपका विरुद है)

(2) दूसरा विशेषण है "सुन्दर एवं सुशीतल कमल माला (कमल मणिमाला की तरह) से सुशोभित। श्री भक्तलोग भगवान के शेष प्रसाद कमल माला - तुलसी माला पहनते हैं। अर्थात् स्वामीजी समस्त वैष्णव लक्षणों से विभूषित हैं।

गोदा देवी द्वारा ही तिरुप्पावै दिव्य प्रबन्ध की तीन विशेषताएं - विशेषण दिए जाते हैं -

''जत्था-जत्था'' बनकर (भक्तों से गान करने लायक) द्राविड भाषामाला रूप इन तीस गाथाओं का''

(1) जत्था - बडी गोष्ठी बनकर भक्तों से गाने लायक होना- गाया जाता है।

(2) तमिऴ् भाषा में प्रोक्त (द्राविड भाषा)

(3) ''पुष्पमाला सदृश होना'' यह भाव है कि गोपियां जिस प्रकार बडी गोष्ठी बनाकर (श्री कृष्ण की सन्निधि में गयी) उसी प्रकार एवं उसी भावना से भक्त लोग बडी २ गोष्ठियों में तिरुप्पावै का पाठ करते हैं।

यह तमिऴ् भाषा का प्रबन्ध है । इसमें इसका माधुर्य प्रकट है । अति मधुर तमिऴ् भाषा में अनुगृहीत है ।

माला कहने का तात्पर्य:- जिस प्रकार माला भगवान एवं भागवतों का शिरोधार्य होती है, इसी प्रकार यह प्रबन्ध भी दोनों को शिरोधार्य है। गोदादेवी ने भगवान को पुष्पमाला (आमुक्त माला) और पद्यमाला समर्पित की । पद्यमाला भक्तों के लिए भी । भगवान अपने सिर पर पुष्पमाला धारण करते हैं। भक्तजन सिर, (बुद्धि) मुख एवं मन से इस पद्य माला का धारण करते हैं।

**आखिर फल श्रुति है-**

इस भूमंडल में इसी प्रकार (इस प्रबन्ध का) अचूक पाठ करनेवाले (भक्त लोग) पर्वत के समान चार भुजावाले, लाल नेत्रवाले, सुन्दर मुखवाले एवं एश्वर्य वाले श्रीयः पति से (तिरुमाल) सर्वत्र (आपकी एवं लक्ष्मीजी की) कृपा पाकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगे ।

तीस सूक्तियों के होने से मूल पाठ करना सुलभ है । और धर्नुमास में (मार्गशीर्ष) हरेक दिन एक-एक सूक्ति के क्रम से तीस दिनों में समग्र प्रबन्ध का अर्थानुसन्धान कर सकते हैं। आजकल प्रवचन के रूप में सुनाया जाता है ।

इसमें सभी तीसों सूक्तियां मुख्य हैं । एक को छोड देने पर भी बडी न्यूनता हो जाएगी । एक सूक्ति को भी नहीं छोडना चाहिए । जैसे रत्नहार में कोई एक रत्न के अभाव में हार शोभाहीन बन जाएगा । इतना ही नहीं एक-एक शब्द, अक्षर, मात्रा आदि में भी न्यूनता नहीं होनी चाहिए। शुष्क हृदय से नहीं, लेकिन गोपियों की भावना, जिस प्रकार गोदादेवी में परिपूर्ण थी, उसी प्रकार भावप्रवण होकर, सप्रेम इसका पाठ करना चाहिए ।

"भूमि" यहां भूमंडल में कहने से यह सूचित है कि दूसरे लोकों में भी यानी परमपद में भी इसका पाठ होता है। इसका पाठ करने पूर्वाक्त भाव्वुद्धि के सिवा कोई दूसरी योग्यता का यहां उल्लेख नहीं है। इस प्रकार सब को, बिना किसी भेदभाव के इसे पाठ करने का "सर्वाधिकार" प्राप्त है। (प्रथम सूक्ति में भी यह भाव व्यक्त किया गया है)

आगे पाठ करनेवालों के लभ्य पुरुषार्थ का विवरण है। इस प्रबन्ध को पाठ करनेवाले भक्त लोग भगवान की विशेष कृपा का पात्र बनकर यहां, वहां और सर्वत्र आनन्द पाएंगे। मूल में (तिरु-अरुळ् ) है। अर्थात् महालक्ष्मी एवं भगवान (दिव्य दंपतियों) की कृपा प्राप्त करेंगे। सर्वत्र ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगे।

यहां भगवान के चार विशेषण दिए गए हैं।

(1) चतुर्भुज (2) कमल नयन (3) सौम्यमुख (4) लक्ष्मीपति

भगवान के चार भुजा देखने से हम समझ सकते हैं कि आप एक ही समय में, एक साथ भक्तों के अपेक्षित चारों पुरुषार्थों के प्रदाता हैं।

आपके दिव्य नेत्र, भक्तों पर अनुग्रह दिखाने वाले उनको अपनी कृपा दृष्टि से पवित्र बनाकर उत्तरोत्तर श्रेय के मार्ग में लगाते हैं।

सदा भक्तों के श्रेय का ही चिंतन करने से भगवान का मुंह बडा सौम्य रहता है।

लक्ष्मीपति विशेषण का बडा महत्व है। कदाचित् भक्त के अज्ञान से कोई अपराध करने पर उस पर ध्यान देकर, उसे दंड देने का विचार अगर भगवान करे तो उसको (विचार) दबाकर, बदलकर अनुग्रह संकल्प को ही बढानेवाली (अर्थात् भक्त को क्षमा प्रदान करने का पुरुषकार करनेवाली) लक्ष्मी का नित्य सान्निध्य कहा जाता है।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि इस प्रकार भगवान का कृपा पात्र भक्त, भूलोक एवं परलोक में समस्त सौभाग्य एवं संपत्ति प्राप्त कर ब्रह्मानन्द का अनुभव करेगा।

तिरुप्पावै प्रबन्ध का सप्रेम, उत्साह एवं भावनासहित पाठ करने वाले भक्त लोग, करुणासागर भगवान एवं महालक्ष्मी की कृपा के पूर्ण लक्ष्य होकर इस संसार में भगवत् कैंकर्य करने अपेक्षित सत्संग में अवगाहन कर, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सत्संतान आदि समस्त पुरुषार्थ प्राप्त करेंगे। फलतः परमपद पहुंचकर वहां भी ब्रह्मानन्द लूट लेंगे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि भगवान के लिए जो शब्द प्रयुक्त हैं, वे सब आचार्य के लिए भी लागू हैं - उनके वैभव प्रकाशित करते हैं। वैष्णव सिद्धांत में

भगवान और आचार्य दोनों को समान माना जाता है। तमिळ में ''मातवन'' - तमिळ शब्द का अर्थ ''महा तपस्वी'' भी होता है।

आचार्य महा तपस्वी होते हैं। केशव शब्द यह सूचित करता है कि दुष्ट इन्द्रिय रूपी घोडों को दमन करनेवाले आचार्य। शिष्य, आचार्य निष्ठारूप, अपना अपेक्षित पुरुषार्थ पाते हैं। इसलिए शिष्य भी प्रसन्नमुख एवं शमदमनादि अलंकारों से विभूषित हैं। इस पुरुषार्थ प्राप्ति का वर्णन करना भी तिरुप्पावै दिव्य प्रबन्ध का तात्पर्य है। सूक्ति के उत्तरार्ध में प्रयुक्त विशेषण भी आचार्य के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। अतः यह तात्पर्य है कि इसे पाठ करनेवाले उत्तम शिष्य आचार्य की कृपा का पात्र बन कर इस लोक में और पर लोक में, सीमातीत आनन्द प्राप्त करते हैं, जिनको आचार्य पादारविन्द ही गति है। अर्थात् आचार्य एवं भगवान दोनों इनसे (उत्तम शिष्य) प्रसन्न हैं। ये आचार्य को अपना फल-प्रद देव भी मानते हैं।

इनके लिए भगवान त्याज्य नहीं। परन्तु सर्वत्र, सर्वकाल और सर्वावस्था में सेवनीय हैं। आचार्य का उपदेश है कि हमेशा भगवान का भजन सेवन एवं भक्ति करें। भगवान एवं आचार्य की प्रसन्नता के लिए निष्ठावान शिष्य भगवान की सेवा करते हैं और प्रसन्न भगवान का संपूर्ण अनुग्रह प्राप्त करते हैं। शिष्यों को दुगुना लाभ है। तात्पर्य यह भी होगा कि तिरुप्पावै का पाठ/अध्ययन करनेवाला मानव (शिष्य) भगवान की एवं महालक्ष्मी की विशेष कृपा का पात्र होकर, आचार्य-निष्ठा रूप महान ऐश्वर्य पाकर यहां और परमपद में सुखी एवं प्रसन्न रहकर ब्रह्मानन्द - प्राप्त करेगा। यही भगवान की कृपा है, अनुग्रह है, परम पुरुषार्थ है।

अपनापन छोड़कर, किसी दूसरी कामना की इच्छा न रखते हुए, जो भगवान की भक्ति करते हैं, उनको भगवान हमेशा के लिए मोक्ष प्रदान करते हैं। आनुषंगिक रूप से इस लोक में भी सभी योग-क्षेम प्रदान करेंगे।

योगः जो अब तक अलभ्य है उसकी प्राप्ति।
(अलब्यस्य लाभः योगः)
क्षेमः जो प्राप्त है उसका परिपालन क्षेम है।
(लब्धस्य परिपालनम् क्षेमः)

भगवान को ही सतत रक्षक के रूप में ध्यान करेंगे तो, हमारे प्रयत्न के न होने पर भी, भगवान सर्वत्र सर्वकाल हमारी रक्षा करेंगे। वही सर्व रक्षक है।

आण्डाळ के श्री पादों की जय हो ॥

''आण्डाळ् तिरुवडिहळे चरणम्''

**उत्तर शांतिपाठ**

तिरुप्पावै का पाठ समाप्त करने के बाद इन निम्नलिखित दो सूक्तियों (पद्य) का भी पाठ करना संप्रदाय है। प्रथम पद्य में श्रीविल्लिपुत्तूर दिव्य नगर की और दूसरे में तिरुप्पावै दिव्य प्रबन्ध की महिमा गायी जाती है।

कौदै पिरन्द ऊर्, गोविन्दन् वाऴुम् ऊर्,
शोदि मणिमाडम् तोन्डुम् ऊर्-नीतियाल्
नल्ल पत्तर् वाऴुम् ऊर्, नान्मरैहळ् ओदुम् ऊर्
विल्लिपुत्तूर् वेदक् कोन् ऊर्।

गोदा देवी का जन्म स्थान श्री विल्लिपुत्तुर नामक दिव्य नगर है। भगवान का (गोविन्दन - वटपत्रशायी) वासस्थान है। उज्जवल मणिमय महलों से अलंकृत है। उत्तम भक्त यहां पर नीति न्यायपूर्ण जीवन बिताते हुए विराजते हैं। यहाँ चारों वेदों का अध्ययन खूब चालू है। वेद वेदान्त के आचार्य श्री विष्णुचित्त (पट्टरपिटान पेरियाऴ्वार) स्वामी का भी अवतार स्थल है।

पादहङ्गळ् तीर्क्कुम् परमन् अडिकाट्टुम्,
वेदम् अनैत्तुक्कुम् वित्ताहुम्-कोदै तमिऴ्
ऐयैन्दुम् ऐन्दुम् अरियाद मानिडरै
वैयम् शुमप्पदुम् वंबु।

समस्त पापों को नाश करनेवाले, भगवान के पादारविन्द प्राप्त करानेवाले, (पहुंचानेवाले) एवं समस्त वेदों का बीजभूत गोदा देवी से अनुगृहीत तमिऴ् भाषा के तिरुप्पावै प्रबन्ध की तीस सूक्तियों को नहीं जाननेवाले भूभार मात्र हैं।

आण्डाळ के श्री पादों की जय हो।

**आण्डाळ् तिरुवडिहळे चरणम्**

श्रीमते रामानुजाय नमः
श्री गोदा देव्यै नमः
आचार्य के श्री पादों की जय हो

**आचार्यन् तिरुवडिहळे चरणम्**

## तीस पुष्पों की एक गीत माला

### तिरुप्पावै की एकैक गाथा में प्रतिपादित अर्थ ।

1) पवित्र अवगाहन; काल, अधिकारी, और निर्वाहक श्री कृष्ण की स्तुति कर गोपियां सब इकट्ठा होकर निष्ठा से मार्गशीर्ष व्रत करने उद्यत होती हैं ।

2) जीवन्त व्रत, व्रत ही भोग है - व्रत करनेवालों का कर्तव्य, अवश्य वर्जनीय एवं करने योग्य कृत्या-कृत्यों का निर्णय किया जाता है ।

3) निष्ठापूर्ण व्रत से देश की श्रीवृद्धि - जन-कल्याण, इसका फल समस्त देश में व्याप्त होता है ।

4) वर्षा गीत-लोक समृद्धि का मूल बरसात है । पर्जन्य देव (मेघ) से देश की संपन्नता के लिए खूब बरसने की प्रार्थना । (आज्ञा दी जाती है)

5) प्रसक्त व्रत में विघ्न पडने की शंका दूर की जाती है । अपने अनुष्ठित व्रत में नाम संकीर्तन की महिमा में, और नाम संकीर्तन में विघ्नों को दूर करने की क्षमता ।

इस व्रत के लिए इकट्ठी गोपियों में कुछ गोपियों को अनुपस्थित देखकर, उनके यहां जाकर उनके प्रबोधन का (जगाये जाने का) विवरण है - आगे की दस सूक्तियों में । गोपियों के अनुपम गुणों का प्रकाश होता है ।

एकैक सूक्ति से एकैक गुणवाली गोपी का प्रबोधन है ।

6) भगवदानुभव में नवीन अनुभववाली गोपी को जगाना (उद्बोधन)

7) गोपियों की गोष्ठी में नायकमणि (के समान) प्रधान गोपी का उत्थापन

8) श्री कृष्ण का विशेष प्रेम प्राप्त, वैसी एक अंतरंग गोपी का उत्थापन ।

9) मामाजी की पुत्री का स्वयं भगवदानुभव में निष्ठ एक कृष्ण प्रिया गोपी का उत्थापन ।

10) कृतकृत्या-कृष्णानुभव स्वर्ग का अनुभव प्राप्त एक गोपी का उत्थापन ।

11) स्व-धर्मानुष्ठान निरत एक सुन्दर एवं संपन्न गोप पुत्री का उत्थापन ।

12) अविच्छिन्न रुप से भगवान (श्री कृष्ण) की सेवा में निरत एक श्री संपन्न गोप की बहन का उत्थापन है ।

13) भगवान श्री कृष्ण को भी अपने वश में करने समर्थ सुन्दर आंखवाली एक गोपी का उद्बोधन । सामूहिक भक्ति, भजन की भूमिका एवं महत्व ।

14) सब को स्वयं जगाने का वचन देकर, उसे भूलकर शयन करनेवाली एक प्रमुख गोपी का उत्थापन ।

15) सभी सखियों से भरे-पूर्ण बड़ी गोष्ठी देखने की कामना वाली एक प्रमुख गोपी का उद्बोधन । रसपूर्ण बातचीत ।

16) सभी गोपियां (गोष्ठी बनाकर) नंदगोपजी के दिव्य भवन पर जाकर अपना लक्ष्य बताते हुए - द्वारपाल से मणिमय किवाड खोलने की प्रार्थना करती हैं ।

17) नंदगोपजी माता यशोदाजी, बलदेव एवं श्री कृष्ण का उत्थापन ।

18) कृष्णवतार में भगवान की एक प्रधान महिषी नप्पिन्नै (नीलादेवी) का उत्थापन ।

19) श्री कृष्ण और नप्पिन्नै देवी दोनों में होडा-होडी कि कौन पहले बोले । गोपियों की बात का जवाब दें ।

20) श्री कृष्ण एवं श्री नप्पिन्नै का उत्थापन, नप्पिन्नै का उत्तर (श्री कृष्ण का इशारा पाकर)

21) नप्पिन्नै भी गोपियों की गोष्ठी में पहुंच जाती है । आपके साथ मिलकर आपके पुरुषकार में श्री कृष्ण की स्तुति करती हैं । नप्पिन्नै के पहुंच जाने से उसका पुरुषकार प्राप्तकर उनका धैर्य एवं शक्ति वर्धित है ।

22) गोपियां अपने अनन्यगतित्व का निवेदन करती हुई श्री कृष्ण के उभय नेत्रों की कृपा दृष्टि मांगती हैं, जिससे उनके सभी पाप छूट जाएँ एवं भगवत् विरह पीडा से मुक्ति मिले ।

23) गोपियां श्री कृष्ण की शयनावस्था की सुन्दरता देखने पर, आपके चलने एवं विराजमान होने की भी शोभा देखने की इच्छा से, अपने शयनगृह से पधारकर, आस्थान मंडप में दिव्य सिंहासन पर विराजने की प्रार्थना करती हैं । (वहां अपनी प्रार्थना सुनाएंगी)

24) (गोपियों की) प्रार्थना सुनकर प्रसन्न भगवान चलकर सिंहासन पर विराजते हैं । सिंहासन पर विराजमान श्री कृष्ण की दिव्य लीलाओं की स्तुतिपूर्वक विशेषतः पादारविन्दों का जय जयकार है - मंगलाशासन किया जाता है ।

25) श्री कृष्ण के कुशल-प्रश्न किए जाने पर गोपियों का निवेदन है - आपके (श्री कृष्ण) दिव्य चरित्रों का कीर्तन करती हुई, हम बिना कोई क्लेश, सानन्द आपकी सन्निधि में पहुंच गयी हैं । आपकी प्राप्ति ही हमारा परम पुरुषार्थ है ।

26) मार्गशीर्ष व्रत के अनुष्ठान के लिए अपेक्षित शंख, (पाञ्चजन्य) भेरी, झंडा, छत्री, आदि पदार्थ (श्री कृष्ण से) मांगे जाते हैं । इसके बहाने श्री कृष्ण को ही चाहती हैं - वे अगुआ बने और इनका व्रत संभालें । इसमें गोपियों की वाक्-चातुर्य, विलक्षणता प्रकट है ।

27) व्रत की सफलता पूर्ण एवं मंगल समाप्ति के वक्त भगवान से जन समर्थित बहुमान मांगा जाता है । श्री कृष्ण प्राप्ति एवं पुरुषार्थ प्राप्ति से सभी

सांसारिक विरह-ताप दूर होकर, सब का हृदय शीतल होकर आनन्दित होगा। यह शांति प्रदायक है।

28) अपने आकिंचन्य और अनन्यगतित्व का प्रकाशन करती हुई गोपियां भगवान से निवेदन करती हैं। श्री कृष्ण का, अपना बन्धु होना ही उनका सब से बडा (एकमात्र) सुकृत है। इस सुकृत के कारण वे परम पुरुषार्थ पाने योग्य पात्र हैं। अपराध की क्षमा भी मांगती हैं (गौण नाम लेने का)

29) तिरुप्पावै प्रबन्ध में, आरंभ से बराबर प्रस्तुत परम पुरुषार्थ परै का सच्चा स्वरूप स्पष्ट बताया जाता है। श्री कृष्ण से गोपियों की प्रार्थना है - हे प्रभो ! आपकी नित्य सेवा-कैंकर्य छोड़कर किसी दूसरी वस्तुओं की हम इच्छा नहीं रखतीं। वह कैंकर्य भी आपके ही आनन्द के लिए है। आपकी प्रसन्नता ही हमारा एक मात्र लक्ष्य-उद्देश्य है।

30. भगवान ने (श्री कृष्ण) गोपियों की प्रार्थना को सफल बना दिया। इस प्रकार व्रत का अनुष्ठान पूर्णतया समंगल संपन्न हुआ। इससे बढकर गोपियों ने परम पुरुषार्थ भी प्राप्त किया।

गोदादेवी का आशीर्वाद है कि इस प्रबन्ध का भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाले लोग, भगवान एवं आचार्य की विशेष कृपा का पात्र बनकर लौकिक और पारलौकिक समस्त श्रेय, भगवान का नित्य कैंकर्य पाकर आनन्दित हो जाएंगे। ब्रह्मानन्द प्राप्त करेंगे।

**आण्डाळ् तिरुवडिहळे चरणम्।**

# आळ्वार द्वारा मंगलाशासित उत्तर के दिव्य क्षेत्र (11)
## आळ्वार दिव्य सूक्तियाँ - 108

(चतुःसहस्र दिव्य प्रबन्ध से संगृहीत)

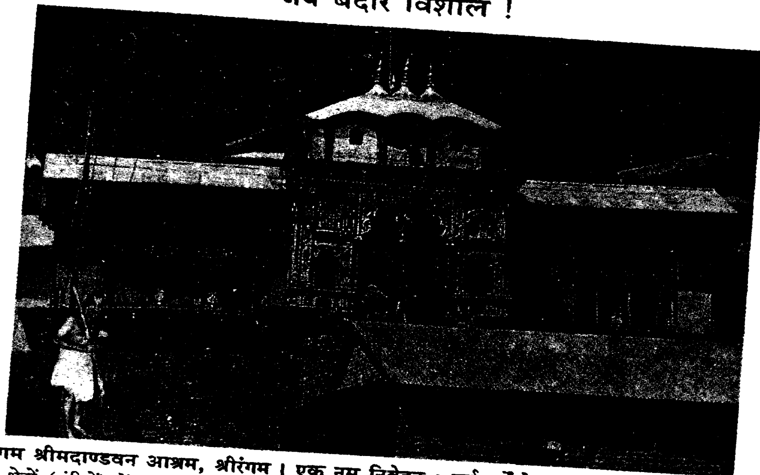
हिन्दी भावार्थ



**वि. सू.**

आळ्वार की दिव्य सूक्तियों में (मूल तमिळ्) वदरि बदरि का प्रयोग है।)

## जय बदरि विशाल !



**श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन आश्रम, श्रीरंगम । एक नम्र निवेदन :** पूर्वाचार्यों के अनुग्रह से, ऊपर उल्लिखित 9 दिव्य क्षेत्रों (मंदिरों) में उन उन दिव्य क्षेत्रों से संबन्धित आळ्वार द्वारा मंगलाशासित दिव्य सूक्तियों को देवनागरी लिपि एवं तमिळ लिपि दोनों में संगमरमर पर खुदवा कर, वहाँ स्थापित करने की योजना है । इस पवित्र सेवा कार्य को संपन्न करने में आपका सहयोग प्रार्थित है ।

# तिरुक्कण्डङ्कडिनगर (श्रीखंड क्षेत्र) (देवप्रयाग) उत्तर प्रदेश

## पॅरियाळ्वार तिरुमॉळि

## पॅरियाळ्वार (विष्णुचित्त)

**अवतारिका:**

लक्ष्मीनाथ समारंभां नाथ यामुन मध्यमां ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरंपराम् ॥

भक्ति मार्ग में ज्ञान भक्ति एवं प्रेम भक्ति के अनुसार भक्तों में भक्ति की दो दशाएं होती हैं-

(1) ज्ञान दशा (2) प्रेम दशा

तीव्र प्रेम दशा की भावना बड़ी विलक्षण होती है । जब आळ्वार को महालक्ष्मी सहित शंख, चक्र तथा दिव्याभरणों से भूषित गरुडारूढ भगवान श्रीमन्नारायण के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए, तब उनके मन में यह शंका उठी कि इतने महान सौन्दर्य पर संसारियों की कुदृष्टि न पड जाय । यह परम पवित्र प्रेम की पराकाष्ठा है । संसार के रक्षक भगवानको संबोधित कर अवशात् "रक्षा मंगल" "पल्लाण्डु पल्लाण्डु" (बहु वर्ष, बहु वर्ष जय विजय रह) गाने लगे ।

पॅरियाळ्वार तिरुमॉळि का प्रथम दशक "तिरुप्पल्लाण्डु" है । चतुः सहस्र दिव्य प्रबंध का आरंभ उक्त पाशुरम से होता है । इनकी गीतियों में श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है । इन्होंने 19 दिव्य क्षेत्रों का मंगलाशासन किया है, जिसमें तिरुक्कणड्ङकडिनगर (उत्तर प्रदेश) भी एक है । इनका दृढ विचार है कि भगवान की सेवा एवं कैंकर्य ही परम पुरुषार्थ है । ये श्रीविल्लिपुत्तूर में निवास करते हुए भगवान को पुष्पमाला और गीतमाला समर्पण के कैंकर्य में लगे थे । आंडाळ (गोदा देवी) इनकी पोष्य पुत्री है । यह क्षेत्र (हिमालय पर्वत) भागीरथी एवं अलकनंदा का संगम स्थल गंगा तट पर स्थित है । इसको श्रीखंडक्षेत्र भी कहते हैं ।

भगवान का नाम : पुरुषोत्तम्   माताजी का नाम : पुण्डरीक वल्लि

## परियाळ्वार तिरुमाळि
## तिरुक्कण्डङ्कडिनगर

तंगैयै मूक्कुम् तमैयनैत् तलैयुम्
  तडिन्द एम् दाशरति पोय्
एङ्गुम् तन् पुहळा इरुन्दु अरशाण्ड
  एम् पुरुडोत्तमन् इरुक्कै
गंगै गंगै एन्ड्र वाचकत्ताले
  कडु विनै कळैन्तिडुहिर्कुम्
गंगैयिन् करैमेल् कैतोळ निंड्र
  कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे ॥   (1)

अखिल जगत के माता-पिता एवं रक्षक, हमारे उपास्य अथवा ध्येय दिव्य दंपति लक्ष्मीनारायण हैं। हम सब भक्तिपूर्वक उनकी प्रणति करते हैं। मर्यादा एवं नियम का पालन न करते हुए, उनके प्रति नियमविरुद्ध व्यवहार करने वाले को अवश्य दंड भोगना पडता है।

इसके ज्वलंत उदाहरण हैं - शूर्पणखा और उसका बड़ा भाई रावण।

शूर्पणखा ने सीता के स्थान पर अपने को रखना चाहा और रावण ने श्री रामचन्द्रजी का स्थान लेना चाहा। फल स्वरूप शूर्पणखा के कान और नाक कटे और रावण के दसों सिर कटे एवं वह धराशायी हुआ - श्रीरामचन्द्रजी के बाणों से। श्रीरामचन्द्र के आदेश के अनुसार लंकामें विभीषण का राजतिलक किया गया। उसके बाद वहाँ से सीता के साथ अयोध्या वापस पहुँचकर अभिषिक्त हुए और बडे लंबे काल तक राज्य का शासन किया। उस पुरुषोत्तमन का निवास स्थान हिमालय पर्वत में श्री खंड नामक उत्कृष्ट क्षेत्र (तिरुक्कण्डङ्कडिनगर) है। श्री रामचन्द्रजी भक्तों को दर्शन देते हुए यहां विराजमान हैं, जो गंगा के किनारे है।

''गंगा-गंगा'' के उच्चारण मात्र से ही सभी पाप दूर हो जाते हैं। यह गंगा की महिमा है। यहां भक्तजन पहुँचकर गंगा स्नान के बाद अंजलि बद्ध होकर भगवान के चरणों में नतमस्तक होते हैं। दर्शन का आनन्द लेते हैं।

आळ्वार इन सूक्तियों में श्रीखंड क्षेत्र में विराजमान भगवान (पुण्डरीकवल्लि समेत पुरुषोत्तम्) के परत्व, एवं सौलभ्य, गंगा नदी की पवित्रता एवं महानता का अनुभव करते हैं।

चलम् पादि उडम्बिन् तळल् उमिळ् पेळ्वाय्च्
चन्दिरन् वङ्कदिर् अञ्ज,
मलर्न्दु एळुन्दु अणवुम् मणिवण्ण उरुविन्
माल् पुरुडोत्तमन् वाळ्वु:
नलम् तिहळ् चडैयान् मुडिक्कान्डै मलरुम्
नारणन् पादत्तुळायुम्
कलन्दु इळि पुनलाल् पुहर् पडु गंगैक्
कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे। (2)

आळ्वार भगवान के सर्वव्यापकत्व और रक्षकत्व का अनुभव करते हैं। भगवान के संकल्प के अनुसार शीत किरणवाला चन्द्र और प्रचण्ड उष्ण किरणवाला सूर्य दोनों भगवान की आज्ञा से इस भूमंडल की, अपने २ सेवा कार्य में लगे हैं। वामन रुपी भगवान जब तिरुविक्रमन बने, तो उनका श्री विग्रह वर्द्धित होकर तीनों लोकों में व्याप्त हुआ। सभी देवतागण इसे देखकर आश्चर्य चकित ही नहीं, भयभीत भी होने लगे। ऐसे व्यामोहक, नील मेघ श्यामल मणिवर्ण के रूप वाले प्रभु पुरुषोत्तम, गंगा के तट पर श्रीखंड क्षेत्र में विराजमान हैं। यह एक उत्कृष्ट नगर है। गंगाजी की पवित्र धारा भगवान तिरुविक्रम् के अभिषिक्त चरण (ब्रह्मा द्वारा) से निकली और उस गंगा का प्रवाह रक्तवर्ण से उद्भासित जटाधर (श्रीशिवजी) के सिर से होकर बहती है। इस कारण श्रीखंडक्षेत्र शिवजी के सिर पर धारण किए गए कान्डै पुष्प, तिरुविक्रम के चरणों में समर्पित तुलसी से युक्त होकर भूमंडल में गिरनेवाले जल की कांति से संपन्न है।

अदिर् मुहम् उडैय वलम्पुरि कुमिळ्त्ति
अळल् उमिळ् आळिकोण्डु एरिन्दु अंगु
एतिर् मुह असुरर् तलैहळै इडरुम्
एम् पुरुडोत्तमन् इरुक्कै:
चतुमुहन् कैयिर् चतुप्पुयन् ताळिर्
शंकरन् चडैचिनिर् तंगिक्
कदिर् मुहम् मणिकोण्डु इळि पुनर् गंगै क्
कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे॥ (3)

आळ्वार भगवान के दिव्यायुधों की महिमा गाते हैं । भगवान का बजाया पाञ्चजन्य की शंख-ध्वनि सुनते ही विरोधी लोग (असुर लोग) भयभीत हो जाते हैं । गीता में भी इसका उल्लेख है कि भगवान श्री कृष्ण की शंख-ध्वनि ने कौरव पक्षवालों के हृदय विदीर्ण कर दिए । जब असुरों ने उनका विरोध किया तब पाञ्चजन्य शंख बजाकर, अग्नि उगलनेवाले अपने चक्रायुध का प्रयोगकर, आक्रमण करनेवाले, असुरों के सिरों को गिराकर, ठोकर मारनेवाले पुरुषोत्तम का निवास स्थान गंगा किनारे श्रीखंड नामक उत्कृष्ट क्षेत्र है । गंगा जिसका निर्मल जल, चतुर्मुख ब्रह्मा के हाथ में, (अभिषेक के वक्त) फिर चतुर्भुज विष्णु के चरणों में, उसके बाद शंकर भगवान की जटा में रुककर, इस भूतल पर उतरकर, अपने स्रोत में कांतियुक्त नीलरत्न मणियों को बहाकर लाता है - भूलोक वासियों के लिए । गंगा की उत्कृष्टता है कि उसका प्रत्यक्ष एवं प्राकृतिक संबन्ध ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों से है ।

इमैयवर् इरुमान्दु इरुन्दु अरशाळ,
 एर्टु वन्दु एंदिरपारु शेनै,
नमपुरम् नणुह नान्दकम् विशिरुम्,
 नम् पुरुडोत्तमन् नहर्दान्:
इमवन्दम् तॉडङ्गि इरुङ्कडल् अळवुम्
 इरु करै उलहु इरैत्तु आडक्
कमै उडैप् परुमैक् गंगैयिन् करै मेल्
 कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे ॥ (4)

देवासुर युद्ध तो चलता रहता है । चूंकि देव सात्विक हैं, भगवान उनके पक्ष में है । भगवान के अनुग्रह से देवों का राज्य सुचारु रूप से चल रहा है । ईर्ष्यालु असुर कभी-कभार इनपर आक्रमण करते रहते हैं । ऐसे समय भगवान अपने नांदक नामक खड्ग से असुरों का सिर काट देते हैं । ऐसे भक्तवत्सल भगवान पुरुषोत्तमन् गंगा के किनारे पवित्र श्रीखंड क्षेत्र में विराजमान हैं ।

गंगा की बडी महिमा है । अपना उद्गम स्थान हिमालय पर्वत से लेकर, समुद्र के समान बहनेवाली विशाल नदी के दोनों तटों पर कई पुण्य क्षेत्र स्थित हैं । दोनों किनारों पर भक्तगण बडी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ स्नान करते हैं, जिससे बडा कोलाहल है । गंगा नदी में स्नान करनेवाले लोगों के पापों को दूर करने की क्षमता (गंगा नदी) रखती है, जिसके किनारे श्रीखंड क्षेत्र स्थित है ।

उऴुवदु ओर् पडैयुम् उलक्कैयुम् विल्लुम्
ऑण् शुडर् आऴियुम् शङ्गुम्
मऴुवोडु वाऴुम् पडैक्कलम् उडैय
माल् पुरुडोत्तमन् वाऴ्वु:
एऴुमैयुम् कूडि ईण्डिय पावम्
इरैप्पॊऴुदु अऴविनिल् एल्लाम्
कऴुविडुम् पॆरुमैक् गंगैयिन् करै मेल्
कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे ॥ (5)

इसमें आऴ्वार भगवान के विभिन्न अवतारों में उनके दिव्य आयुधों का अनुभव करते हैं। बलराम मूसल एवं हलायुधधारी हैं। यज्ञ-भूमि जोतने में भी हल काम आता है और कृषि-कार्य के लिए भी यह एक आवश्यक साधन है। परशुराम का आयुध परशु है। इन आयुधों में उत्पादकता के साथ रक्षकत्व का गुण भी पाया जाता है। श्री रामचन्द्र धनुषधारी हैं। शंख, चक्र, गदा, नांदक, (खड्ग) शार्ङ्ग धनुष आदि आयुधों से भगवान शोभायमान हैं। इस प्रकार इस सूक्ति में भगवान के अष्ट-भुज रूप का और अष्टायुध का वर्णन है। भक्तों के रक्षण और दुष्टों के हनन के लिए भगवान के हाथों मे हल, मूसल, धनुष, उज्जवल सुदर्शन चक्र, शंख, परशु, खड्ग जैसे दिव्यायुध हैं। ऐसे भगवान गंगा तट पर श्रीखंड क्षेत्र में विराजमान हैं। गंगा, जिसकी महिमा ऐसी है कि वह पापनाशिनी है, जो इसमें स्नान करनेवाले श्रद्धालुओं के जन्म जन्मान्तरों से संचित पाप राशि को क्षणमात्र में धोकर, उनका उद्धार करती है।

तलैप्पॆयदु कुमुरिच् चलम् पॊदि मेहम्
चलचल पॊऴिन्तिडक् कण्डु
मलैप् पॆरुम् कुडैयाल् मरैत्तवन् मदुरै
माल् पुरुडोत्तमन् वाऴ्वु:
अलैप्पु उडैत् तिरैवाय् अरुन्दव मुनिवर्
अवपिरदम् कुडैन्दु आडक्
कलप्पैहळ् कॊऴिक्कुम् गंगैयिन् करै मेल्
कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे ॥ (6)

कृष्णावतार की गोवर्धन लीला का प्रसंग है, जब गोकुल के गोपों ने श्री कृष्ण की सलाह के अनुसार हर वर्ष अनुष्ठित इन्द्र की पूजा के बदले गोवर्धन

पर्वत की पूजा की। इससे क्रुद्ध होकर इन्द्र ने मेघों को, गोकुल को घोर वर्षा द्वारा नष्ट करने की आज्ञा दी। मेघ एकत्रित होकर गरज-गरजकर मूसलधार वर्षा करने लगे।

गोप गोपियों के रक्षक भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को ही छाता बनाया और गाय, गोप, गोपी सब उसके नीचे सुरक्षित रहे। इस तरह गोकुल के सभी लोग एवं प्राणियों की रक्षा की। (इन्द्र का घमंड दूर हुआ। अपनी गलती पर पश्चात्ताप करते हुए श्री कृष्ण के दर्शन कर क्षमा याचना की।) ऐसे पराक्रमी हमारे प्रभु पुरुषोत्तमन् का गंगा किनारे विराजमान स्थान श्रीखंड क्षेत्र है।

इस क्षेत्र में मुनि-गण एवं तपस्वी निवास करते हैं, जो भगवान की उपासना के रूप में समय-समय पर यज्ञ आदि करते हैं। यज्ञांत में गंगा की उछलनेवाली तरंगों में, कठिन तपस्या करनेवाले मुनिजन यज्ञांत स्नान (अवभृथ स्नान) करते हैं। तब गंगा का प्रवाह याग भूमि को जोतने में उपयुक्त हल समूह को बहाकर लाता है।

विऱ् पिडित्तु इरुत्तु वेऴ्त्तै मुरुक्कि
  मेल् इरुन्दवऩ् तलै शाडि
मऱ् पारुदु एऴ्प् पायन्दु अरैयऩै उदैत्त
  माल् पुरुडोत्तमन् वाऴ्वु:
अऱ्पुदम् उडैय ऐरावद मदमुम्
  अवर् इळम्पडियर् ऑण् चान्दुम्
कऱ्पक मलरुम् कलन्दु इऴि गंगैक्
  कण्डम् एन्ऱुम् कडिनहरे ॥ (7)

अक्रूर के द्वारा कंस का निमंत्रण पाकर, श्री कृष्ण और बलराम, नन्द आदि गोपों के साथ धनुष्यज्ञ देखने कंस की राजधानी मथुरा चले। मथुरा पहुंचने पर श्री कृष्ण कंस की आयुधशाला में पहुंचकर, सब के देखते-देखते, धनुष को उठाकर खींचा और एक क्षण मात्र में उसके दो टुकडे कर डाले। धनुष यज्ञ के मंडप में कुवलयापीड हाथी के दांत उखाडकर, उन्हीं से हाथी और महावतों का काम तमाम् कर दिया। विरोध में खडे हुए चाणूर और मुष्टिक आदि मल्लों से युद्ध कर, खेल-खेल में, सब को धराशायी कर दिया। उछलकर, ऊंचे सिंहासन पर आसीन कंस पर कूदकर पहले उनके मुकुट को गिराया और केश पकडकर उसे लात मारकर नीचे गिराया। स्वयं उस पर कूद पडे जिससे तत्काल

कंस की मृत्यु हो गई। जगत के समस्त चेतन अचेतनों के स्वामी और रक्षक, प्रभु पुरुषोत्तमन् का निवास गंगा किनारे श्रीखंड नामक उत्तम क्षेत्र है। गंगा में तरुण शरीरवाली अप्सराएं स्नान करती हैं। वहां गंगा में अद्भुत ऐरावत का मद जल, अप्सराओं के शरीर को शोभायमान करनेवाला चन्दन और शोभा बढानेवाले कल्प-वृक्ष के पुष्प आदि सब को बहाकर गंगा की धारा भूमण्डल पर उतरती है। श्रीखंड क्षेत्र देवलोक के बराबर है।

तिरै पारु कडल् शूऴ् तिण्मदिर् तुवरै
वेन्दु तन् मैत्तुनन् मार्क्काय्
अरशिनै अविय अरशिनै अरुळुम्
अरि पुरुडोत्तमन अमर्वु ;
निरै निरैयाह नेडियन यूपम्
निरन्तरम् ओऴुक्कु विट्टु इरण्डु
करै पुरै वेळ्विप् पुहै कमऴ् गंगैक्
कण्डम् एन्नुम कडिनहरे ॥ (8)

श्री कृष्ण ने द्वारका को अपनी राजधानी बनायी, जो सागरों से घिरा दृढ प्राकारवाला है, जिसके किनारे पर बराबर तरंगें उठकर ठकराती हैं। द्वारकापति ने अपने आश्रित पांडवों का पक्ष लेकर युद्ध में उनके दुश्मनों का नाशकर, अपने पक्ष के पांडवों को राजत्व प्रदान करनेवाले हरि पुरुषोत्तमन् का निवास गंगा के किनारे श्रीखंड क्षेत्र है। गंगा, जिसके दोनों किनारों पर, ऋषि मुनिगण बराबर यज्ञ आदि का अनुष्ठान करते हैं। इसलिए वहां के विशाल यज्ञ-शालाओं में ऊँचे यूप-स्तंभ लगातार क्रमबद्ध स्थापित हैं और यज्ञों का धूप दोनों किनारों पर चारों तरफ व्याप्त होने से, चारों दिशाएं सुगन्धित हैं।

वड दिशै मदुरै चालक्किरामम्
वैकुन्दम्, तुवरै, अयोत्ति
इडम् उडै वदरि, इडवहै उडैय
एम् पुरुडोत्तमन् इरुक्कै:
तडवरै अदिरत् तरणि विण्डु इडियत्
तलैप्पर्टिक् करै मरम् चाडिक्
कडलिनैक् कलङ्गक् कडुत्तु इऴि गंगैक्
कण्डम एन्नुम् कडिनहरे ॥ (9)

इस सूक्ति में आळ्वार द्वारा मंगलाशासित कई दिव्य क्षेत्रों का अनुसन्धान है, जहां भगवान विराजमान होकर भक्तों पर अनुग्रह करते हैं। अर्थात् उत्तर में मथुरा, शालग्राम्, श्री वैकुंठ, द्वारका, अयोद्धि, बदरी विशाल जैसे क्षेत्रों के सान्निध्य बढानेवाले वही पुरुषोत्तमन् श्रीखंड क्षेत्र में विराजमान हैं, जो गंगा के किनारे स्थित है। गंगा की प्रचंड धारा आसपास के ऊंचे पर्वतों को कंपाते, धरातल को छेदते, तट के वृक्षों को गिराते, उछलते हिमालय से समतल पर उतरकर प्रचण्ड वेग से समुद्र की ओर बहती है - संगम पर समुद्र क्षुब्ध हो उठता है। (यह भी स्मरणीय है कि भगीरथ के प्रयत्न से, तपस्या से, गंगा भूमंडल में उतरी।)

मूंड्रु एऴुत्तु अदनै मूंड्रु एऴुत्तु अदनाल्
मूंड्रु एऴुत्तु आक्कि मूंड्रु एऴुत्तै
एन्ड्रु कॉण्डु इरुप्पार्क्कु इरक्कम् नन्गु उडैय
एम् पुरुडोत्तमन् इरुक्कै:
मूंड्रु अडि निमिर्त्तु मूंड्रिनिर् तोंड्रि
मूंड्रिनिल् मूंड्रु उरु आनान्
कान् तडम्पॉऴिल् शूऴ् गंगैयिन् करै मेल्
कण्डम् एन्नुम् कडिनहरे ॥ (10)

तीन अक्षरवाले उस प्रणव को (प्रणव में तीन अक्षर हैं (अ, उ और म् अकार, उकार मकार)

तीन अक्षरवाले उस-(निरुक्त नामक ग्रन्थ में कथित प्रक्रिया) से (तीन पदात्मक) (छः वेदांगों में से एक निरुक्त है- निरुक्त शब्द में तीन वर्ण स्वर हैं)

तीन अक्षर बना मानकर (अतः तीन अक्षर तीन पद माने जाते हैं) प्रणव का एक-एक अक्षर, एक अर्थ बोधक पद माना जाता है)

उन तीन अक्षरों को, भाव को मन में धारणकर, ध्यान करनेवालों पर अधिक कृपा करनेवाले पुरुषोत्तमन का निवास सुगन्धित सरोवरों और हरे भरे उपवनों से परिवृत एवं उत्कृष्ट श्री खंड क्षेत्र है, जो गंगा के किनारे स्थित है।

(तीन अक्षरों को, मन में धारण करना - पहले ही बताया गया है कि प्रणव के तीन अक्षर तीन पद माने जाते हैं - प्रथम पद 'अ' का यह अर्थ बताया जाता है कि भगवान ही कारण, स्वामी और रक्षक है। द्वितीयपद 'उ' का अर्थ

है, जीव परमात्मा का दास है। तृतीय पद 'म्' का अर्थ है - जीव ज्ञान स्वरूप है - शरीर से भिन्न-अतिरिक्त है।)

गंगा उस भगवान की सृष्टि है जो प्रणव को तीन पदो में वर्द्धित कर

(प्रणव से अष्टाक्षर मंत्र (मूलमंत्र) वर्द्धित हुआ जिसमें तीन पद है ॐ; नमः; और नारायणाय)

जीव संबन्धी तीन गुणों को प्रकाशित कर,

(जीव संबन्धी तीन गुण/अर्थात्)

(1) जीव परमात्मा से रक्ष्य है -

(2) शरणागति ही जीव के निस्तार का उपाय है।

(3) परमात्मा की सेवा ही जीव का प्राप्य पुरुषार्थ है।

उन गुणों के तत्प्रति संबन्धी (तीन अर्थ-परमात्मा ही जीवात्मा का रक्षक है, वही उपाय है और वही सेवनीय है)

तीन गुणों से तीन रूपवाले हुए। (तीन रुपवाले - परत्व से युक्त होना, सौलभ्य से युक्त होना, और भोग्यता से युक्त होना)

(पूर्वजों द्वारा ये अर्थ अष्टाक्षर मंत्र में प्रतिपादित हैं और प्रणव उस मंत्र का प्रथम तथा मुख्य पद है। पुरुषोत्तमन् नारायण का निवास सुगंधित विशाल बगीचों से परिवेशित गंगा के किनारे श्रेष्ठ श्री खंड क्षेत्र है।

पान्गु आलि गंगैक् करै मलि कण्डत्तु
उरै पुरुडोत्तमन् अडि मेल्
वंड्कलि नलिया विल्लिपुत्तूरक् कोन्
विट्टुचित्तन् विरुप्पु उर्दूत्
तंगिय अन्बाल् चय् तमिळ्-मालै
तंगिय ना उडैयारक्कुक्
गंगैयिर् तिरुमाल् कळलिणैक्कीळे
कुळित्तिरुन्द कणक्कु आमे ॥ (11)

**प्रचण्ड प्रवाहवाली और उछलती तरंगवाली गंगा के किनारे पवित्र एवं श्रेष्ठ श्रीखंड क्षेत्र स्थित है, जहां पर विराजमान पुरुषोत्तमन् के चरणों में क्रूर कलि से अप्रभावित भक्त पुरुष श्रीविल्लिपुत्तर के स्वामी श्री विष्णुचित्त ने (पेरियाळ्वार)**

वांछा से युक्त होकर, स्थिर प्रेम एवं भक्ति से इस पद्यमाला की रचना की। यह जिनकी जिह्वा पर टिकती है, अर्थात् जिनको कंठस्थ है और बराबर इसका पाठ करते हैं, वे अपने स्थान में रहते हुए, सर्वेश्वर भगवान के चरणारविन्दों से संबन्धित गंगा में, स्नान का पुण्य प्राप्त कर, तथा श्रीमन्नारायण के चरणयुगल के मूल में अर्थात् चरणारविन्दों में आसीन रहकर कैंकर्य करनेवाले (सदृश) होकर फल प्राप्त करते हैं। श्रीमन्नारायण के चरणों के कैंकर्य में सतत लगे रहते हैं।

पॆरियाळ्वार के श्रीपादों की जय हो।

## अवतारिका

पूज्य 12 आळ्वारों में तिरुमंगै आळ्वार सबसे कनिष्ठ हैं। वे सातवीं/आठवीं शताब्दी में रहते थे। वे मंगै क्षेत्र के (तंजौर ज़िला, मद्रास राज्य) के नृपति थे। उन्होंने भगवान से ही अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश प्राप्त किया था।

अपने भक्तों को इस संसार में ही भगवत् कैंकर्य का लाभ पहुँचाने भगवान अपना परत्व एवं सौलभ्य दोनों प्रकट करते हुए, सभी दिव्य (मंदिरों में) क्षेत्रों में अर्चारूप में विराजमान होकर भक्तों का अनुग्रह करते हैं। अष्टाक्षर मंत्र से यह स्पष्ट है कि हमारे स्वामी लक्ष्मीपति सर्व सुलभ हैं।

आळ्वारों के द्वारा मंगलाशासित 108 दिव्य क्षेत्रों में तीन दिव्य क्षेत्र पवित्र हिमालय पर्वत में स्थित हैं।

इनमें से दो दिव्य क्षेत्रों का तिरुमंगै आळ्वार ने मंगलाशासन किया है।

(1) तिरुप्पिरिदि (जोषीमठ)

(2) तिरुवदरि/तिरु बदरिकाश्रम्

यहां यह उल्लेखनीय है कि श्रीमन्नारायण ने बदरिकाश्रम में तपस्या की और स्वयं गुरु एवं शिष्य होकर अष्टाक्षर मंत्र का प्रकाशन किया। उपदेश दिया।

तिरुमंगै आळ्वार युवावस्था में ही श्री बदरी नारायण के दर्शन करने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर बदरिकाश्रम के लिए निकल पडे। बदरिकाश्रम जाते हुए पहले हिमालय पर्वत में स्थित तिरुप्पिरिदि क्षेत्र पहुंचते हैं। वहां के भगवान का मंगलाशासन करते हैं।

आइए, पहले आळ्वार के साथ हम भी तिरुप्पिरिदि क्षेत्र का अनुभव करेंगे।

# तिरुप्पिरिदि (जोषी मठ)
# पॅरिय तिरुमॉळि (बृहत श्री सूक्ति)
# तिरुमंगै आळ्वार

भगवान का नाम : परमपुरुषन्　　　　माताजी - परिमल वल्लित्तायार

वालि मा वलत्तु ऑरुवन्दु उडल् कॅड
　वरि शिलै वळैवित्तु अंडु
एलम् नारु तण् तडम् पॉळिल् इडम् पॅर
　इरुन्द नल् इमयत्तुळ्
आलि मा मुहिल् अदिर्-तर, अरु वरै
　अहड्डु उर, मुहड्डु एरि
पीलि मा मयिल् नडम् शॅयुम् तडञ् शुनैप्
　पिरिदि शॅन्डु अडै नॅञ्जे ।　　　　(1)

रामावतार में अपने आश्रित सुग्रीव का दुःख दूर करने एवं उसकी रक्षा के लिए, (जो वालि से पीडित एवं परेशान था), अपना सुन्दर धनुष खींचकर तीर चलाया, जिससे महाबलवान वालि का शरीर तो नष्ट हुआ । हां ! इससे वालि और सुग्रीव दोनों का उद्धार हुआ ।

वही प्रभु, करुणासागर, पुरुषोत्तमन् सुगन्ध से भरे विशाल उपवनों से व्याप्त दिव्य पिरिदि क्षेत्र में प्रसन्न हो विराजमान हैं।

आळ्वार अपने मन से कहते हैं - (चिंतन् है) हे (मेरे) मन् - उस पिरिदि क्षेत्र में पहुँच जाओ।

(अर्थात् अब वहां पहुँच गए हैं - मन से एवं तन से)

हिमालय पर्वत में स्थित वह स्थान पिरिदि परमपुरुष का पवित्र निवास है, जहां जल भरे काले बादल गरजते हैं, तो सुन्दर पंखवाले बडे २ मयूर, उदर रगडते हुए दुरारोह पर्वत शिखरों पर चढकर, आनन्द मगृन होकर नर्तन करते हैं, और यह स्थान बडे-बडे झरने और विशाल जलाशयों से व्याप्त है । यह हमारा पोषण करनेवाला पवित्र स्थान है ।

कलङ्ग माक्कडल् अरिकुलम् पणिशॅय,
　अरु वरै अणै कट्टि,
इलङ्गै मानहर् पॉडि शेय्द अडिहळ्-ताम्
　इरुन्द नल् इमयत्तु

विलङ्गल् पोल्वन् विरल् इरुम् शिनत्तन्
　　वेळङ्गळ् तुयर् कूर,
पिलम् कॉळ् वाळ् एयिट्रु अरि-अवै तिरितरु
　　पिरिदि शन्ड्रु अडै नॅञ्जे । (2)

इस सूक्ति में सुग्रीव और दूसरे वानरों की सेवा और लंका नाश का विवरण है।

समुद्र राजा ने श्री रामचन्द्र के चरणों में शरणागत होकर, अपने ऊपर सेतु बनाना मानकर, यह सलाह दी कि सेतु "नल" के द्वारा बनाया जाए। नल को उनके पिताजी से वर प्राप्त है कि उनके हाथ से पानी में डाले जानेवाले पत्थर पानी पर तिरेंगे। अब नल और सभी वानर सेतु-निर्माण के कैंकर्य में लग गए। शीघ्र ही नल के द्वारा लंबा सेतु बनकर तैयार हुआ। इससे अक्षोभ्य समुद्र भी क्षुब्ध होकर उद्वोलित हो उठा।

सेतु से होकर श्री रामचन्द्रजी के साथ सब लंका पहुंचे और विस्तृत लंका नगर, एवं रावण सहित असुरकुल को चकनाचूर कर नाश किया। वे ही हमारे स्वामी रघुसिंह, पवित्र हिमालय के पिरिदि क्षेत्र में विराजमान हैं। पवित्र हिमालय क्षेत्र की गुफाओं में पर्वत तुल्य ताकतवाले और क्रोधी हाथियों को पीडा पहुँचानेवाले, चमकीले एवं तीखे दांतवाले सिंह रहते हैं। यह स्पष्ट है कि यह घना अरण्य क्षेत्र है और तपस्वियों का निवासस्थान है। हे मन ! संसार बंधन से मुक्त होकर पिरिदि पहुंचो।

तुडि कॉळ् नुण् इडैच्-चुरि कुळल् तुळङ्गु एयिट्रु
　　इळङ् कॉडि तिरत्तु, आयर्
इडि कॉळ् वॅम् कुरळ् इन् विडै अडर्त्तवन्
　　इरुन्द नल् इमयतु,
कडि कॉळ् वेंगैयिन् नरु मलर् अमळियिन्
　　मणि अरै मिशै वेळम्
पिडियिनोडु वण्डु इशै शोल, तुयिल्कॉळुम्
　　पिरिदि चॅन्ड्रु अडै नॅञ्जे । (3)

कृष्णावतार का एक प्रसंग है। अहीरों के प्रधान कुम्बन की पुत्री नप्पिन्नै (नीला देवी) के अंश रूप में पैदा हुई थी। वह कुटिल कुंतला चमकीले दांतवाली, डमरु के समान सूक्ष्म कटिवाली, कोमल लता जैसी कन्या थी।

नप्पिन्नै के पिता ने यह कन्या शुल्क घोषित किया था कि उसीके साथ नप्पिन्नै का विवाह होगा जो मेघ-गर्जन के समान भयानक शोरगुल मचानेवाले, किसी के वश में न आनेवाले, असुर वेग के सात वृषभों को काबू में लाएगा और नाथ लेगा। उसी के अनुसार श्री कृष्ण ने बिना सधाए हुए, सात वृषभ समूह को, खेल-खेल में ही, नाथ लिया और उनका घमंड चूर-चूर कर दिया। वे ही भगवान उत्तम हिमालय की पिरिदि में विराजमान हैं, जहां सुन्दर माणिक्क शिलाओं पर सुगन्ध से भरे ''वेंगै'' वृक्ष के सुरभित पुष्प-शय्या पर हाथी अपनी प्रिया के साथ, भ्रमरों के मधुर गीत का आनन्द उठाते हुए सोते हैं। हे मन ! अपना मोह छोडकर पिरिदि पहुंचो।

मर्‌म् काळ् आळ्-अरि उरु एन वरुवर,
   अरुवन्दु अहल् मार्‌वम्
तिरन्दु वानवर् मणि मुडि पणितर
   इरुन्द नल् इमयत्तुळ्,
इरङ्गि एनङ्गळ् वळै मरुप्पु इडन्तिडक्
   किडन्दु अरुहु एरि वीशुम्
पिरङ्गु मा मणि अरुवियोडु इळितरु
   पिरिदि शेन्डु अडै नेञ्जे ! (4)

यदुसिंह और रघुसिंह के बाद इस पद में, नृसिंह का उल्लेख है। कुपित नृसिंह रूप के उल्लेख मात्र से ही कंपायमान भयानक नृसिंहावतार लेकर भगवद्वेषी अनन्य वीर हिरण्य के विशाल वक्ष को जिन्होंने चीर डाला, वही भगवान पिरिदि क्षेत्र में संपूर्ण वैभव सहित विराजमान हैं।

उस वक्त की तरह अब भी देवगण पिरिदि पहुंचकर, अपने मणिमय मुकुटधारी सिर नवाते हैं, जहां जंगली शूकर हिमालय की घाटियों में उतरकर अपने वक्र दंतों से पत्थर फोड़ते हैं। उन पत्थरों के बीच से निकले अंगारे जैसे चमकीले उज्ज्वल रत्न आदि वहां के पहाडी झरनों के प्रवाह में बह आते हैं। हे मन ! पिरिदि पहुंच जाओ।

करै शेय् माक्-कडल् किडन्तवन् कनै कळल्
   अमरर्‌हळ् ताळुदु एत्त,
अरै शेय् मेकलै अलर्‌महळ् - अवलोडुम्
   अमर्‌न्द नल् इमयत्तु

वहै र्शय् माक्कळिरु इळ वंदिर् वळर् मुळै
अळै मिहु तेन् तोय्त्तुप्,
पिरश वारि तन् इळम् पिडिक्कु अरुळ्र्शयुम्
पिरिदि र्शन्ड्र अडै नेञ्जे ॥ (5)

भगवान परवासुदेव अपने वैंकुठ से निकलकर देवों को अपने दर्शन सुलभ करने, क्षीर सागर में व्याप्त होकर, शेष शय्या पर शयन करते हैं। देवगण उनके सुन्दर चरणों की प्रणति कर स्तुति करते रहते हैं। वे ही भगवान कमर में (स्थित) मेखला से भूषित पद्मजा के साथ, भूलोक के भक्तों को दर्शन देकर अभय प्रदान करने पिरिदि में विराजमान हैं। जहां पर्वत जैसे बडे-बडे हाथी तरुण बांस से वर्धित नव अंकुरों (बांस के) को तोडकर, उसे झाडियों में प्रसृत शहद में भिगोकर उस मधुयुक्त नव अंकुर को, अपनी तरुण हथिनी को प्रेम पूर्वक देते हैं; खिलाते हैं। हे मन ! पिरिदि पहुंच जाओ।

पणङ्गळ् आयिरम् उडैय नल् अरवु-अणैप्
पळ्ळिकाळ् परमा, एन्ड्र
इणङ्गि वान्वर् मणि मुडि पणितर
इरुन्द नल् इमयत्तु
मणम् काळ् मादवि नेडुङ्काडि विशुम्बु उर
निमिर्न्दु अवै मुहिल् पर्ट्रि
पिणङ्गु पूम् पाळिल् नुळैन्दु वण्डु इशै र्शालुम्
पिरिदि र्शन्ड्र अडै, नेञ्जे (6)

भूलोक वासी तो अपने प्राकृत शरीर से क्षीर सागर पहुंच नहीं पाएंगे। भूलोक वासियों के अनुकूल, भगवान हिमालय पर्वत में स्थित पिरिदि में पधारकर विराजमान हैं। क्षीर सागर के दर्शन से तृप्त न होकर, देवतागण एकत्रित होकर, भगवान के दर्शन करने पिरिदि भी पहुंच जाते हैं। "सहस्र फणवाले उत्तम शेष शय्या पर शयन करनेवाले परम" ! कहकर भगवान की स्तुति करते हैं। सहस्रनामवाले सर्वेश्वर का आपादचूड दर्शन कर, अपने मणिमय किरीट युक्त सिरों से प्रणति करते हैं। यहां भगवान अपने वैभव पूर्ण अर्चा-रूप में विराजमान होकर भक्तों को दर्शन देते हैं।

देवताओं के द्वारा भी प्रशंसित इस क्षेत्र के सुगन्धित माधव पुष्पों से लदी लंबी लताएं बढकर आकाश के मेघ-मंडल तक पहुंच जाती हैं। वहां मेघ को

(लता के बढने के लिए लगाए हुए उपघनम् सदृश) पकडकर आकृष्ट करती हैं। हवा में चलायमान मेघों के संघर्ष से पानी की बूंदे पडती हैं। उन पुष्पित उपवनों में प्रविष्ट होकर मधुकर सुन्दर गीत गाते हैं। अर्थात् वे भी भगवान का गुण-गान करते हैं। हे मन ! ऐसे हिमालय में स्थित पिरिदि पहुंच जाओ।

कार् काॅळ् वङ्गैहळ् कन वरै तऴुविय
करि वळर् काॅडि तुन्रिप्
पोर् काॅळ् वन्गैहळ् पुन वरै तऴुविय
पूम् पोऴिल् इमयत्तुळ्
एर् काॅळ् पून्चुनैत् तडम् पडिन्दु इन् मलर्
एट्टुम् इट्टु, इमैयोर्हळ्
पेर्हळ् आयिरम् परवि निन्डु अडि ताॅऴुम्
पिरिदि चेन्डु अडै नेञ्जे (7)

पिछले पद में आऴ्वार भगवान के शेषशायी रूप का अनुभव करते थे। अब देवताओं के द्वारा सहस्रनामों से भगवान की स्तुति का उल्लेख है।

इस क्षेत्र की विशाल घनी ढालों में वेंगै वृक्षों की बहुलता है जो बादलों को छूते हैं जिसमें काली मिर्च की लताएं लपेटित हैं। इन शिखरों के वन प्रदेश में आपस में लडनेवाले झुंड के झुंड भयंकर चीते घूमते हैं। आसपास सुन्दर उपवनवाले हिमालय पर्वत में स्थित पिरिदि क्षेत्र में भगवान विराजमान हैं, जहां देवतागण सुन्दर पुष्पों से भरे झरनों के तालाबों में स्नान कर उत्तम जाति के परिमल युक्त अष्ट विध पुष्पों को (शरीर के आठ अंग हैं, साष्टांग प्रणाम करते हुए समर्पण) भगवान के पादारविन्दों में, सहस्रनाम का पाठ करते हुए (पुष्पांजलि) समर्पित करते हैं। हे मन ! इस प्रकार देवताओं से पूजित पिरिदि में पहुंच जाओ।

इरवु कूर्न्दु, इरुळ् पेरुहिय वरै मुऴै
इरुम् पशि - अदु कूर,
अरवम् आविक्कुम् अहन् - पाॅऴिल् तऴुविय
अरुवरै इमयत्तु ,
परमन्, आदि एम् पनि मुहिल् वण्णन् एन्डु
एण्णि निंड्डु, इमैयोर्हळ्
पिरमनोडु शेन्डु, अडिताॅऴुम् पेरुन्तहैप्
पिरिदि चेन्डु अडै नेञ्जे ॥ (8)

हिमालय पर्वत में, रात अधिक है। घने पेड-पौधों के कारण जहां अंधकार गहरा है और इन अंधकारपूर्ण गुफाओं में रहनेवाले अजगर अधिक भूख के कारण, फुफकारते रहते हैं। मानों अपने फुफकार के द्वारा वे भक्तों को अपनी उपस्थिति की सूचना देकर, अपने निकट आने से सावधान कर बचाते हैं। हे मन! चारों तरफ विशाल उपवनों से परिवेष्ठित, दुर्गम शिखर एवं ढालवाले हिमालय की पिरिदि में पहुंचो ! पिरिदि की महिमा ऐसी है कि परत्व के साथ कारुण्य, सौलभ्य आदि गुणों से पूर्ण परमात्मा का, देवतागण ब्रह्मा को आगे करके ध्यान मग्न होकर "हे सर्वेश्वर ! सर्वकारणभूत ! हमारे शीत जलदवर्ण !" पुकारकर उनके चरणों में प्रणति करते हैं।

ओदि आयिरम् नामङ्गळ् उणर्न्दवर्क्कु
उरु तुयर् अडैयामल्,
एदम् इंड्रि निंड्रु अरुळुम् नम् परुन्तहै
इरुन्द नल् इमयत्तु,
तादु मल्हिय पिण्डि विण्डु अलर्हिंड्रु
तळल् पुरै एंळिल् नोक्कि,
पेदै वण्डुहळ् एंरि एंन वेरुवरु
पिरिदि शंन्ड्रु अडै नंञ्जे (9)

प्रत्येक कर्म का फल भोगना ही पडता है। अर्थात् पापजन्य दुःख भोगे बिना, पाप क्षीण नहीं होते। लेकिन सहस्र नामों का संकीर्तन कर एवं उसका हृदयंगम कर ज्ञान-प्राप्त भक्तों को भगवान किसी प्रकार का दुःख न होने देते हैं। ऐसे विवेकी भक्तों के पाप को पिरिदि के भगवान दूरकर, उन पर किसी क्षति के बिना सतत कृपा करते हैं। यह भक्तों के लिए सुलभ है। शरणागत भक्तों के पाप-जन्य दुःख को दूर कर उनपर अनुग्रह करनेवाले हमारे महाप्रभाववाले भगवान पिरिदि में विराजमान हैं।

उत्तम हिमालय पर्वत में, अधिक पुष्प केसरों से पूर्ण अशोक पुष्पों के विकसित स्थिति में, चिनगारी से उपमित उनकी लाल आभा देखकर, ज्ञान शून्य भ्रमर (प्रतिदिन) भ्रम के कारण, उन्हें आग समझकर पहले तो डर से उसके निकट नहीं पहुँचते। फिर विचारकर, समझ लेते हैं कि यह आग नहीं, पुष्पित अशोक पुष्प समूह है। इस प्रकार विवेकी भक्तों के लिए यहां किसी प्रकार का दुःख या हानि नहीं होती। कोई अभाव की गुंजाइश ही नहीं।

यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक का पुष्पित होना शुभ-शकुन का सूचक है। सभी प्रकार के दुःख दूर होंगे। हे मन ! पिरिदि पहुँचो।

करिय मा मुहिल् पडलंगल् किडन्दु अवै
मुऴंगिड, कळिरु एन्ड्रु
पॅरिय माशुणम् वरै एॅनप् पॅयर्तरु
पिरिदि एॅम् पॅरुमानै
वरि कॅाळ् वण्डु अरै पैम्पोऴिल् मंगैयर्
कलियनदु ऑलि मालै
अरिय इन्-इशै पाडुम् नल् अडियवर्क्कु
अरु विनै अडैयावे। (10)

हिमालय पहाड़ के शिखरों पर, बृहदाकार मेघ-पटल एकत्रित हो गरजते हैं। इसे सुनकर पर्वत गुफाओं में पडे रहनेवाले बृहत आकार के अजगर, घने काले मेघ समूह को (खाने योग्य) हाथी समझकर (उनको निगलने) रेंगते-रेंगते गुफा से बाहर आते हैं। वे हिलनेवाले पहाड जैसे दीखते है। ऐसे पवित्र पिरिदि में विराजमान परमात्मा के प्रति सुन्दर भ्रमरों के नाद से गुंजित एवं हरे भरे उपवनों से परिवेष्टित तिरुमंगै (जनपद) वासियों के प्रधान (तिरुमंगै आळ्वार) ने जो नादमाला रची उन मधुर सूक्तियों को राग एवं ताल सहित मधुर कंठ से गानेवाले श्रेष्ठ एवं विलक्षण भक्तों के पास कोई पूर्व-कर्म के पाप फटक न पाते। भयंकर पाप भी नहीं फटकते।

तिरुमंगै आळ्वार के श्री पादों की जय हो।

# तिरुबदरि - क्षेत्र
## परिय तिरुमाळि (बृहत श्री सूक्ति)
## तिरुमंगै आळ्वार

भगवान का नाम : बदरि नारायण    माताजी का नाम : अरविन्द वल्लि

भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के अनुसार, भगवान के बराबर आचार्य, क्षेत्र, मंदिर एवं तीर्थ का बड़ा महत्व होता है। पहले आचार्य का अनुग्रह प्राप्त करने, एवं क्षेत्र व तीर्थ की प्रणति करने की प्राचीन परंपरा है। आळ्वार तिरुप्पिरिदि क्षेत्र में विराजमान भगवान के मंगलाशासन के बाद, बदरिकाश्रम् में विराजमान भगवान के दर्शनार्थ बदरिकाश्रम् पहुंचते हैं।

मनुष्य की बृद्धावस्था की दयनीय स्थिति बताते हुए, हमें सावधान करते हैं। युवावस्था में ही, तुरन्त बदरि चलने का आह्वान देते हैं।

मुर्ट्र मूत्तु, कोल् तुणैया,
मुन् अडि नोक्कि वलैन्दु,
इर्ट्र काल् पोल्, तळ्ळि, मेळ्ळ
इरुन्दु अंगु इळैया मुन्,
पेर्ट्र ताय् पोल् वन्द पेय्च्चि
परु मुलै ऊडु उयिरै
वर्ट्र वांगि उण्ड वायान्
वदरि वणङ्गुदुमे।    (1)

बदरि में विराजमान भगवान के दर्शन सभी पुरुषार्थ प्रदायक हैं। परम पुरुषार्थ प्राप्त करने का अनुकूल समय युवावस्था है। जीवन में वृद्धावस्था की प्रतिकूलता का विवरण इन पदों में मिलता है। लाठी का सहारा लेना पडता है, कमर झुक जाती है। दृष्टि क्षीण होती है, पैर लडखडाते हैं। चलना दूभर हो जाता है। जगह-जगह बैठना पडता है। लंबी सांस निकलती है। ऐसी दयनीय दशा आने के पहले अविलंब बदरि क्षेत्र पहुँच कर प्रणति करें और भगवान के दर्शन करें।

पूतना जब माता का कपट वेष धारण कर आकर श्रीकृष्ण को दूध पिलाने लगी, तब उस दानवी (पूतना) के पीन स्तन द्वारा अपने मुंह से दूध पीने के बहाने उसके प्राण निःशेष चूस लिए। वही भगवान यहां विराजमान हैं। उस क्षेत्र का नमन करेंगे।

मुदुहु पर्द्रिक् कैत्तलत्ताल्,
मुन् आरु कोल् ऊंड्रि,
विदिर् विदिर्त्तु कण् शुळ्न्डु
मेल् किळै कॉण्डु इरुमि,
इदु एन् अप्पर् मूत्त आरु ! एन्डु
इळैयवर् एशा मुन्
मदु उण् वण्डु पण्कळ् पाडुम्
वदरि वणङ्गुदुमे ॥ (2)

बुढापे में चार पग चलने पर भी कमज़ोरी के कारण पीठ दुःखती है। एक हाथ से पीठ को संभालना पडता है। नीचे गिरने से बचने के लिए लाठी का सहारा लेना पडता है। शरीर कांपने के कारण, अपने वश में नहीं रहता। आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। ज़ोर से खांसते हुए परेशान व्यक्ति की (बृद्धावस्था में) यह जुगुप्सा पूर्ण दशा देखकर ''मेरे बाबा की बृद्धावस्था का यह विचित्र ढंग कैसा है?'' कहकर जवान युवतियों के उपहास करने के यहले वदरी की बन्दना कर कृतकृत्य बनो, जहां मधु पिए मधुकर तान अलापते हैं - अर्थात् मुमुक्षुगण भगवान का गुण-गान करते हुए वहां निवास करते हैं।

वृद्धास्था की दीन दशा बताते हुए, युवावस्था में ही बदरि के दर्शन करेंगे। वहां पहुँचने का आह्वान करते हैं।

उरिहळ् पोल् मेय्न् नरम्बु एळुन्दु,
ऊन् तळर्न्दु उळ्ळम् एळ्हि
नॅरियै नोक्किक् कण् चुळ्ंडु
निंड्रु नडुंगा मुन्
अरिदि आहिल्, नॅञ्जम् ! अन्बाय्
आयिरम् नामम् शॉलि,
वरि कॉळ् वण्डु पण्कळ् पाडुम्
वदरि वणङ्गुदुमे ॥ (3)

वृद्धावस्था की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। बुढापे में शरीर की नसें शिथिल होकर छींके के समान ऊपर निकल पडती हैं। बचा-खुचा मांस भी ढीला पड जाता है। गन्तव्य रास्ता एवं भविष्य के बारे में सोचते, आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। खडे होने में ही थरथराते हैं।

आगे पैर बढाने में असमर्थ पाने के पहले ही, हे मन ! तुम विवेकशील हो तो चलो ! प्रेम से भगवान के सहस्र नामों का पाठ कर, कीर्तन करते बदरि की वंदना करें, जहां सौरभ-युक्त मधुकर रागों का गान करते रहते हैं।

यहां इस बात की ओर संकेत है कि बदरि में भगवान के गुणानुभव करनेवाले भद्र पुरुष एवं भक्तों का निवास है।

पीळै चोरक् कण् इडुङ्गि,
पित्तु एॅऴ मूत्तु, इरुमि,
ताळ्हल् नोवत् तम्मिल् मुट्टि,
तळ्ळि नडवामुन्,
काळै आहि, कंडु मेय्त्तु,
कुंडु एॅडुत्तु अंडु निंड्रान्
वाळै पायुम् तण् तडम् चूऴ्
वदरि वणङ्गुदुमे। (4)

बुढापे में आंखे घंस जाती हैं। आंखों में से मैला निकलता रहता है। पित्त और खांसी भी अधिक होती है। वदरी में झुंड के झुंड भक्तगण भगवान के कैंकर्य में लगे रहते हैं। पैरों के परस्पर टकराने से व्यथित होकर, लडखडाते चलने की वृद्धावस्था आने के पहले ही हम बदरि के दर्शन करें। हम भी भगवान के कैंकर्य में लग जाएं। बदरि ऐसा सुन्दर स्थान है जो शीतल नीर भरे सरोवरों से परिवृत है, जिसमें वाळै (एक प्रकार की मछली) उत्साह के साथ इधर-उधर कूदते रहती हैं।

बाल्यावस्था में ही जो ऋषभ जैसे बलशाली बनकर गाय बछडे चराते थे और उस दिन इन्द्र के कुपित होकर भारी वर्षा से प्रलय मचाते वक्त (कृष्णावतार का प्रसंग) अपनी उंगली में गोवर्धन पहाड धारण कर भारी वर्षा से गोप, गोपी और गायों की रक्षा करनेवाले का निवास स्थान बदरि की प्रणति करें।

पण्डु कामर् आन आरुम्,
पावैयर् वाय् अमुदम्
उण्ड आरुम्, वाऴ्न्द आरुम्,
ओक्क उरैत्तु इरुमि,

तण्डु काला ऊंड्रि ऊंड्रि
तळ्ळि नडवामुन्
वण्डु पाडुम् तण् तुळायान्
वदरि वणङ्गुदुमे ॥ (5)

विषय भोगी अपनी जवानी में विषय भोग में लगे रहते और कोई सत्कार्य नहीं करते। बुढापे में शरीर शिथिल एवं निर्बल हो जाता है। फिर भी विषय वासना नहीं छूटती। पुराकाल में युवतियों के साथ रहने का प्रकार, अधरामृत पान करना एवं उनके संग सुख से जीवन बिताते का प्रकार आदि पुनः स्मरण करके बारबार रटते हैं। एक ओर खांसी सताती है। लाठी के बिना, चलना दूभर हो गया है। उसे टेकटेक लड़खडाते चलते हैं। ऐसी दयनीय दशा (वृद्धावस्था) में पहुंचने के पहले ही बदरि के दर्शन करें; - जहां मधुकरों के गीत से संपन्न शीतल तुलसीमालाधारी प्रभु का स्थान है। जीवन्-भर, सर्वकाल तुलसीमाला से अलंकृत भगवान के कैंकर्य एवं दर्शन योग-क्षेम प्रदायक हैं।

एय्त्त चाल्लाडु ईळै एंगि,
इरुमि, इळैत्तु उडलम्,
पित्तर् पोलच् चित्तम् वेराय्प्
पेशि अयरामुन्
अत्तन्, एन्दै, आदि मूर्ति,
आळ् कडलैक् कडैन्द
मैत्त शादि एम्पेरुमान्
वदरि वणङ्गुदुमे ॥ (6)

पुरानी बातों के स्मरण से चित्त विकल हो जाता है। बोलने में भी कठिनाई होने के कारण मुंह से स्पष्ट शब्द नहीं निकलते। बक-बक करता है। कफ़ और खांसी बढ जाने से काय क्षीण हो जाता है। मानसिक अशांति के कारण पागलों के समान चित्त विकल हो जाता है। बोलते हैं तो थक जाते हैं। ऐसी शारीरिक एवं मानसिक शिथिलता आने के पहले ही बदरि का वन्दन करें। जहां आदि मूर्ति हमारे स्वामी विराजमान हैं। वे हमारे पिता और सर्वस्वामी हैं जिन्होंने मुझे भी अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश देकर अपना लिया। देवों के लिए गहरे सागर का मंथन किया। (देवों को अमृत पिलाया) यहां भगवान के अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य गुण का प्रतिपादन है।

पप्प अप्पर् मूत्त आरु
  पाळप्पदु चीत्तिरळै
ऑप्प ऐक्कळ् पोद उन्द;
  उत् तमर् काण्मिन् ! एन्डु
चॅप्पु नेर् मन् कॉङ्गै नल्लार्
  ताम् चिरियाद मुन्नम्,
वैप्पुम् नङ्गल् वाळ्वुम् आनान्
  वदरि वणङ्ङुदुमे । (7)

बुढापे में भी पुरानी आदतें नहीं छूटती । लाठी टेकते, परिचित गलियों की ओर जाते वक्त, जवानी में परिचित कामिनियां हंसी उडाती हैं । "बाप रे बाप ! बाबा के बूढे हो जाने की अवस्था कितनी जुगुप्सा की बात है । पूय पिंड के समान श्लेष्म निकलता ही रहता है । तुम अपने प्रेमी को देखो । (वह जवानी में इन्हें बहुत पसन्द करती थी - अब दूसरे की कहती है ।) दूसरी स्त्री भी अब नहीं अपनाती । सब मिलकर उनकी हंसी उडाती हैं । यह बुढापा तो दु:खदायक एवं विनाशकारी है । इस तरह कोमल पयोधरवाली कामिनियों के हंसी के पात्र बनने के पहले ही हमारी परम निधि और उपाय और हमारे लिए प्राप्य प्रभु के बदरि को प्रणाम करें । हमें कोई दूसरी कामना नहीं ।

ईशि पोमिन् ; ईंगु इरेल्मिन्;
  इरुमि इळैत्तीर्; उळ्ळम्
कूशि इट्टीर् एन्डु पेशुम्
  कुवळै अम् कण्णियर् पाल्
नाशम् आन पाशम् विट्टु,
  नल् नेरि नोक्कल् उरिल्,
वासम् मल्हु तण् तुळायान्
  वदरि वणङ्ङुदुमे । (8)

हंसी उडाने पर भी वह बूढा चपलता के कारण वहां से जाता नहीं । बैठ जाता है । अब स्पष्ट बोलती हैं - छि: छि: यहां से निकल जाओ । रुको मत ! खांसते-खांसते दुबले-पतले हो गये । मन में लज्जा आती होगी । फिर भी बूढे कामिनियों के प्रति नाश रूपी पाश नहीं छोड़ता । यह पाश, ममता अपने स्वरूप नाश का कारण है ।

अगर सन्मार्ग देखने की इच्छा हो तो, इस प्रकार कड़े शब्द बोलनेवाली सुन्दर नीलोत्पल लोचन वालियों का, आत्मनाश के कारण रूपी, पाश एवं दुराशा तजकर विवेकी बनो। सुगन्धयुक्त शीतल तुलसी माला से अलंकृत भगवान का प्रिय निवास बदरि के दर्शन करो - यही उज्जीवन का मार्ग है।

पुलन्कळ् नैय मॅय्यिल् मूत्तु
पोन्दु इरुन्दु, उळ्ळम् एंळ्हि,
कलंग ऐक्कळ् पोद उन्दि,
कण्ड पितर्ट्रा मुन्
अलङ्गल् आय तण् तुळाय् कॉण्डु
आयिरम् नामम् शॉलि,
वलङ्कॉळ् तॉण्डर् पाडि आडुम्
वदरि वणङ्गुदुमे ॥ (9)

बुढापे में मनुष्य की सभी इन्द्रियां शिथिल पड जाती हैं। सब से उपेक्षित होकर घर के एक कोने में बैठ जाना पडता है। कमज़ोरी एवं मनोविकृति, पित्त की अधिकता के कारण कुछ न कुछ बकते रहते हैं। अपने प्रिय लोगों की अवहेलना देखकर मन लज्जित होता है। श्लेष्म अधिक मात्रा में निकल पडता है। जवानी में सन् मार्ग न अपनाने के कारण अब बुढापे में दुःख भोगना पडता है।

आळ्वार अब जवानों के भगवत् कैंकर्य की विलक्षणता पर प्रकाश डालते हैं। दास जन- (नौजवान) तन्, मन्, वाक् से भगवान के कैंकर्य में लगकर शीतल तुलसी मालाओं को लेकर, सहस्रनाम का पाठकर, अर्थानुसन्धान करते हुए, नाचते गाते भगवान की परिक्रमा करते हैं। उनका उपदेश है कि समय रहते जागो। बदरि प्रणाम करें, दर्शन करें।

वण्डु तण् तेन् उण्डु वाळुम्
वदरि नॅडुमालैक्
कण्डल् वेलि मङ्गै वेन्दन्
कलियन् ऑलि मालै
कॉण्डु, तॉण्डर पाडि आडक्
कूडिडिल्, नीळ् विशुम्बिल्
अण्डम् अल्लाल् मर्टू अवरक्कु ओर्
आट्चि अरियोमे ॥ (10)

वृद्धावस्था की दुर्दशा बताते हुए, पहले नौ पदों में वदरि को प्रणाम करने एवं दर्शन करने जाने का उल्लेख है। दसवें पद में वदरि में विराजमान भगवान के दर्शन व स्तुति करने के पहले, बदरि (क्षेत्र) को प्रणाम करने की बात कही गयी है। इसका उद्देश्य क्षेत्र के भगवान बदरिनारायण के दर्शन करने का उद्देश्य है। इस प्रकार दर्शन एवं सेवा का उपदेश देते हुए, अब इस दशक के पाठ करनेवालों को प्राप्य फल बताते हैं।

वदरि में कई प्रकार के मधुकर शीतल मधु का पान करके सानन्द रहते हैं। परम पवित्र वदरि में विराजमान परमात्मा के प्रति कलियन ने (संत पर काल - तिरुमंगै आऴ्वार) यह नादमाला रची, जो केतक के घेरे से परिवृत मंगै के (जनपद) नृपति हैं।

आऴ्वार के द्वारा अनुगृहीत, औचित्य शब्द-युक्त इन सूक्तिमालाओं को रसास्वादन करते, भक्ति से पाठकर बदरि में विराजमान, भक्त व्यामोही भगवान के दर्शन एवं स्तुति कर, नाच गान कर सकेंगे तो उन्हें परमपद का राज्य हस्तगत होता है। यह हमारी जानकारी है। नित्य विभूति में पहुंचकर दिव्य शरीर प्राप्त कर कैंकर्य साम्राज्य प्राप्त करेंगे।

(इस संसार के सभी प्रकार के दुःखों से भी छुटकारा पा लेंगे। पूर्वजन्म कृत पापों से मुक्ति पाएंगे। अप्राकृत दिव्य शरीर प्राप्त कर भगवान के कैंकर्य करते हुए परमानन्द का अनुभव करेंगे।

''आऴ्वार के श्रीपादों की जय हो।

# बदरिकाश्रम्
## परिय तिरुमांळि (बृहत श्री सूक्ति)

भगवान का नाम : बदरि नारायणन्　　　　　　　　माताजी : अरविन्दवल्लि

पिछले दशक में आळ्वार ने हिमालय पर्वत में स्थित पवित्र बदरि क्षेत्र की विशिष्टता एवं महानता का अनुभव किया, जहाँ भगवान नित्यवास करते हैं। परंपरा के अनुसार क्षेत्र, तीर्थ और भगवान पवित्र एवं वन्दनीय हैं। इस दशक में बदरि शिखर पर बदरिकाश्रम में विराजमान भगवान (अरविन्द वल्लि समेत वदरी नारायणन्) का मंगलाशासन है।

गुरु शिष्य क्रम प्रवर्तन करने के लिए स्वयं श्रीमन् नारायण ने नारायण और नर का रूप धारण कर बदरिकाश्रम क्षेत्र में अष्टाक्षर मंत्र को प्रकट किया। अष्टाक्षर मंत्र रत्न ऐहिक और आमुष्मिक दोनों फल देनेवाला है। (विस्तृत विवरण पिरिदि के अंतंगत पृष्ट सं. 146 देखें)

वदरिकाश्रम गंगा किनारे उसके मूल से संबन्धित होने से उसकी महिमा और भी बढती है। इसलिए प्रत्येक सूक्ति में "गंगा" का भी उल्लेख है। अब चलिए। आळ्वार के साथ। हम भी बदरिकाश्रम में भगवान के दर्शन करेंगे।

### तिरु वदरियाच्चिरमम् (तिरुमंगै आळ्वार)

एनम् मुन् आहि, इरु निलम् इडन्दु, अंडू ;
　इणै-अडि इमैयवर् वणङ्ग,
तानवन् आहम् तरणियिल् पुरळत्
　तंडञ् शिलै कुनित्त एन् तलैवन् -
तेन् अमर् शोलैक् करपहम् पयन्द
　देय्व नल् नरु मलर् कांणर्न्दु
वान्वर् वणङ्गुम् गंगैयिन् करैमेल्
　वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाने।　　　　　(1)

पुरा काल में (प्रलय काल) में भूतल जल-मग्न हो गया था। भगवान ने संसार की रक्षा के लिए वराहवतार लेकर, विशाल पृथ्वी को अण्ड-कडाह से अपने दाढ़ों के नोक से निकालकर जल के ऊपर बिछाया - स्थिर किया। रावण आदि असुरों के असह्य उपद्रव एवं हिंसा से परेशान होकर, जब देवता और ऋषि-गणों ने भगवान के चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना की तब रावण आदि असुरों को अपने तीखे बाणों से धराशायी कर दिया।

वे मेरे स्वामी श्रीमन्नारायण गंगा किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं; जहां इन्द्र आदि साधु समूहों से भरे उपवन में स्थिति कल्प-वृक्षों से प्राप्त उत्तम एवं दिव्य सुगन्धित पुष्पों को लेकर यहाँ के भगवान को भक्तिभाव से समर्पित करते हैं और प्रणति करते हैं। (यहाँ भगवान अष्टाक्षर मंत्र के मूर्तिमान रूप में हैं और भगवान ने उस मंत्र को भी यहाँ प्रवर्तित किया। "ऋषि" का बोध करने - इस सूक्ति में "बदरिकाश्रमवासी" संबोधनकर आश्रम पद को भी जोडा है ) वे ही हमारे रक्षक और प्राप्य हैं। वे ही भगवान गंगा किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं।

कानिडै उरुवै, चुडु शरम् तुरन्दु,
कण्डु मुन्, काडुन् ताऴिल् उरवोन्
ऊन् उडै अहलत्तु अडु कणै कुळिप्प,
उयिर् कवर्न्दु उहन्द एम् आरुवन्
तेन् उडैक् कमलत्तु अयनाडु तेवर्
शेन्डु शेन्डु इरैञ्जिड, परुहु
वानिर्डै मुदु नीर्क् गंगैयिन् करैमेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उऴ्ळाने ॥ (2)

श्री रामचन्द्र सीताजी के साथ पंचवटी में एक पर्णकुटी बनाकर रहते थे। तब मारीच एक सुन्दर स्वर्ण-मृग के रूप में कपट वेष बनाकर पर्णकुटि के आस-पास घूमता था। उसके कपट वेष से अनभिज्ञ सीताने श्रीरामचन्द्रजी से उस हिरन को ले आने की इच्छा प्रकट की। सीता की इच्छा पूरी करने, उसे पकडने के लिए रामचन्द्र ने उसका पीछा किया। उनकी पकड में न आकर, उनसे बचते हुए हिरन कानन में बहुत दूर चला गया। तब उसे असुर जानकर उसके क्रूर और बलवान मांसल वक्ष पर मारक तीक्ष्ण तीर चलाकर इसके प्राण हरकर, प्रसन्न होनेवाले हमारे स्वामी अनुपम हैं। वे ही अनादि काल से आकाश से प्रवाहमान गंगा किनारे स्थित बदरिकाश्रम् में विराजमान हैं, जहां मधुभरे कमल से उत्पन्न ब्रह्मा सहित देवतागण आपस में होड लगाते हुए, भगवत् सन्निधान में जा कर दर्शन एवं स्तुति करते हैं।

इलंगैयुम्, कडलुम्, अडल् अरुम् तुप्पिन्
इरु निदिक्कु इरैवनुम्, अरक्कर्
कुलङ्गलुम् केड, मुन् काडुन्-ताऴिल् पुरिन्द
केर्ट्रवन् काळुत्र् शुडर शुळन्डु

विलङ्गलिल् उरिञ्चि मेल् निंड्रु विशुम्बिल्
वण् तुहिल् कोडि एन विरिन्दु,
वलम् तरु मणि नीर्क् गंगैयिन् करै मेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाने ॥ (3)

पहले हनुमान को लंका भेजकर, फिर स्वयं श्री रामचन्द्र-वानर सेना के साथ वहां पहुंचकर अदम्य पराक्रमी, निधि-द्वय के स्वामी (शंखनिधि एवं पद्मनिधि) रावण, उनके सहायक एवं संपूर्ण राक्षस कुल का समूल ध्वस्त कर दिया। ऐसे कठिन कार्य करनेवाले महापराक्रमी (महाप्रभु श्री रामचन्द्र) गंगा किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। गंगा, जिसका तीव्र वेग से बहता निर्मल जल मेरुपर्वत तक जाकर टकराता है, जिस मेरुपर्वत को तेजस्वी सूर्य परिक्रमा करता रहता है। इस प्रकार गंगा मेरु पर्वत के ऊपर स्थित आकाश में धवल दुकूल ध्वज के समान व्याप्त होकर बहती है।

तुणिवु इनि उनक्कुच् चोल्लुवन्, मनमे !
ताळ्दु एळु, ताण्डर्हळ् तमक्कुप्
पिणि ओळित्तु अमरर् परु विशुम्बु अरुळुम्
पेर् अरुळाळन् एम् परुमान्-
अणि मलर् कुळलार् अरम्बैयर् तुहिलुम्
आरमुम् वारि वन्दु, अणि नीर्
मणि कोळित्तु, इळिन्द गंगैयिन् करै मेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाने। (4)

आळ्वार अपने मन को (हमें भी) संबोधित करते हैं। हे मन! अब मैं तुम्हें एक पक्के ज्ञान की बात बताता हूँ, सुनो ! भगवान की भक्ति में लीन, अनन्य भक्तों की संसार रूपी रोग का नाश करके, भव बन्धन से मुक्ति कर भक्तों को नित्यसूरियों के स्थान परमपद प्रदान करनेवाले प्रणतार्थिहरन, परमदयालु मेरे स्वामी देवाधिराज गंगा किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। वहां पहुंचकर सर्वेश्वर की प्रणति कर उज्जीवित हो जाओ। यही मेरा उपदेश है। गंगा में अप्सर स्त्रीयां भी आकर स्नान करती हैं जो पुष्पों एवं हार आदि से अलंकृत हैं। गंगा के मनोहर जलप्रवाह, उनके पुष्पहार आदि के ढेर, आभूषण एवं रत्नों को बहाकर ले आता है और गंगा किनारे रत्नों का ढेर लगाता है। हमारे भगवान यहां गंगा के किनारे विराजमान हैं।

पेय् इडैक्कु इरुन्दु, वन्द, मर्टु अवळ्-तन्
  परु मुलै चुवैत्तिड, पर्ट्र
ताय् इडैक्कु इरुत्तल् अंजुवन् एन्डु
  तलर्न्तिड, वलरन्द एन् तलैवन्
चेय् मुहट्टु उच्चि अण्डमुम् शुमन्द
  चर्म्पान् चय् विलङ्कलिल् इलङ्गु,
वाय् मुहट्टु इळिन्द गंगैयिन् करैमेल्
  वदरि आच्चिरमत्तु उल्लाने ॥ (5)

दानवी पूतना माता का कपट वेष बनाकर आयी थी। बालकृष्ण उसकी गोद में, निश्चल बैठ उस दानवी के विष लेपित बडे स्तनों का रसास्वादन करते हुए, दूध पीनेवाले कृष्ण ने दूध के साथ-साथ दानवी के प्राण को भी चूस लिया। मृत दानवी की गोद में कृष्ण को देखकर यशोदा, जो अपने को ही कृष्ण की मां समझती थी, इस चिन्ता से शिथिल होकर व्याकुल हुई कि इस बालक को अपने गोद में लेने से डरती हूँ। इस प्रकार बढनेवाले मेरे स्वामी गंगा के किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। वह गंगा, ब्रह्म लोक आदि को धारण करनेवाले स्वर्णमय मेरु पर्वत के समुज्ज्वल विशाल एवं उन्नत शिखर से बहकर निकलती है।

इस सूक्ति में बदरिकाश्रम में विराजमान भगवान को कृष्ण के रूप में दर्शन कर कृष्णावतार का अनुभव करते हैं।

तेर् अणङ्गु अल्कुल् शळुङ् कयल् कण्णि -
  तिरत्तु आरु मरत्तोळिल् पुरिन्दु,
पार् अणङ्गु इमिल् एरु एळुम् मुन् अडरत्त
  पनि मुहिल् वण्णन् एम् परुमान् -
कारणम्-तन्नाल् कडुम् पुनल् कयत्त
  करु वरै पिलवु एळक् कुत्ति,
वारणम् कोणरन्द गंगैयिन् करैमेल्
  वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाने ॥ (6)

पिछली सूक्ति में श्रीकृष्ण की बाल लीला के संबन्ध में एक प्रसंग का उल्लेख था। अब इसमें युवावस्था की एक वीरता पूर्ण लीला का प्रसंग है।

अहीरों के प्रधान कुंभन की पुत्री नीला देवी (तमिळ् में नप्पिन्नै कहते हैं) से विवाह करने, उसके पिता कुंभन ने वीरोचित कन्या-शुल्क घोषित किया था। अर्थात "भयावह ककुत से युक्त सात वृषभों को दमनकर काबू में लाने की बात।" ये वृषभ भूमि के निवासियों को बहुत परेशान करती थी। पुराकाल में श्री कृष्ण क्रुद्ध होकर भयावह ककुत युक्त सात वृषभों को सब के सामने दमन कर नाथ लिया। रथ के पीठ के सदृश नितंब वाली और मनोहर मीनलोचनी नप्पिन्नै से विवाह कर लिया। वही शीतल जलद-वर्ण भगवान बदरिकाश्रम् में विराजमान हैं। गंगा, जिसमें भगीरथ की तपस्या के कारण प्रचण्ड वेग से प्रवाहित जल से भरे गड्ढे हैं और गंगा का प्रचण्ड प्रवाह पहाडों से टकराता है, जिससे पहाड बीच में फटकर टूट जाते हैं। फलस्वरूप दरारें पड जाती हैं। उस दरार से गंगा का प्रवाह बडे हाथियों को भी बहा लाता है।

वॆम् तिरल् कळिरुम्, वेलैवाय् अमुदुम्,
विण्णाडु, विण्णवर्क्कु अरशुम्,
इन्दिरर्क्कु अरुळि, ऍमक्कुम् ईन्दु अरुळुम्
ऍन्दै, ऍम् अडिहळ्, ऍम् पॆरुमान् -
अन्तरत्तु अमरर् अडि-इणै वणङ्ग,
आयिरम् मुहत्तिनाल् अरुळि,
मन्दरत्तु इळिन्द गंगैयिन् करैमेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाले। (7)

माना जाता है कि भगवान प्रत्येक जीव की योग्यता के अनुसार (पूर्व-कर्म) फल प्रदान करते हैं। इन्द्र आदि देवताओं को और हम को भी मांगे बिना देते हैं। हमारे स्वामी बडे दयालु हैं। इन्द्र को उन्होंने अधिक बलवान हाथी, क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत, देवलोकवास, और देवताओं पर शासन करने राज्य प्रदान किया। हम जैसे भक्तों पर भी भगवान की बडी कृपा है। वे हमारे प्रभु, हमारे स्वामी और हमारे पिता गंगा के किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। स्वर्गवासी देव इनके चरणों में सिर नवाते हैं। स्वर्ग के देवों की यह प्रार्थना करने पर कि लोक- क्षेम को ध्यान करते हुए गंगा सहस्र मुखों से बहे। (गंगा वेग से बहती है तो पृथ्वी और समुद्र उसका वेग सह नहीं सकते) गंगा भगवान की कृपा से लोक-क्षेम का ख्याल रखते हुए, बहुत दूर मेरु पर्वत से मंदर पर्वत पर होकर और फिर वहां से सहस्र धाराओं में बहती हुई समतल पर आती है।

मान् मुनिन्दु आरु काल् वरि शिलै वळैत्त
मन्नवन्, पान् निरत्तु उरवोन्
ऊन् मुनिन्दु, अवनदु उडल इरु पिलवा
उहिर नुति मडुत्तु, अयन् अरन्नैत्
तान् मुनिन्दु इट्ट वम् तिरल् चापम्
तविर्त्तवन् -तवम् पुरिन्दु उयर्न्द
मा मुन् काणर्न्द गंगैयिन् करै मेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळाने ॥ (8)

इस सूक्ति में भगवान के विभवावतार चरित्रों का वर्णन है। रामावतार में उन्होंने माया मृग-रूपी मारीचपर क्रुद्ध होकर मारक तीर चलाया। नृसिंह अवतार में अपने नखों से हिरण्य का वक्ष-स्थल फाड लिया; पुरा काल में जब एक समय ब्रह्मा ने अपने पुत्र रुद्र पर कुपित होकर अति क्रूर शाप दिया, तब रुद्र को (भगवान नें) उस पाप से (ब्रह्महत्या) निवृत्त किया। ऐसे भगवान बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। यह क्षेत्र गंगा के किनारे स्थित है, जिसकी तपस्या कर उत्कर्ष प्राप्त महामुनि (भगीरथ) इस भूतल पर लाए और जिस गंगा के किनारे लंबे समय की तपस्या से उत्कुष्ट, सिद्धि प्राप्त ऋषिगण निवास करते हैं।

कोण्डल् मारुतंगळ्, कुल वरै, ताहु नीर्क्
कुरै कडल्, उलहुं उडन् अनैत्तुम्
उण्ड मा वयिट्रोन् आण् शुडर् एय्न्द
उम्बरुम् ऊळियुम् आनान् -
अण्डम् ऊडु अरुत्तु, अंडु अन्तरत्तु इळिंन्दु, अंगु
अवनियाळ् अलमरप् परुहुम्
मण्डु मा मणि नीरक् गंगैयिन् करैमेल्
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्लाने ॥ (9)

आळ्वार भगवान के परत्वगुण और सर्वजगत कारणत्व का अनुभव करते हैं। मेघ समूह, मारुत वर्ग, कुल पर्वत, जल से भरपूर सप्त समुद्र और इस प्रकार अतल पाताल तीनों लोक आदि एक साथ निगलनेवाले और भी लेने विशाल उदरवाले, तथा कल्पादि काल से, काल आदि सभी पदार्थों के निर्वाहक, हमारे भगवान गंगा के किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं।

तिरुविक्रम भगवान का एक चरण, संसार को नापते हुए, स्वर्ग लोक तक पहुंचा। ब्रह्मा ने अपने कमंडल के जल से चरण धोया। वह जल गंगा बन अण्डकडाह को फाडकर अन्तरिक्ष में पहुंचा। बडा प्रवाह बनकर, भगीरथ की प्रार्थना के अनुसार ब्रह्मांड से नीचे उतरकर, भूमंडल पर गंगा का जल इतने वेग से सतत प्रवाहित हुआ कि भूमि देवी भी विचलित हुई।

वरुम् तिरै मणि नीरक् गंगैयिऩ् करैमेल्,
वदरि आच्चिरमत्तु उळ्ळानै,
करुङ् कडल् मुन्नीर् वण्णनै एण्णि
कलियऩ् वाय् ओलि चॆय्द पनुवल्
वरम् चॆय्द ऐन्दुम् ऐन्दुम् वल्लार्हळ्
वाऩवर् उलहु उडऩ् मरुवि,
इरुङ् कडल् उलहम् आण्डु, वॆण्कुडैक् कीळ्
इमैयवर् आहुवर्, तामे। (10)

समस्त फल प्रदायक तिरुअष्टाक्षर मंत्र के प्रवर्तक और उपदेश देनेवाले, हमारे प्रभु सतत ऊपर से समतल में बहनेवाली, उछलती तरंगें और मणि तुल्य जल प्रवाह से व्याप्त गंगा किनारे बदरिकाश्रम में विराजमान हैं। समुद्र जैसे नील तनु और विविध जलवाले, गहरे एवं काले सागर सदृश भोग्य, ताप निवारक हमारे "मुन्नीर कडल वण्णन्" सागरवर्ण प्रभु (श्रीमन्नारायण) का ध्यान कर, उनके अनुग्रह से, उनके प्रति कलियन (तिरुमंगै आळ्वार) के मुंह से प्रकटि नादरूप द्विपंचक अर्थात् दस वरिष्ठ पदों के कथन में समर्थ, राजचिह्न के सफेद छत्र के नीचे, विशाल समुद्र से घिरे भूलोक का चक्रवर्ती होकर, फिर देवत्व प्राप्त करेंगे। अर्थात् भूलोक और स्वर्ग लोक के शासक बनेंगे। इस प्रकार समस्त ऐश्वर्य और पुरुषार्थ प्राप्त कर, उसी स्थिति में मुक्त होकर, नित्य सूरि होंगे।

आळ्वार के श्री पादों की जय हो।

# तिरुच्चालक्किरामम् (शालग्राम्)
# (पॅरिय तिरुमॉळि) तिरुमंगै आळ्वार

भगवान का नाम : श्री मूर्ति                                        माताजी : श्री देवी

कलैयुम् करियुम्, परिमावुम्
तिरियुम् कानम् कडन्दु पोय्,
शिलैयुम् कणैयुम् तुणैयाहच्
चॅन्ड्रान्, वॅन्ड्रिच् चॅरुक्कळत्तु;
मलै कॉण्डु अलै नीर् अणै कट्टि,
मदिळ् नीर् इलङ्गै वाळ् अरक्कर्
तलैवन् तलै पत्तु अरुत्तु उहन्दान्
चालक्किरामम् अडै, नॅञ्जे ।

भगवान की अर्चावतार मूर्तियां अनेक दिव्य देशों में विराजमान हैं । पहले भी (बदरिकाश्रम) इसका विवरण दिया गया है कि स्वयं भगवान से अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश ग्रहण करने के बाद, आळ्वार का मन भगवान के अर्चारूप में लग गया । चूंकि अष्टाक्षर मंत्र को प्रकट करनेवाले बदरिकाश्रम वासी श्रीमन्नारायण हैं, उनके दर्शन करने निकले । रास्ते में तिरुप्पिरिदि (जोषीमठ) के भगवान के दर्शन कर मंगलाशासन किया । इसके बाद बदरिकाश्रम के भगवान के दर्शन कर मंगलाशासन किया और कृतकृत्य हुए । आगे भगवत्-प्रेरणा से उनके मन में दूसरे क्षेत्रों में (शालग्राम, नैमिषारण्य आदि) जाने की इच्छा हुई । अपने मन को अथवा मन सदृश अपने अंतरंग मित्रों को आह्वान करते हैं । शालग्रामम् में (वर्तमान नेपाल) श्री देवी सहित श्रीमूर्ति भगवान भक्तों को अनुग्रह करते हुए विराजमान हैं । अपने मन को संबोधित कर कहते हैं - हे मन ! अब शालग्राम दिव्य क्षेत्र पहुंचो । (यह आळ्वार की अपनी शैली है ।)

अपने आश्रित भक्तों के विरोधियों के नाश से प्रसन्न होनेवाले भगवान श्री रामचन्द (श्री मूर्ति) ही यहां शालग्राम में विराजमान हैं । इस दशक में आळ्वार का रामानुसन्धान अधिक मात्रा में पाएंगे ।

भक्तवत्सल भगवान ने लंका में राक्षसों के राजा लंकेश्वर के दसों सिर काट लिए । लंका तक पहुँचने, उनको कई जंगल पार करने पडे, जिनमें हिरन, हाथी, घोडे आदि अनेक जानवर स्वछन्द विचरण करते हैं । युद्ध भूमि में

दुश्मनों को मारने, अपने धनुष बाण ही उनके सहायक थे। लंका पहुंचने में बडे २ लहरोंवाला समुद्र बाधक रहा। (बन्दरों के द्वारा) बडे २ पहाडी पत्थरों से उसपर सेतु बनवाया। युद्धभूमि में रावण को मारकर प्रसन्न भगवान यहां (शालग्राम) विराजमान हैं। भगवान इसलिए प्रसन्न हैं कि अब देवता लोग निश्चिन्त रहेंगे और ऋषि मुनिगण अपने आश्रम में शांतिपूर्वक यज्ञ आदि निर्विघ्न होकर करेंगे। आखिर फलश्रुति में कहते हैं कि इस तिरुमोऴि के पाठ करनेवालों को सहस्रनाम पारायण का फल प्राप्त होता है।

कडम् शूऴ् करियुम्, परिमावुम्,
  ऑलि मात् तेरुम्, कालाळुम्
उडन् शूऴ्न्दु ऍऴुन्द कडि इलङ्गै
  पॉडिया वडि वाय्च् चरम् तुरन्दान्
इडम् शूऴ्न्दु ऍङ्गुम् इरु विशुम्बिल्
  इमैयोर् वणङ्ग; मणम् कमऴुम्
तडम् शूऴ्न्दु ऍङ्गुम् अऴहु आय
  चालक्किरामम् अडै, नॆञ्जे। (2)

श्रीरामचन्द्र ने जंगलों में सिर्फ विरोधियों का नाश किया। मृग, हाथी एवं अश्वों को नहीं; क्योंकि ये भगवान के प्रिय थे। लेकिन लंका नगर में सब के सब उनके विरोध में युद्ध-क्षेत्र में खडे थे। इसलिए जो कोई विरोध में खडे हुए, उन सब को मारकर, लंका शहर को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। रावण ने चतुरंग बल (हाथी, घोडे, रथ पदाति) सहित युद्ध किया। युद्ध क्षेत्र ही इससे आन्दोलित हो उठा। श्री रामचन्द्र ने इन सब को अपने अचूक बाणों से चकनाचूर कर दिया। वही भगवान शालग्राम में विराजमान हैं। यह क्षेत्र बहुत विशाल है और सुगंधित सरोवरों से घिरा हुआ है। स्वर्गनिवासी देवतागण भी यहां आकर भगवान की बंदना करते हैं। देवतागण बडे-बडे समूह बनाकर आते हैं, जिससे यह विस्तृत क्षेत्र देवताओं से भरा है। भूलोक वासियों के लिए ही नहीं, लेकिन देवलोक निवासियों का भी गन्तव्य क्षेत्र है।

उलवु तिरैयुम्, कुल वरैयुम्,
  ऊऴि मुदला ऍण् तिक्कुम्,
निलवुम्, शुडरुम्, इरुळुम् आय्
  निन्द्रान्; वन्दि विरल् आऴि

वलवन्; वानोर्-तम् परुमान्;
  मरुवा अरक्कर्क्कु ऐञ्ञान्डुम्
चलवन्-चलम् शूऴ्न्दु अऴहु आय
  चालक्किरामम् अडै नेञ्जे ! (3)

इसमें भगवान के जगत् स्वरूपत्व का वैभव बताया जाता है । सभी वस्तुओं में भगवान की सत्ता एवं शक्ति है । वे उनके अंतर्यामी हैं । आऴ्वार कहते हैं - भगवान सतत तरंगित समुद्र, कुल पर्वत, प्रलय, आठों दिशाएं, चन्द्र, सूर्य, अंधकार इन सभी में विराजमान हैं । वे सुदर्शन चक्रधारी हैं । अपने भक्तों के रक्षक हैं । देवाधिदेव हैं । अपनी शरण में न आनेवाले राक्षसों को सदा निग्रह कर पराजित करनेवाले ऐसे भगवान, निर्मल जलाशयों से परिवृत, अति मनोहर शालग्राम् में विराजमान हैं । हे मन! वहां पहुँचो ।

ऊरान्; कुडन्दै, उत्तमन्;
  ऑरु काल्, इरु काल् शिलै वळैयत्
तेरा अरक्कर् तेर् - वळ्ळम्
चर्ट्रान् वट्रा वरु पुनल् शूऴ्
पेरान्; पेर् आयिरम् उडैयान्
  पिरङ्गु चिरै वण्डु अरैहिन्ड्र
तारान् - तारा वयल् शूऴ्न्द
  चालक्किरामम् अडै नेञ्जे ॥ (4)

इस पाशुरम में आऴ्वार विभवावतार के साथ कई अर्चावतार भगवान का भी अनुभव करते हैं । भगवान ऊरहम, (कांची में एक दिव्य क्षेत्र) कुडन्दै, (कुंमकोणम्) अशोष्य नदी जल से घिरा तिरुप्पेरनगर (कोइलडि) आदि इन दिव्य देशों में विराजमान हैं । रामावतार में राक्षसों के प्रवाह जैसे रथों को अपने चाप से रोककर ध्वंस करनेवाले अपने गुण और चरित्र को प्रकाशित करनेवाले, सहस्रनामों के प्रतिपाद्य, मधुकरों से गूंजती वन-माला धारण करनेवाले भगवान खेतों से घिरे शालग्राम में विराजमान हैं । इन खेतों में झुंड के झुंड सारस पक्षी रहते हैं । हे मन ! शालग्राम पहुंचो । भगवान भक्तों की रक्षा के लिए विभवावतार लेते हैं और भक्तों के अनुग्रह करने कई दिव्य क्षेत्रों में अर्चावतार में विराजमान हैं ।

अडुत्तु, आर्त्तु एॅळुन्ताळ् पिल वाय् विट्टु
  अलर, अवळ् मूक्कु अयिल् वाळाल्
विडुत्तान्; विळङ्गु शुडर् आळि
  विण्णोर् परुमान्; नण्णार् मुन्
कडुत्तु आर्त्तु एॅळुन्द परु मळैयैक्
  कल् ऑन्डु एन्दि, इन निरैक्कात्
तडुत्तान् - तडम् शूळ्न्दु अळहु आय
  चालक्किरामम् अडै नॅञ्जे ! (5)

राम और लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत शूर्पणखा शोर मचाती सीता पर झपट पडी। रामचन्द्रजीने अपने अनुज के द्वारा उसकी नाक कटा दी। तब वह अपना बिल- तुल्य बडा मुंह फाडकर चिल्लाते हुए जन स्थान होकर लंका पहुंची। अपनी पूजा रुक जाने से क्रोधित इन्द्र ने (मेघों को भेजकर) व्रजभूमि में लगातार बडे जोर का पानी बरसाया। तब श्री कृष्ण ने गोवर्धन पहाड को अपनी उंगली से उठाकर घनघोर वर्षा से गायों और गोपों की रक्षा की। इन्द्र ने भगवान श्री कृष्ण के दर्शन कर क्षमा याचना की। इस प्रकार इन्द्र का गर्व-भंग करनेवाले, ऐसे लीलावान भगवान जो नित्यसूरियों के नाथ हैं, चक्रधारी हैं, जलाशयों से घिरे शालग्राम में विराजमान हैं। हे मन! शालग्राम पहुंचो।

भगवान कई छोटे-छोटे शालग्राम के रूप में, लोक रक्षण और लोक कल्याण के लिए यहां प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक भक्त के घर में विराजमान होकर उनका अनुग्रह करते हैं। (अर्थात् भक्तगण अपने-अपने घर में रोज़ शालग्राम मूर्ति की पूजा करते हैं)

अनुभव में देखा जाता है कि और आचार्यों का कहना है कि जिनके यहां शालग्राम की मूर्ति विराजमान है, वहां सब दुःख दूर होकर सर्वमंगल होता है। यह भगवान का सौलभ्य है; प्रत्येक भक्त के घर में विराजमान होकर उनकी रक्षा करते हैं।

ताय् आय् वन्द पेय् उयिरुम्,
  तयिरुम्, विळुदुम् उडन् उण्ड
वायान् ! तूय वरि उरुविन्
  कुरळायच् चॅन्डु मावलियै

एयान् इरप्प, मूवडि मण्
  इन्ड्रे ता एन्ड्रु उलहु एळुम्
तायान्; काया मलर् वण्णन् -
  चालक्किरामम् अडै नॅञ्जे । (6)

भगवान ने एक स्त्री (राक्षसी-पूतना) के प्राण लिये । गोपियों से सुरक्षित दूध, दही एवं मक्खन का रसास्वादन किया । मावलि से तीन पग भूमि मांगी । इस प्रकार जिसको, जिस प्रकार उद्धार करना उचित था, उस प्रकार पूतना, गोपी जन, और मावलि का उद्धार किया ।

जो दानवी पूतना माता का कपट वेष बनाकर आयी थी, और स्तन पान कराने लगी, तब भगवान ने स्तन्य के साथ उसके प्राण भी चूस लिये । इसके अलावा आयरपाडी के सभी गृहों से दूध, दही और मक्खन भी निगल गए । सब उनके लिए बराबर भोग्य था । जिनका हाथ देना ही जानता था, वह भगवान याचक बनने योग्य नहीं था । फिर भी पावन एवं सुन्दर वामन बनकर महाबलि से तीन पग भूमि मांगकर, उसका यश बढाया और हमेशा के लिए महाबलि के रक्षक बन गये ।

जब महाबलि ने वामन भगवान को भूमि देने का संकल्प किया, तब वामन भगवान ने तिरुविक्रम का रूप लेकर तीनों लोकों को (तीन पग से) नाप दिया । अतसी पुष्प वर्ण प्रभु शालग्राम में विराजमान हैं । हे मन ! वहां पहुंचो ! वे ही हमारे रक्षक हैं ।

एनोर् अञ्ज वॅम् चमत्तुळ्
  अरि आय्, परिय इरणियनै
ऊन् आर् अहलम् पिलवु एॅडुत्त
  अॅरुवन्; ताने इरु शुडर् आय्,
वान् आय् ती आय्, मारुतम् आय्
  मलै आय् अलैनीर् उलहु अनैत्तुम्
तान् आय् तानुम् आनान् तन्
  चालक्किरामम् अडै नॅञ्जे । (7)

**भगवान ने महाबलि से प्राप्त राज्य को देवों को दिया । नृसिंह रूप में प्रकट होकर (घोर युद्ध में जिससे शत्रु (असुर) भय-भीत हुए) हिरण्य को मारकर भक्त प्रह्लाद का राज्याभिषेक किया ।**

भगवान सर्वव्यापक हैं। हिरण्य ने प्रह्लाद को मारने के लिए कई तरह के प्रयत्न किए। डराया। धमकाया। हिरण्य के द्वारा पूछे जाने पर प्रह्लाद ने यही बताया कि भगवान सर्व-व्यापक हैं। प्रह्लाद के कथन को सत्य बनाकर, भगवान भयंकर नृसिंह रूप में प्रकट हुए और मोटे हिरण्य के मांसल वक्ष को विदीर्ण किया। इस नृसिंह रूप को देखकर भक्तों में प्रह्लाद और दुश्मनों में हिरण्य को छोड़कर सब भयभीत हो गए थे। श्री नृसिंह भगवान प्रह्लाद की स्तुति एवं प्रार्थना से शांत हुए और उसका अनुग्रह किया। भगवान स्वयं सूर्य, चक्र रूपी हैं। आकाश, अग्नि, वायु, पर्वत और तरंगवाले समुद्र से परिवृत् सभी लोक, सब उन्हीं की मूर्तियां हैं। भगवान स्वयं आप भी होनेवाले - अर्थात् अपने असाधारण दिव्य मंगल विग्रहयुक्त होनेवाले भी हैं। यही भगवान शालग्राम में विराजमान हैं। शालग्राम जा पहुंचो मन !

वॆन्तार् ऍन्पुम् शुडु नीरुम्
मॆय्यिल्, पूशि, कैयहत्तु ओर्
चन्दु आर् तलै-काॅण्डु, उलहु ऍल्लुम्
तिरियुम् पॆरियोन्-तान् शॆन्ड्रु ऍन्
ऍन्दाय् ! शापम् तीर् ऍन्न
इलङ्गु अमुदु नीर् तिरुमार्विल्
तन्दान् - शन्दु आर् पॊळिल् शूऴ्न्द
चालळ्किरामम् अडै नॆञ्जे। (8)

भगवान ने नृसिंह होकर हिरण्य के प्राण लिये। ब्रह्मा के शाप से परमशिव को मुक्त किया। (यहां हर-शाप विमोचन का प्रसंग है।) भगवान आश्रितों के रक्षक हैं। पहले शिवजी के अलंकार और वेश-भूषा के बारे में उल्लेख है। स्मशान भूमि में दग्ध लोगों की हड्डियों की माला और जला भस्म शरीर पर पोतकर, एक कपाल हाथ में लेकर, घूमनेवाले महादेव ने (अपने पिता ब्रह्मा के एक सिर को चिकोटी काटने से, वह सिर (कपाल) शिव के हाथ में लग गया था।) आखिर स्वयं भगवान के पास जाकर शाप-विमोचन की प्रार्थना की। हे मेरे स्वामी ! (मेरा) शाप दूर करो।" तब भगवान ने अपने श्री वक्ष से भासमान अमृत जल शिव को प्रदानकर, उन्हें शाप मुक्त करनेवाले (इससे कपाल भर गया और कपाल महादेव के हाथ से छूट गया।) वे भगवान उपवन एवं चन्दन वनों से घिरे शालग्राम में विराजमान हैं। हे मन! वहाँ पहुँचो। भयंकर ब्रह्महत्यादि पापों से भी मुक्ति पाने का स्थान है - शालग्राम।

तण्डु आम् इनमुम्, इमैयोरुम्,
तुणै नूल् मार्विन् अन्दणरुम्
अण्डा, एमक्के अरुळाय् एन्डु,
अणैयुम् कोयिल्, अरुहु एल्लाम्
वण्डु आर् पोळिलिन् पळनत्तु
वयलिन् अयले कयल् पायत्
तण् तामरैहळ् मुहम् अलर्त्तुम्
चालक्किरामम् अडै नञ्जे । (9)

भगवान् बिना कोई भेदभाव सभी भक्तों के अनिष्ट निवारक और अभीष्ट प्रदायक हैं । कैंकर्य करनेवाले भक्त समूह एवं भागवतों के अलावा, युगल यज्ञोपवीत से समन्वित बक्षवाले ब्राह्मण-वर्ग, नित्यसूरि और देवतागण (भूलोक में भगवान के सौशील्य का अनुभव करने) आदि सब शालग्राम के मंदिर में आकर जुडते हैं । सब मिलकर ब्रह्मांड के अधिपति, सर्वेश्वर भगवान से अनुग्रह की प्रार्थना करते हैं - ''अंड के अधिप - हम पर कृपा करो ।

शालग्राम के चारों ओर मधुकरों से भरे सुन्दर-सुन्दर उपवन हैं । उपवनों के बीच कई निर्मल पानी के सरोवारों के पास खेत हैं । खेतों से मछलियों के संचरित होने से - अर्थात् मछलियों के उछलकर, उपवन के सरोवरों में उठे कमल कलियों पर गिरने से शीतल कमलों का मुंह विकसित होता है, जहां भगवान विराजमान हैं । हे मन ! शालग्राम पहुँचो ।

तारा आरुम् वयल् शूळ्न्द
चालक्किरामत्तु अडिहळै,
कार् आर् पुरविन् मंगै वेन्दन्
कलियन् ऑलि शॅय् तमिळ्-मालै,
आर् आर् उलहत्तु अरिवु उडैयार्,
अमरर् नल् नाट्टु अरशु आलप्
पेर् आयिरमुम् ओदुमिन्कळ्;
अंड्रि, इवैये पितर्टुमिने । (10)

श्री विष्णु सहस्रनाम के पारायण से जो फल प्राप्त होता है, वही फल इन दिव्य सूक्तियों के पठन से प्राप्त होता है । दोनों का अनुसन्धान मोक्ष प्रदायक है । भूमण्डल के निवासियों में जो वैराग्यपूर्ण, ज्ञानी एवं विवेकी पुरुष हों, अमरों

के उत्तम जनपद, परमधाम का राजत्व प्राप्त करने अर्थात् भगवान के चरण प्राप्त करने के लिए, विष्णु सहस्रनाम का पारायण करते हैं। अथवा शीतल उपवनों से परिवृत तिरुमंगै प्रदेश के नृपति कलियन् (तिरुमंगै आळ्वार) के द्वारा, शीतल खेतों से व्याप्त सारस पक्षियों के समूहों से भरे, शालग्राम में विराजमान भगवान के प्रति जो नाद-मय तमिळ् माला रची (सूक्तिमाला) उसे बिना अर्थ समझे ही क्यों न हो, भक्तिभाव से पाठ करो - या बड़बड़ाओ।

भगवान के असंख्य गुणों को प्रकट करनेवाले सहस्र नाम पारायण का जो महत्व है, वही महत्व असंख्य लाखों, करोड़ों मूर्तियों से विभूषित शालग्राम विषयक इन दिव्य सूक्तियों के पारायण का भी है।

तिरुमंगै आळ्वार के श्री पादों की जय हो।

# नैमिषारण्यम् (निम्सार क्षेत्र)
# पॆरिय तिरुमॊऴि

## तिरुमंगै आऴ्वार

वाऴ् निला मुरुवल्, शिरु नुदल्, पॆरुन् तोळ्
मातरार् वन मुलैप्पयने
पेणिनेन्; अदनैप् पिऴै ऎनक् करुदि
पेदैयेन् पिरवि नोय् अरुप्पान्,
एण् इलेन् इरुन्देन्; ऎण्णिनेन् ; एण्णि,
इळैयवर् कलवियिन् तिरत्तै
नाणिनेन् वन्दु, उन् तिरुवडि अडैन्देन्-
नैमिशारणियत्तुळ् ऎन्ताय ! (1)

**अवतारिका**

नैमिषारण्य में भगवान अरण्य रूप में (विराजमान हैं) पूजे जाते हैं। ऋषि मुनियों के पूछने पर ब्रह्मा ने उनको बताया कि भूलोक में नैमिषारण्य ही तपस्या, यज्ञ आदि करने का उत्तम क्षेत्र है। श्रीमद्भागवत आदि दूसरे पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि ऋषि मुनिगण सम्मिलित होकर कई वर्षों तक नैमिषारण्य में यज्ञों का अनुष्ठान करते थे। यह क्षेत्र सभी पापों को दूर करनेवाला धर्मक्षेत्र के रूप में प्रशस्त है।

महालक्ष्मी के पुरुषकारत्व (शिफारिश) को लेकर शरणागति करना ही जीव का स्वरूप माना जाता है। इसके अनुसार आऴ्वार श्री महालक्ष्मी के पुरुषकारत्व में यहां विराजमान भगवान के श्री चरणों में शरणागति करते हैं।

शरणागति के वक्त भगवान की श्रेष्ठता और अपनी हीनता (आकिंचन्य) प्रकट की जाती है। अपने अज्ञान से कृत पापों पर निर्वेदित होकर पश्चाताप प्रकट करना ही प्रायश्चित है। इससे सब पाप और दोष दूर हो जाते हैं।

कोई व्यक्ति हीन एवं पाप प्रवृत्तियों को छोड़कर, संसार के विषय भोग से छूटकर ज्ञान, वैराग्य द्वारा पुरुषार्थ प्राप्त करना भगवान का अनुग्रह और कृपा दृष्टि होने पर ही संभव है। भगवान की प्राप्ति ही सब से बडा पुरुषार्थ है। अब भगवान ने आऴ्वार को अपना लिया है।

उपायशून्य एवं असमर्थ व्यक्ति किसी करुणामूर्ति समर्थ व्यक्ति को अपने रक्षक के रूप में वरण करता है, तो वह शरणागति कहलाता है। शरणागति के लिए पुरुषकार (शिफ़ारिश) की आवश्यकता भी होती है।

इस दशक में आळ्वार नैमिषारण्य में विराजमान भगवान के चरणों में शरणागति करते हैं। ऐसे समय अपने कृत भूल और पापों का स्मरण आना स्वाभाविक है। आळ्वार अपने दोषों को प्रकट करते हुए अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

(पदों में बताए दोष हमारे अनुसन्धान के लिए मात्र है। वास्तव में आळ्वार के नहीं)

नैमिषारण्य में विराजमान हे मेरे स्वामी ! पहले अज्ञानी दास मैं सुन्दर ललनाओं के वश में था। जिनके मुंह पर पूर्ण चन्द्र के समान मंदहास है, माथा छोटा है, और पुष्ट भुजाएं हैं, ऐसी स्त्रीयों की सुन्दर पयोधरों की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाकर विषय भोग में लगा रहा। उनका आदर करता रहा। चपलता के कारण इसके बारे में विचार कर यह निश्चय नहीं कर सका कि यह कोई प्राप्त करने लायक वस्तु नहीं है। पहले इसे भूल एवं पाप समझकर, जन्म-व्याधि के अर्थात् संसार बंधन से मुक्त होने का विचार नहीं किया। इसका ज्ञान भी नहीं था। फिर आपकी कृपा से आपसे ही अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश प्राप्त किया। उसका जप करते हुए, अपने स्वरूप के बारे में विचार एवं मनन करने लगा। आपकी कृपा दृष्टि से युवतियों के संग एवं भोग के प्रकार से लज्जित हुआ। उसमें जीवन को सर्वनाश करने की शक्ति को समझकर विषय भोग में जुगुप्सा पैदा हुई। वैराग्य पैदा हुआ। विषय एवं भोग-लिप्सा से निवृत्त हुआ। भव व्याधि से छुटकारा पाने, पवित्र होकर, आपके चरणों में पहुँचकर, श्री चरणों को प्राप्त किया। नत- मस्तक होकर शरणागति की है। नैमिषारण्य में विराजमान मेरे स्वामी !

शिलंबु अडि उरुविन् करु नेडुङ् कण्णार्
तिरत्तनाय्, अर्त्तैये मर्न्दु ,
पुलन् पडिन्दु उण्णुम् बोहमे परुक्कि,
पोक्किनेन् पाळुदिनै वाळा;
अलम् पुरि तडक्कै आयने ! माया !
वानवरक्कु अरशने ! वानोर्
नलम् पुरिन्दु इरैञ्जुम् तिरुवडि अडैन्देन् -
नैमिशारण्यत्तुळ् एन्ताय्। (2)

भगवान के चरणारविन्दों के पास पहुंचते ही अपने जन्म जन्मान्तर के पाप और अपने किए बुरे कृत्यों पर पश्चाताप होता है । आळ्वार का कथन है कि इस प्रकार भगवान् के चरणारविन्दों के कैंकर्य के आनन्द सागर में निमग्न रहने के बदले विषय भोगों में लगकर अब तक मैंने अपना जीवन नष्ट कर दिया । नूपुर से भूषित सुन्दर चरण और दीर्घ नयनवालियों के संग में पडकर, धर्म के रास्ते से भटककर, इन्द्रिय सुख से प्राप्त भोगों को बढाकर, अपना जीवन व्यर्थ गंवाया । (निर्वेद प्रकट करते हैं ।) अर्थियों के तृप्त होने तक देनेवाले दानी ! दीर्घ हस्त अहीर ! मायी ! इन्द्र आदि देवों के अधिराज ! नैमिषारण्य में विराजमान मेरे स्वामी ! अब आपके श्रीचरणों को प्राप्त किया है,जिससे प्रेमकर नित्यसूरिगण प्रणति करते हैं ।

शूदिनैप् परुक्कि, कळविनैत् तुणिन्दु,
शुरि कुळ्ल् मडन्दैयर् तिरत्तुक्
कादले मिहित्तु कण्डवा तिरिन्द
ताण्डनेन् नमन्-तमर् चॅय्युम्
वेदनैक्कु ऑडुङ्गि नडुङ्गिनेन्; वेलै
वण् तिरै अलमरक् कडैन्द
नादने ! वन्दु, उन् तिरुवडि अडैन्देन्
नैमिशारण्युत्तुळ् एन्ताय ! (3)

सुन्दर केशवाले स्रीयों के मोह में पडकर उनको देने, धन प्राप्ति के लिए जुआ खेल दूसरों को वंचित किया । कई स्थानों में चोरी करने का साहस किया । कुटिल कुंतलवाली स्रीयों के पीछे पडा । इस प्रकार कुमार्ग में भटककर, अपना जीवन व्यर्थ गंवाया । सौभाग्य से अब मैं तुम्हारा दास बन गया । अपने शरीर और आत्मा की जो दुर्दशा हुई, उसे देखकर भयभीत हो कांप उठता हूँ । राजा के राज-कर्मचारियों से तो किसी प्रकार बच गया । अब बुढापे में यम किंकर मेरे कृत पापों के लिए अवश्य दंड देंगे । भविष्य की इस वेदना से भयभीत होकर उससे बचने आपके शरण में आया हूँ । आपकी कृपा से किसी प्रकार नैमिषारण्य पहुंच गया हूँ । समुद्र की धवल तरंगें क्षब्ध हुईं, इस प्रकार अमृत प्राप्त करने समुद्र मंथन करनेवाले मेरे स्वामी ! आप जिस प्रकार देवों के नाथ हैं, उसी प्रकार मेरे भी नाथ हैं । हे नैमिषारण्य के प्रभु ! मैं आपकी शरणों में पहुँच गया । आपके चरण ही मेरे रक्षक हैं ।

वम्बु उलाम् कून्दल् मनैवियैत् तुरन्दु,
पिरर् पोरुळ्, तारम् एन्ड्रु इवर्ट्रै
नम्बिनार् इरन्दाल्, नमन् तमर् पर्ट्रि,
एर्ट्रि वैत्तु, एरि एळुहिंड्र
शम्बिनाल् इयन्ड्र पावैयै, पावी !
तळुवु एन मोळिवदरक्कु अञ्जि,
नम्बने ! वन्दु ! उन् तिरुवडि अडैन्देन् -
नैमिशारण्यत्तुळ् एन्ताय् ॥ (4)

सुगन्धित केशवाली अपनी धर्मपत्नी को तजकर दूसरों के धन और दारा आदि के आसक्त एवं उसी को अपना ध्येय माननवाले मर जाते हैं तो यम किंकर उनको पकडकर लात मारकर नरक ले जाते हैं। वहां कहीं डालकर हरेक को जलती तांबे की बनी प्रतिमा से आलिंगन करने वाध्य करते हैं। हे पापी ! "इसे आलिंगन करो"। ऐसे दण्ड से भयभीत होकर कांप उठता हूं। नैमिषारण्य के मेरे प्रभु ! आप ही मेरे रक्षक हैं। रक्षा के लिए आपके चरणारविन्द में पहुँच गया हूँ। हे नैमिषारण्य के मेरे प्रभु !

आपका पादारविन्द हमारे सभी पापों को दूर करने का एकमात्र साधन है।
इडुम्बैयाल् अडर्प्पुण्डु, इडुमिनो तुर्टु एन्ड्रु
इरन्दवर्क्कु इल्लैये एन्ड्रु
नेडुञ्चोलाल् मरुत्त नीचनेन्, अन्दो ।
निनैक्किलेन् विनैप्पयन्-तन्नै ;
कडुञ्चोलार्, कडियार्, कालनार् तमराल्,
पडुवदु ओर कोडु मिरैक्कु अञ्जि,
नडुङ्गि नान् वन्दु, उन् तिरुवडि अडैन्देन् -
नैमिशारण्यत्तुळ् एन्ताय् । (5)

अपनी दयाहीनता एवं कृपणता के बारे में कहते हैं कि गरीबी से पीडित होकर, अन्न के अभाव में असह्य भूख से परेशान लोगों को एक कौर अन्न मांगनेवालों को, अन्न देकर उनकी भूख नहीं मिटायी। उनका दुःख दूर नहीं किया। उलटा अपने क्रूर वचनों से उनका तिरस्कार करनेवाला लोभी एवं नीच ठहरा। उस वक्त ऐसे पापों के परिणाम के बारे में सोचा तक नहीं। हाय ! अब मरने के बाद यमलोक में, क्रूर वचन तथा कठिन चित्तवाले यम के किंकरों के द्वारा मिलनेवाली दारुण पीडा से भयभीत हो, थरथरा, आपके श्रीचरणों को ही

अपना रक्षक पाया और प्राप्त किया। नैमिषारण्य में विराजमान मेरे स्वामी ! आप ही उस नरक पीडा से मेरी रक्षा कर सकते हैं।

कोडिय मनत्ताल् शिनत् तोळि़ल् पुरिन्दु,
तिरिन्दु, नाय् इनतोडुम् तिळैत्तिट्टु,
ओडियुम् उऴन्ड्रुम् उयिर्हळे कान्ड्रेन्,
उणर्विलेन् आदलाल्; नमनार्,
पाडियैप् परिदुम् परिशु अळि़त्तिट्टेन्;
परमने, पार्कडल् किडन्दाय् !
नाडि नान वन्दु, उन् तिरुवडि उडैन्देन -
नैमिशारणियत्तुळ् एन्ताय् ! (6)

इस संसार में रहते हुए यम और नियम दोनों को पालन करना होता है। पहले मनुष्यों में पाए जानेवाले काम, क्रोध आदि का उल्लेख था। अब हिंसा आदि दुर्गणों का उल्लेख है। जो संसार के यम एवं नियम आदि का पालन नहीं करता, उसे यमलोक में यातनाएं भोगनी पड़ेगी। ज्ञानशून्य मैं वक्र बुद्धि से, दूसरों का अहित करते हुए, क्रोध से प्रेरित, कुत्तों के साथ, कई नीच लोगों के संग, जंगलों में शिकार करते हुए इधर-उधर भटककर विवेक हीन होकर, जीव हिंसा में लगा था। हाय ! उस वक्त परलोक एवं परमेश्वर का ज्ञान ही नहीं था। मेरे पापों ने यमलोक की महिमा को भी ध्वस्त कर दिया। मेरे कृत घोर पापों के लिए वहां कोई दंड का विधान ही नहीं रह गया। हे पुरुषोत्तम ! क्षीरसागर में शयन करनेवाले ! नैमिषारण्य के प्रभु ! अब अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही अपने पाप कृत्यों पर पश्चात्ताप कर पाप मुक्त होने आपके चरणों में पहुँच गया हूँ। आपकी कृपा से उन पाप कर्मों से मुक्ति प्राप्त की है।

नॅञ्जिनाल् निनैन्दुम्, वायिनाल् मॉळि़न्दुम्
नीदि अल्लातन चॅय्दुम्,
तुञ्जिनार् शॅल्लुम् ताल् नॅरि केट्टे
तुळंगिनेन्: विळंकनि मुनिन्दाय् !
वञ्जनेन्, अडियेन् नॅञ्जिनिल् पिरिया
वान्वा ! दानवरक्कु एन्ड्रुम्
नञ्जने ! वन्दु, उन् तिरुवडि अडैन्देन् -
नैमिशारणियत्तुळ् एन्ताय् ! (7)

सत्पुरुषों के चिंतन, वचन और काम तीनों एक ही प्रकार, समान होते हैं। जो इस प्रकार नहीं करते, वे असत् पुरुष कहलाते हैं। पाप कार्यों को सोचना ही पाप है। कहना अधिक पाप है और करें तो पूछना ही क्या? ऐसे असत पुरुष नरक में यातनाएं भोगते हैं। इन बातों को सुनकर तथा अपने व्यतीत पाप जीवन का स्मरण करके भयभीत हो जाता हूँ। हे कपित्त फल तोडनेवाले ! (कंस से प्रेरित जो असुर कृष्ण को मारने आए उनमें से एक कपित्त फल का पेड बना, दूसरा बछडा। कृष्ण ने खेल-खेल में ही उस बछडे (वत्सासुर) को उठाकर कपित्त के पेडपर फेंका। इससे दोनों असुर मरे। मुझ दास के मन से कभी अलग न होनेवाले देव ! दानवों को हमेशा विष समान होनेवाले ! (कपट भक्त होने पर भी) तुम्हारे श्री चरणों को प्राप्त किया। जब से मैं आपका दास बना, दास के मन से आप कभी अलग नहीं हुए। नैमिषारण्य में विराजमान मेरे स्वामी !

एविनार्, कलियार् नलिह एन्डु एन्मेल् -
ऍड्ड्ने वाळुम् आरु? - ऐवर् ;
कोविनार् शेय्युम् काडुमयै मडित्तेन् ,
कुरुङ्कुडि नेडुङ् कडल् वण्णा !
पाविन् आर् इन् शोल् पल् मलर् कोण्डु, उन्
पादमे परवि, नान् पणिन्दु, एन्
नाविनाल्, वन्दु, उन् तिरुवडि अडैन्देन् —
नैमिशारणियत्तुळ् एन्ताय्। (8)

कलिकाल का स्वभाव है - मनुष्य मात्र को कुपथ पर ले चलना। इन्द्रियों को प्रेरित कर वह मनुष्य से पाप कार्य कराता है। कलि के प्रभाव के कारण मैं भी उसके वश में था। परन्तु सौभाग्य से मुझपर भगवान की कृपा दृष्टि पडी। इन्द्रियों को वश में कर लिया। उनके क्रूर कार्यों से छुटकारा पाया।

कुरुंकुडी में निवास करनेवाले, विशाल सागर जैसे स्वभाव वाले मेरे स्वामी! हे मेरे नंबि ! अब मैं सुन्दर छन्दों से बद्ध, मधुर शब्द रूपी विविध पुष्पों (पद) से आपके चरणों की स्तुति करता हूँ और प्रणाम करता हूँ। मेरी जिह्वा अब सफल हुई। यह मेरा अहोभाग्य है। नैमिषारण्य निवासी हे मेरे स्वामी ! अब आपके शरणों में शरणागत होकर आपके श्री शरणों को प्राप्त कर लिया।

ऊन् इडैच् चुवर् वैत्तु, एन्पु तूण् नाट्टि,
उरोमम् वेय्न्दु, ऑन्पदु वाशल-
तान् उडैक् कुरम्बै पिरियुम् पोदु, उन्-तन्
चरणमे शरणम् एन्डु इरुन्देन्;
तेन् उडैक् कमलत् तिरुविनुक्कु अरशे !
तिरै कॉळ् मा नेडुङ्कडल् किडन्ताय् ।
नान् उडैत् तवत्ताल् तिरुवडि अडैन्देन् —
नैमिशारणियत्तुळ् एन्ताय् । (9)

मधु भरे कमल पर विराजमान लक्ष्मीपति ! तरंगोंवाले विशाल क्षीरसागर में शेष शय्या पर शायित मेरे स्वामी ! नैमिषारण्य के प्रभु ! अपने भाग्य एवं तपस्या से मैंने तुम्हारे श्रीचरणों को प्राप्त कर लिया है । यहाँ अपने शरीर को एक कुटी के रूप में रूपक बांधते हैं । कुटी में जिस प्रकार बीच-बीच में दीवार होती है, उसी प्रकार बीच २ में मांस पिंड की दीवार खडी कर, खंभे के स्थान पर हड्डियां स्थापित कर, छत की बनावट रोम से आच्छादित कर नवद्वार वाली कुटी, अर्थात् मेरा शरीर बना है । जिस प्रकार हम कुटी में रहते हैं, उसी प्रकार शरीर में आत्मा का वास है । शरीर से आत्मा का निकल जाना ही मृत्यु है । मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि उस वक्त (मृत्यु) आपके चरण ही शरण हैं ।

आळ्वार भगवान के श्रीचरणों में श्री महालक्ष्मीजी के पुरुषकारत्व में शरणागति करते हैं ।

आळ्वार का अनुभव है । मेरे भाग्य का फल, तपस्या का फल मिल गया । आपके चरणारविन्दों में पहुंच कर शरणागति कर ली । अब यम भटों से कोई डर नहीं । शरीर के छूट जाने के बाद, (आत्मा को) मोक्ष-प्राप्ति का जो आनन्द मिलेगा, वह नैमिषारण्य के भगवान के श्री चरणों में पहुंचते ही प्राप्त कर लिया ।

एदम् वन्दु अणुहावण्णम् नाम् एण्णि,
एळ्ळुमिनो ताँळुदुम् एन्डु इमैयोर् -
नादन् वन्दु इरैञ्जुम् नैमिशारणियत्तु
एन्दैयैच् चिन्दैयुळ् वैत्तु,

कादले मिहुत्त कलियन् वाय् ऑलिशॅय्
मालै-तान् कर्टु वल्लार्हळ्
ओद नीर् वैयम् आण्डु, वण् कुडैक् कीळ्,
उम्बरुम् आहुवर्, तामे । (10)

यह फलश्रुति सूक्ति है । देवराज इन्द्र सभी देवों को आह्वान करते हैं । उठिए । आइए !! हम सब नैमिषारण्य पहुँचकर वहां के भगवान के दर्शन कर कृतार्थ बनेंगे । हमारे सभी दुःख दूर हो जाएंगे और आगे हमें किसी प्रकार का दुःख नहीं होगा । इस तरह विचार कर सब को साथ लेकर देवेन्द्र नैमिषारण्य में उपस्थित होकर भगवान की वन्दना करते हैं । ऐसे भगवान का चिंतन करते-करते, भक्ति भाव से भरपूर कलियन (आळ्वार) द्वारा रचित गीत माला का जो अध्ययन करते हैं, और अर्थज्ञान प्राप्त करते हैं, वे समुद्र से परिवृत भूमंडल पर शासन करने के बाद नित्यसूरि बन जाएंगे । इसलिए चलिए- हम पर भी कोई पाप न लगे - हम भी नैमिषारण्य के भगवान के दर्शन करें और कैंकर्य में लग जाएं ।

# अयोध्या

आळ्वारों के द्वारा मंगलाशासित दिव्य क्षेत्रों में, कुछ क्षेत्रों के बारे में, कई आळ्वारों द्वारा अनुगृहीत दिव्य सूक्तियां हैं। (अलग दशक नहीं) अयोध्या के बारे में 13 सूक्तियां हैं। उनमें से 7 चुनी हुई सूक्तियां यहां संगृहीत हैं।

## पॅरियाळ्वार (श्री विष्णुचित्त)

मैत् तहु मा मलर्क्कुळ्लाय् ! वैदेवी विण्णप्पम्:
अत्ति पुह्ळ् वान्रक्कोन् उडन् इरुन्दु निनैत्तेड
अत्तहु शीर् अयोत्तियर्कोन् अडैयाळ्म् इवै मोळ्न्दान्
इत्तहैयाल् अडैयाळम्; ईदु अवन् कैम्-मोदिरमे ॥ (1)

श्री रामावतार के प्रसंग में रामावतार का, हनुमान के वचनों के द्वारा श्री पॅरियाळ्वार अनुभव करते हैं।

अशोकवन में रावण की कटूक्ति और राक्षसियों के तर्जन से सीता बहुत दुःखी थी। वे आत्महत्या कर लेने तक उद्यत हुई। उस समय शिंशुपा वृक्ष में छिपे हनुमान् राम-चरित्र का कीर्तन करते हुए, उनके सम्मुख उपस्थित हुए। सीता को बडा आनन्द हुआ, साथ ही यह संदेह भी हुआ कि क्या यह सचमुच राम का दूत है। अथवा कोई कपट वेष धारी है। सीताजी की शंका को निवृत कर उनको विश्वास दिलाने के लिए, श्री रामचन्द्र के प्रोक्त अभिज्ञानों को श्री हनुमान क्रमशः स्पष्ट रूप से निवेदन करते हैं। इस दशक में कई अभिज्ञानों का उल्लेख है। अंत में अपने (हनुमान) द्वारा भेजे श्री रामचन्द्रजी की अंगूठी को समर्पित किया। इस सूक्ति में उसका विवरण है। इससे सीताजी को बड़ी शांति मिली। हनुमान अपनी बिनती सुनाते हैं।

राम के साथ अयोध्या में रहते वक्त, अंजन सम, नील उत्तम पुष्पालंकृत केशों से युक्त वैदेही ! मेरी एक बिनती सुनिए ! श्री राम के सुख दुःख में बराबर भाग लेनेवाले कीर्तिमान वानराधिप सुग्रीव जब रामचन्द्रजी के साथ रहकर, आपकी खोज में चारों दिशाओं में दूत भेजने का प्रबन्ध कर रहे थे, तब दास के ऊपर विशेष कृपा करके, श्री राम ने मन में यह विचार किया कि "यह इस काम को पूरा करने का सामर्थ्य रखता है"। तब समुचित गुणों से युक्त अयोध्या के महाराज श्री रामचन्द्रजी ने जो अभिज्ञान कहे, जिनका मैंने उसी प्रकार, जैसा उन्होंने कहा आप से निवेदन किया है। यह है उनके हाथ की अंगूठी। आपको

देने के लिए दिया था। यह निवेदन करते हुए श्री हनुमान ने श्री रामचन्द्र की दी हुई अंगूठी को श्री सीता के हाथ समर्पित किया।

## कुलशेखर आळ्वार (पॆरुमाळ् तिरुमॊऴि)

शुट्रम् ऍल्लाम् पिन् तॊडरत् तॊल् कानम् अडैन्दवने !
अट्र्वर्कट्कु अरुमरुन्दे ! अयोत्ति नहर्क्कु अदिपतिए।
कट्र्वर्हल् ताम् वाळुम् कणपुरत्तु ऍन् करुमणिए !
शिट्र्वैतन् शॊर्कॊण्ड श्रीरामा ! तालेलो ॥ (2)

कुलशेखर आळ्वार रामावतार में बडे आसक्त थे। इसमें भगवान रामचन्द्रजी के गुणों का अनुभव करते हैं। भगवत् भक्तों के संग रहकर, भक्त का जीवन बिताने के उद्देश्य से अपने राज्य की ज़िम्मेवारी से छुटकारा पाकर (अपने पुत्र को सौंपकर) श्रीरंगम पहुंच जाते हैं। ये चेर वंश के राजा थे। ये बडे भावुक हैं। अपने को ही कौसल्या माता मानकर भगवान राम को पालने में सुलाते हैं - लोरी (तालाट्टु) - सुनाते हैं। (तालाट्टु - बच्चों को सुलाते वक्त माताएं जो गाना (लोरी) गाती हैं उसे तमिळ् में तालाट्टु कहते हैं)

अपने पिता दशरथ की आज्ञा मानकर, श्री रामचन्द्र सीता एवं लक्ष्मण के साथ वन-वास के लिए निकलते हैं। अयोध्या की प्रजा के लिए उनका विरह असह्य था। इसलिए मना क़िए जाने पर भी, श्री रामचन्द्रजी का अनुकरण करते हुए उनके साथ चलने लगी।

तमसा नदी किनारे रात को सब के सोते वक्त श्री राम, सीता और लक्ष्मण के साथ, जंगल में आगे बढ़ गए। प्रजा सबेरे जागने पर श्री रामचन्द्र को न पाकर बहुत दुःखी हुई। इसलिए उनको लाचार होकर अयोध्या वापस आना पड़ा। हाँ, राम और सीता की सेवा करने के लिए श्री लक्ष्मण, बंधु-बांधव के रूप में, उनके साथ गए।

इस तरह सीता और लक्ष्मण जैसे बांधवों से अनुगत होकर, कानन में प्राचीन दण्डकारण्य क्षेत्र में पहुंचनेवाले ! आपके प्रेम (भक्ति) में लीन सब को त्यागकर, विरक्त भक्तों के अनमोल औषध स्वरूप ! (संसार संबन्धी रोगों को दूर करने) अयोध्या नगर के अधिपति ! ऋषि मुनियों के रक्षक ! ज्ञानी लोगों के निवास स्थान कण्णपुरम में विराजित मेरे स्वामी ! मेरे नीलमणि ! छोटी माता कैकेयी की इच्छा का आदर करनेवाले ! श्री रामा-तालेलो, आराम से सोओ।

## (कुलशेखर आळ्वार)

आलिन् इलैप्-बालकनाय् अन्ड्रु उलहम् उण्डवने !
वालियैक् कॊन्ड्रु अरशु इळैय वानरत्तुक्कु अळित्तवने !
कालिन् मणि करै अलैक्कुम् कणपुरत्तु एन् करुमणिये !
आलि नहरक्कु अधिपतिये ! अयोत्तिमने ! तालेलो ! (3)

महाप्रलय के वक्त एक वट-पत्र पर बालक के रूप में शयन कर, उस दिन संपूर्ण लोक निगलनेवाले ! वाली को मारकर उसके भाई सुग्रीव को राज्य देनेवाले ! नहरों के प्रवाह में बहकर आनेवाले मणि आदि जिसके तीर पर भरे पडे हैं, उस कण्णपुर के नीलमणि ! मेरे आंखों के तारे ! आलि (तिरुवालि) नगर दिव्य क्षेत्र के अधियति ! अयोध्या के स्वामी ! तालेलो ! आनन्द से सोओ !

अड्कण् नॆडु मदिल् पुडै शूळ् अयोत्ति एन्रुम्
अणि नहरत्तु उलहु अनैत्तुम् विळक्कुम् शोति
वॆन्ड् कतिरोन् कुलत्तुक्कु ओर् विळक्कायत् तोन्ड्रि
विण् मुळुदुम् उयक् कॊण्ड वीरन् तन्नैच्
चॆड्कण् नॆडुड् करु मुहिलै इरामन् तन्नैत्
तिल्लैनगर् तिरुच् चित्रकूडन् तन्नुळ्
एङ्गळ् तनि मुदल्वनै एम्पॆरुमान् तन्नै
एन्ड्रु कॊलो ! कण् कुळिरक् काणुम् नाळे ॥ (4)

कुलशेखर राजकाज से बचे समय में, श्री रामचन्द्रजी की पवित्र कथा के श्रवण, चिंतन और मनन में ही लगे रहते थे । पौराणिकों के मुंह से राम कथा सुनकर भावुक हो जाते थे और तुरन्त भक्त गोष्ठी में पहुंचकर राम का नाम संकीर्तन करते हुए भगवान के दर्शन करने की अभिलाषा तीव्र होती थी । लेकिन राज्य के शासकीय ज़िम्मेदारियों के कारण तुरन्त जा नहीं पाते थे । अपनी मानसिक वेदना प्रकट करते हैं कि ये आंखें, बिना उनके दर्शन के, दुःखी हैं, कब उनके दर्शन करेंगी? पूर्वाचार्यों का कथन है कि इसमें इतना अभिनिवेश है कि इस भावना में डूबकर दर्शन का सा आनन्द पाते हैं । (इस दशक की यह प्रथम सूक्ति है ।) श्री वाल्मीकि ने जिस प्रकार राम चरित्र का अनुभव किया, उसी प्रकार आळ्वार स्वयं अनुभव करते हैं । पूर्वजों का कथन है कि यह दशक रामायण का सारांश - संक्षिप्त रामायण है ।

गंभीर और विशाल प्राचीरों से चारों ओर परिवृत सुन्दर अयोध्या (युद्ध करके जीत न सकनेवाला) सुन्दर नगर में, समस्त लोकों को प्रकाशित करनेवाले, अपनी कांति एवं ज्योति से सूर्य वंश को प्रकाशमय बनानेवाले, एक अनुपम दीप के समान अवतरित होकर, सभी देवताओं का दुःख दूर कर, सुखी जीवन प्रदान कर उज्जीवित करनेवाले, अरुण लोचन एवं विपुल नील मेघ सदृश रूपवाले, तिल्लै तिरुचित्रकूट में विराजित हमारे स्वामी अद्वितीय नायक, हमारे एक मात्र अधिपति, संसार के समस्त जीवों के रक्षक को कब मैं आंख भर दर्शन कर सकूंगा ? दर्शन से आंख शीतल कर सकूंगा ? दर्शन का दिन कौन सा होगा ? राम दर्शन के इस अभिनिवेश में भावुक हो जाते हैं।

## कुलशेखर आळ्वार

अम् पान् नंडु मणिमाड अयात्ति एंय्दि,
अरशु एंय्दि, अहत्तियन् वाय्त् तान् मुन् कान्ड्रान्
तन् परुन्ताल् कदै केट्टु, मितिलैच् शल्वि
उलहु उय्यत् तिरु वयिरु वाय्त्त मक्कळ्
चम्पवळत् तिरळ्वाय्त् तन् चरितै केट्टान् :
तिलैनहर्त् तिरुच्चित्रकूटन् तन्नुळ्
एम् परुमान् तन्चरितै शवियाल्, कण्णाल् ,
परुहुवोम्; इन्नमुदम् मदियोम् आन्ड्रे ॥ (5)

अपनी प्रिय महिषी सीता, (लंका से छुडाकर) लक्ष्मण, विभीषण एवं सुग्रीव प्रभृति के साथ, पुष्पक विमान में सवार होकर, सुन्दर, सुनहले, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित ऊंचे प्रासादवाले अयोध्या वापस पहुंचकर (14 वर्ष बाद) अभिषिक्त होकर, राज सिंहासन प्राप्त किया। उनके राज्य शासन के वक्त कई ऋषि मुनि गण समय-समय पर वहां पहुँचते थे। उनसे, स्वयं जिस रावण को पहले मारा, उनके लंबे पूर्व-वृत्तान्तों को सुनकर, लोककल्याण और लोकोद्धार के लिए राम महिषी एवं मिथिला की लक्ष्मी ने (सीताजी) जिन दो बालकों को जन्म दिया, अपने ही पुत्र लव, कुश के अरुण प्रवाल तुल्य सुन्दर मुंह से अपना चरित्र श्रवण करनेवाले हमारे प्रभु तिल्लै-तिरुचित्रकूट में विराजमान् हैं। हमारे प्रभु के चरित्र को कान से श्रवण कर, आंख भर दर्शन करेंगे। मिठास का अनुभव करेंगे। अमृत सदृश भगवान के दर्शन का मिठास उसी प्रकार उन प्रभु

के चरित्र के मिठास की तुलना में देवामृत भी बराबरी नहीं कर सकेगा। अर्थात् मधुर अमृत को भी कुछ नहीं मानेंगे।

## तिरुप्पळ्ळि यॅळुच्चि- (प्रबोधन गीत)
## तॉण्डर-अडिप्-पोडि आळ्वार
## (श्री भक्तांघ्रि रेणु)

मेट्टु इळ मेदिहळ् तळै विडुम् आयर्हळ्
वेय्ङ्कुळ्ल् ओशैयुम् विडै मणिक्कुरलुम्
ईट्टिय इशै दिशै परन्दन; वयलुळ्
इरिन्दन शुरुम्बिनम्; इलंगैयर् कुलत्तै
वाट्टिय वरिशिलै वान्वर् एरे!
मा मुनि वेळ्वियैक् कात्तु अवपिरदम्
आट्टिय अडु तिरल् अयोत्ति एम् अरशे!
अरंगत्तम्मा! पळ्ळि एळुन्दरुलाये॥ (6)

तॉण्डर अडिप् पॉडि आळ्वार द्वारा अनुगृहीत दो प्रबन्धों में तिरुप्पळ्ळि यॅळुचि एक है। यह प्रबोधन गीत है। भक्तगण विषयान्तरों से अपना मन छुडाकर, भगवत् विषय में तल्लीन होकर बडे सबेरे भगवान के दर्शनार्थ उनकी सन्निधि में पहुंचते हैं और प्रबोधन गीत गाते हैं। इस प्रबन्धकी (प्रबोधन गीत) यह चौथी सूक्ति है।)

अब प्रातःकाल का सुन्दर समय हो चला। देव वर्ग और ऋषि वर्ग दर्शन के लिए गोष्ठी बनाकर आ खडे हैं। अपनी योग निद्रा से उठो। दास का कैंकर्य स्वीकार करो और दया का पात्र समझकर अपने दासों का दास बना लो। कई उदाहरणों से सबेरा होने की बात बताते हैं। पृथु शरीरवाले और तरुण भैंसों का बंधन खोलकर गोप-वृन्द बंसी बजाते निकल चुके। वेणुनाद और गाय - भैंसों के गले में बंधी घंटियों के नाद की ध्वनि चारों दिशाओं में फैल गई है। खेतों में भ्रमर समूह गूंजते हुए मंडराने लगे हैं। राक्षस कुल वर्ग के विनाशक हे सुन्दर धनुर्धर! शार्ङ्गपाणि! देवाधिदेव! महर्षि (विश्वामित्र) का यज्ञ-संरक्षण कर उनकी यज्ञपूर्ति कराकर अवभृथ स्नान करानेवाले शत्रु विनाशक अयोध्या के अधिपति! हमारे स्वामी! संपूर्ण वैभव के साथ विराजमान हमारे रंगपति (श्रीरंग के रंगनाथ भगवान) नर शार्दूल! उत्तिष्ठ, उत्तिष्ठ! योग निद्रासे उठकर हम पर कृपा दृष्टि करो!

## तिरुवाय्मॉळि
## नम्माळ्वार (श्री शठकोप)

> कर्पार् इराम-पिरानै अल्लाल्, मर्रुम् कर्परो
> पुल्, पा मुदला, पुळ् एरुम्बु आदि ऑन्ड्रु इन्ड्रिए,
> नल्-पाल् अयोत्तियिल् वाळुम् चराचरम् मुर्र्वुम्
> नल्-पालुक्कु उय्त्तनन्-नान् मुहनार् पर्र् नाट्टुळे । (7)

नम्माळ्वार इस दिव्य सूक्ति में श्री रामचन्द्र के कतिपय चरित्रों का अनुसन्धान करते हैं । भगवान के ऐसे मनोहर चरित्रों का कीर्तन, ध्यान आदि छोडकर, क्षुद्र सांसारिक विषय भोग में निरत लौकिक जनों की दुरवस्था देखकर अपना आश्चर्य मिश्रित दुःख प्रकट करते हैं।

अयोध्या सात मुक्ति क्षेत्रों में से एक है । यह भक्ति की वृद्धि करनेवाला है । अयोध्यावासी-सिर्फ मनुष्य ही नहीं, अति क्षुद्र तृण, घास, चींटी इत्यादि समस्त चेतना-चेतन पदार्थ भी रामचन्द्रभी के कृपा-पात्र बने । जल प्रवाह जिस प्रकार (ऊंचे से) नीचे की ओर बहता है, इसी प्रकार रामचन्द्र का कृपा प्रवाह भी इन क्षुद्र जन्तुओं के प्रति बहता है । अयोध्यावासी राम गुणानुभव मात्र से सुखी थे । अयोध्या में रहनेवाले उपरोक्त सभी चेतन और अचेतन वस्तुओं को बिना किसी साधनानुष्ठान के, (कर्म, ज्ञान भक्ति योग के बिना) चतुर्मुख सृष्ट इस धरातल पर रहते हुए ही, अच्छे स्वभाव वाले - अर्थात् श्री रामचन्द्र के चरणों को ही अपने धारक, पोषक एवं भोग्यत्व के स्वभाववाले बनाया । जो बुद्धिमान एवं विवेकी लोग प्रिय एवं हित का अनुसन्धान करना चाहते हैं, वे सब को अपने प्रेमी बनानेवाले श्री राम को छोडकर और किसके बारे में जानना चाहेंगे? अनुसन्धान करना चाहेंगे? अर्थात् श्री राम के बिना प्रिय और हितैषी और कोई दूसरा नहीं ।

जब रामचन्द्रजी अयोध्या में निवास करते थे, तब वहां के घास, लता, वृक्ष, चींटी, मृग, पक्षी एवं मनुष्य आदि श्रीरामचन्द्र से इतना प्रेम करते थे कि उनके अरण्य प्रस्थान के समय उनके विश्लेष के दुःख से बहुत सन्तप्त हुए । उनके वापस आने पर प्रसन्नता के कारण और पुष्ट हुए । सबको अपने प्रेमी बनानेवाले श्री रामचन्द्र को छोड़कर विवेकी मानव और किसका चिन्तन करेगा? लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि संसारीजन इस महत्वपूर्ण विषय को छोड़कर क्षुद्र विषयों की चिन्ता में अपना समय गंवाते हैं । आळ्वार को लोक कल्याण और समस्त लोगों की चिन्ता है।

## उत्तर मथुरा (तिरुवडमदुरै)
## (वृन्दावन, गोवर्धन सहित)

पॅरियाऴ्वार द्वारा अनुगृहीत - पॅरियाऴ्वार तिरुमॉऴि

### गोवर्धन

अट्टुक् कुवि शोर्ट्रूप् परुप्पदमुम्
तयिर् - वावियुम् नॅय्-अळरुम् अडङ्कप्
पॉट्टत् तुर्द्रि मारिप् पहै पुणर्त्त
पॉरुमा कडल्वण्णन् पॉरुत्त मलै:
वट्टत् तडङ्कण् मड मान् कॅड्रिनै
वलैवाय्प् पर्द्रिक् कॉण्डु कुरमहळिर्
कॉट्टैत् तलैप्-पाल् कॉडुत्तु वळर्क्कुम्
गोवर्धनम् ऍन्नुम् कॉर्ट्रक् कुडैये ॥ (1)

गोकुल के गोप-गोपियों ने श्री कृष्ण की सलाह के अनुसार, यथावत् इन्द्र की पूजा के बदले, गोवर्धन पहाड की पूजा की । गोपों के द्वारा पका कर एकत्रित किया अन्न पर्वत और उसमें बहुमात्रा में मिलायी गयी दही की धारा और उसी के सदृश घृत-पाक, और घृत मिश्रित भात, नाना प्रकार के फल व तरकारी आदि सब का श्री कृष्ण की सलाह के अनुसार गोवर्धन गिरि को भोग लगाया । उन सब को एक साथ झट खाकर उस कार्य से इन्द्र को क्रोधित किया । इन्द्र के द्वारा वर्षा रूपी शत्रु को स्वयं उपस्थित करवाकर, तरंगित नील सागरवर्ण कृष्ण ने जिस गिरि को अपनी उंगली द्वारा उठाकर वर्षा से सब की रक्षा की, वह गोवर्धन रुपी विजय छत्री है, जिसमें रहनेवाली किरात कन्याएं बर्तुलाकार हरिण बच्चों को जाल से छुडाकर दूध में भीगी रुई से दूध पिलाती हैं । बडे प्रेम से उनका पालन करती हैं ।

### गोवर्धन - मथुरा (पॅरियाऴ्वार)

वन् पेय् मुलै उण्डदु ओर वाय् उडैयन्
वन् तूण् एन् निन्र्दु ओर् वन् परत्तै
तन् पेर् इट्टुक्कॉण्डु दरणि तन्निर्
दामोदरन् तांगु तडवरै तान् :
मुन्बे वऴि काट्ट मुशुक् कणङ्गल्

मुदुहिर् पॅयदु तम् उडैक् कुट्टन्कळैक्
कॉम्बु एर्द्रि इरुन्दु कुदि पयिर्ट्रुम्
गोवर्धनम् एन्नुम कॉर्ट्रक् कुडैये ॥ (2)

कपट वेष बनाकर आयी, बलिष्ठ दानवी (पूतना) का स्तन-पान करनेवाले (श्री कृष्ण) दामोदरने दृढ स्तंभ के समान स्थित एक सुदृढ भारी विशाल गिरि को अपनी उंगली में धारण कर, गो, गोपी, गोपों की रक्षा की थी। गाय-बछडों को रोज़ जंगल में ले जाकर, हरी-हरी घास चराकर उनका पालन करनेवाले कृष्ण का एक नाम गोवर्धन प्रसिद्ध है, गायों की वृद्धि करनेवाला। उसी प्रकार गाय बछडों को घास आदि देकर व उनकी वृद्धि करनेवाले पहाड का नाम भी गोवर्धन। उस विशाल गोवर्धन पहाड को उठाकर, बरसात के समय उसके नीचे सब को आश्रय देकर सब की रक्षा की। वह गोवर्धन रूप विजय छत्री है, जिसमें जंगली बंदर समूह अपने बच्चों को पीठ पर बांधकर, पेड की शाखाओं पर बैठकर, चढकर, एक शाखा से दूसरे पर कूदकर उन्हें खेलना-कूदना आदि सिखाते हैं।

## वृन्दावन - मथुरा
## नाच्चियार् तिरुमॉलि - (आण्डाळ श्री सूक्ति)

पट्टि मेय्न्दु ओर् कारेरु बलदेवर्क्कु ओर् कीळ्क् कन्ड्राय्
इट्टीरु इट्टु विलैयाडि इङ्गे पोदक् कण्डीरे?
इट्टमान पशुक्कळै इनिदु मरित्तु नीर् ऊट्टि
विट्टुक् कॉण्डु विळैयाड, विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ (3)

श्री कृष्ण (कण्णन्) के विरह से गोदा देवी विरह दुःख का अनुभव करती है। भगवान श्री कृष्ण उसके दुःख को दूर करते हुए, उसको अपना दर्शन देते हैं। वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाओं के जो दर्शन दिए, उसका वर्णन करती है। श्रीकृष्ण के दर्शन से प्राप्त आनन्द का अनुभव अवशात प्रकट होता है। इस दशक की एक विचित्र रीति प्रश्न और उत्तर के रूप में है। इसमें गोदादेवी प्रश्न करके स्वयं उसका उत्तर भी देती है। अर्थात् सहेलियों के दो दलों की कल्पना करते हुए - दो गोष्ठियों का रूप लेकर आनन्द का अनुभव प्रकट होता है। कुछ सहेलियां पूछती हैं - विविध लीलाएं करनेवाले हमारे श्री कृष्ण को कहीं देखा? स्वछन्द चरनेवाले एक काले वृषभ को बलदेव के अधीन, एक बछडा होकर, गर्व के साथ खेलते हुए इधर आते तुम लोगों ने देखा?

प्यारी सुन्दर गायों को प्रेम से रोककर, सब को एक साथ जमा कर पानी पिलाकर स्वतंत्र रूप से चरने, उन्हें जंगलों में छोड़कर, अपने मित्र गोपालों के साथ बृन्दावन में विहार करते हुए श्री कृष्ण को हमने देखा। इस प्रकार कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का सुन्दर चित्र है।

## नाच्चियार तिरुमॉळि (आण्डाळ) - वृन्दावन

अनुङ्ग एंन्नैप् पिरिवु चॅय्दु आयर्पाडि कवर्न्दु उण्णुम्
कुणुङ्गु नारिक् कुट्टेट्रैक् गॉवर्धननैक् कण्डीरे?
कणङ्कलोडु मिन् मेहम् कलन्तार् पोल, वनमालै
मिनुङ्ग निन्डु विलैयाड विरुन्दावनत्ते कण्डोमे। (4)

पिछली सूक्ति की तरह इसमें भी श्री कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन दो गोप सखियों के बीच बात-चीत की शैली में है।

मुझे विरह का दुःख भोगने यहां अकेले छोडकर, स्वयं तिरुआयप्पाडी पहुंच गए। वहां सब के साथ मिलकर आनन्द उठानेवाले मक्खन के गंधवाले, छोटे वृषभ के समान गोवर्धन अर्थात् गो समूह की वृद्धि करानेवाले श्री कृष्ण को तुम लोगों ने कहीं देखा क्या?

विद्युत एवं जलद के परस्पर मिलन के समान अपने मित्र मंडली के साथ, उन सब से मिलकर, वनमाला से भूषित चमकते श्याम वर्ण शरीरवाले श्री कृष्ण को हमने वृन्दावन में देखा।

मातवन् एंन् माणियिनै वलैयिर् पिळैत्त पन्दि पोल्,
एदुम् ऑन्डुम कॉळत्तारा ईशन् तन्नैक् कण्डीरे?
पीतह-आडै उडै ताळ, पॅरुङ् कार्मेहक् कन्डे पोल्,
वीदि आर वरुवानै विरुन्तावनत्ते कण्डोमे॥ (5)

श्रीयःपति श्री कृष्ण बहुमूल्य नील रत्न के समान मेरे लिए परम भोग्य हैं। जाल में फंसे शूकर की तरह अर्थात् पहले वह मेरे साथ थे। अब बिछुडकर मेरे बंधन से निकल गए। इसलिए ऐसे गर्वीले एवं प्रसन्न हो गए हैं कि कोई उसे अपने जाल में फंसा नहीं पाते। दूसरे की पहुंच के बाहर हैं। वे ही नहीं उनकी समस्त वस्तुएं भी। (अर्थात् उनसे और उनके प्रिय वस्तुओं से हम बिछुड गए।) ऐसे श्री कृष्ण को तुम लोगों ने कहीं देखा है?

जिनका पीतांबर वस्त्र कटि में से झूल रहा है, उन्नत नील मेघ वत्स के समान हैं, वीथि (मार्ग) की शोभा बढाते हुए विचरनेवाले उसको हमने बृन्दावन में देखा।

वॆळिय शंगु ऑन्ड्रु उडैयानैप् पीतक-आडै उडैयानै
अळि नन्गु उडैय तिरुमालै आळियानैक् कण्डीरे?
कळि वण्डु ऍङ्गुम् कलन्तार्पोल् कमळ
(पूङ्कुळल्हळ् तडन्तोळ् मेल्
मिळिर निन्ड्रु विलैयाड विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ (6)

इस सूक्ति में भी आण्डाल दो दलों के बीच बातचीत की शैली में अपने प्रिय कृष्ण का अनुभव करती है।

एक हाथ में धवल पाञ्चजन्य से भूषित पीतांबरधारी, हमारी रक्षा करनेवाले करुणासागर चक्रधारी तिरुमाल् - हमारे कृष्ण को तुम लोगों ने कहीं देखा है? मधु पीकर उन्मत्त भ्रमर जैसे चारों तरफ फैलकर स्थित हैं, ऐसे सुगन्धित एवं सुन्दर अलकों के अपने विशाल भुज। पर शोभायमान, श्री कृष्ण को अपने दोस्तों के साथ बडी शान से खेलते हुए हमने वृन्दावन में देखा।

नाट्टैप् पडै ऍन्ड्रु अयन् मुदलात् तन्द नळिर् मा मलर् उन्दि
वीट्टैप् पण्णि विळैयाडुम् विमलन् तन्नैक् कण्डीरे?
काट्टै नाडित् तेनुकनुम् कळिरुम् पुळ्ळुम् उडन् मडिय
वेट्टैयाडि वरुवानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमो ॥ (7)

ब्रह्मा आदि प्रजापतियों की सृष्टि कर उनको संसार मंडल की सृष्टि का आदेश दिया। अपने विशाल एवं शीतल, कृपा भरी कमल नाभि में ही ब्रह्मा का घर बनाकर विहार करनेवाले विमल को तुम लोगों ने देखा?

अपनी इच्छा से कानन में संचार करते हुए, जिसने घेनुकासुर, कुवलयापीड हाथी, बकासुर (पक्षी) आदि को एक साथ ही तत्काल अंत हो, इस प्रकार मृगया खेलनेवाले कृष्ण को हमने वृन्दावन में देखा।

परुन्ताळ् कळिर्ट्रुक्कु अरुळ्शॆय्द परमन् वन्नैप् पारिन् मेल्
विरुन्दावनत्ते कण्डमै विट्टुचित्तन् कोदै शॊल्
मरुन्दाम् ऍन्ड्रु तम् मनत्ते वैत्तुक् कॊण्डु वाळ्वार्हळ्
परुन्ताळ् उडैय पिरान् अडिक् कीळ्प् पिरियादु ऍन्ड्रुम् इरुप्पारे ॥ (8)

मोटे चरणवाले गजेन्द्र पर कृपा करनेवाले तिरुमाल को इस भूमंडल में ही वृन्दावन में दर्शन की जो बात विष्णुचित्त गोदा द्वारा अनुगृहीत इन दिव्य सूक्तियों को (इस संसार में जन्म मृत्यु की व्याधि के लिए) दिव्य औषध के रूप में, अपने मन में चिन्तन करते हुए जीवन बितानेवाले (नर) उत्तम पुरुष, श्रेष्ठ चरणवाले स्वामी के पादमूल चरणारविन्दों में अवियुक्त होकर सतत् नित्यानुभव करते रहेंगे। अर्थात् भगवान के नित्य कैंकर्य करनेवाले नित्यसूरि बनेंगे।

सब दुःखों को दूर करनेवाले श्री कृष्ण को देख व्रज की गोपियों को जो आनन्द हुआ उसका वर्णन पिछली 5 दिव्य सूक्तियों में है - आंडाळ की दिव्य - वाणी है - अर्थात् आंडाळ ने भी गोपियों की तरह, श्री कृष्ण मिलन-दर्शन का आनन्द प्राप्त किया।

## (वडमदुरै) आण्डाळ

मायनै मन्नु वडमदुरै मैन्दनैत्
  तूय पॆरुनीर् यमुनैत्तुरैवनै
आयर् कुलत्तिनिल् तोन्ऱुम् अणि-विळक्कैत्
  तायैक् कुडल् विळक्कम् शॆय्द दामोदरनैत्
त्योमाय् वन्दु नाम् तू मलर् तूवित्तोळुदु,
  वायिनाल् पाडि, मनत्तिनाल् चिन्तिक्क,
पोय पिळैयुम् पुहुतरुवान् निन्ऱनवुम्
  तीयिनिल् तूशु आहुम्; चॆप्पु एलोर् - ऍम्पावय् ॥ (9)

(पृष्ट सं. 35 भी देखें)

आंडाळ द्वारा अनुगृहीत तिरुप्पावै में पहले पांच पदों में व्रत के साधनों के संपादन का वर्णन है। इसमें बताती हैं कि भगवान का आश्रय लेने पर सभी बाधाएं अपने आप दूर हो जाती हैं। आण्डाळ और दूसरी गोपियां मार्गशीर्ष महीने में उषाकाल में उठकर, स्नान कर भगवान का गुण गान करती हैं। व्रत का अनुष्ठान करती हैं। पूर्वार्द्ध में भगवान के अद्भुत दिव्य लीलाओं का वृत्तांत बताया है। भगवान के स्वरूप, गुण, चेष्टा आदि सब अति आश्चर्यमय होते हैं। इसलिए मायन हैं। निरंतर भगवान से संबन्धित, उत्तर मथुरापुरी के स्वामी, परम पवित्र, जल प्रवाह संपन्न यमुना विहार रसिक, गोपकुल के मंगल दीप सदृश अलंकार भूत, माताजी के यशोवर्धन, दामोदर हमारे स्वामी श्री कृष्ण का हम तन, मन एवं वाणी से पवित्र होकर, उनके निकट (पादारविन्द) पहुंचकर, श्रेष्ठ

पुष्पों से अर्चनाकर, प्रणाम कर एवं मुख से नाम संकीर्तन करें। उनकी स्तुतिकर पवित्र मन से चिंतन करेंगे तो हमारे श्रेय में बाधा डालनेवाले, अतीत काल के सभी पाप, एवं भविष्य में किए जानेवाले कोई पाप हो तो वे सब आग में डाले गए कपास के समान, भस्म हो जाएंगे। भगवान के शुभ गुणों का कीर्तन करें। स्मरण, वंदन और आत्म समर्पण (शरणागति) मानव के सभी पापों को वह दूर करेगा और मुक्ति प्रदान करेगा।

## नाच्चियार तिरुमॉऴि (आंडाळ्)

मर्ट्रु इरुन्दीरहट्कु अरियलाहा
 मादवन् ऍन्पदु ओर् अन्बुतन्रे
उर्ट्रु इरुन्देनुक्कु उरैप्पदु ऍल्लाम्
 ऊमैयरोडु शॅविडर् वार्त्तै;
पॅर्ट्रिरुन्दालै ऑऴियवे पोय्प्
 पेर्त्तु ऑरु ताय् इल् वलरन्द नंबि
मर् पॉरुन्तामर् कळम् अडैन्द
 मदुरैप् पुर्त्तु ऍन्रे उय्त्तिडुमिन्॥ (10)

श्री कृष्ण तो मथुरा में विराजमान हैं। श्री कृष्ण के विरह से पीडित गोदा अपने बन्धु बान्धओं से प्रार्थना करती है कि जहां-जहां कृष्ण की लीलाएं हुई हैं (मथुरा से लेकर द्वारका तक) वहां मुझे ले चलो। बंधुवर्ग उसको समाधान कर आश्वासन देता है। लेकिन उसको शांति नहीं मिलती। वह तुरन्त श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहती है। कृष्ण के प्रति अपना अनन्य प्रेम व्यक्त करती है - माधव ही मेरे लिए सब कुछ है। उस माधव का प्रेम मुझे प्राप्त है। वह दूसरे व्यक्तियों को दुर्ज्ञेय है। अर्थात् माधव ही प्रेम है। ऐसे प्रेम को प्राप्त कर रहनेवाली मुझसे आप लोगों का सारा कथन, आश्वासन आदि गूंगों के साथ बहरों की वार्ता है। जैसे गूंगों में बोलने का सामर्थ्य नहीं और बहरे में सुनने का, उसी प्रकार मेरे विषय में बोलने का सामर्थ्य आप लोगों में नहीं, न मुझ में आपका कथन सुनकर समझने का। श्री कृष्ण मथुरा में जन्म देनवाली माता देवकी को छोड कर, गोकुल में यशोदा के पालन-पोषण में बढा। कंस बध के समय मल्लों से युद्ध करने (मल्लों के पहुंचने के पहले ही) पहुंच गया। वह कृष्ण आजकल मथुरा में रहता है। मुझे वहां ले चलो। श्री कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम और उनसे मिलने की तीव्र उत्कंठा व्यक्त है।

## तिरुमालै (ताॅण्डरडिप्पाॅडि आळ्वार - भक्तांघ्रिरेणु)

वळ एॅऴुम् तवळ माड मदुरै मा नहरन् तन्नुळ्
कवळ माल् यानै कॉन्ड्रु कण्णनै अरंग-मालैत्
तुळवत् तॉण्डु आय तॉळ् शीरत् तॉण्डरडिप्पॉडि शॉल्
इळैय पुन् कवितैयेलुम् एॅम्पिरार्क्कु इनियवारे ॥ (11)

**ताॅण्डरडिप्पाॅडि आळ्वार के अनुगृहीत दो प्रबन्ध हैं।**

(1) **तिरुमालै (श्रीमाला)** (2) **तिरुप्पळ्ळियॅळुच्चि (प्रबोधन गीत)**

तमिळ् में कहावत है "तिरुमालै अरियादवन् तिरुमालै अरियान्" मतलबः तिरुमालै (श्रीमाला) न जाननेवाला भगवान को नहीं जानता। भगवान रंगनाथ (श्रीरंगम) से, ये विशेष आकृष्ट थे। सरल भाषा में परमात्मा एवं नाम संकीर्तन (विशेषतः कलियुग में) का महत्व बताते हुए उपदेश देते हैं कि भगवद्भक्ति ही मुक्ति प्रदायक है।

मथुरा बडे सुन्दर एवं धवल वर्ण के महलों से युक्त पवित्र नगर है। मथुरा में कंस ने धनुष यज्ञ का आयोजन कर उसके निमित्त श्री कृष्ण को निमंत्रित किया था। (धोखे से मारने के विचार से) श्री कृष्ण और बलराम वहां पहुंचे, तब उनको मारने के लिए पुष्ट, तुंग, एवं तरुण कुवलयापीड नामक हाथी को वहां खडा रखा था। जब वह हाथी कृष्ण की ओर क्रोध से उसे मारने आया तब श्री कृष्ण ने उसके दोनों दंतो को बडी आसानी से उसके मुंह से तोडकर उसीसे उसको मारा। आळ्वार का अनुभव है कि जिस तरह श्री कृष्ण ने मदोन्मत्त कुवलयापीड को मारा, उसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के अपने प्रतिबन्धों को दूर कर दिया।

आळ्वार की दृष्टि में श्री रंगनाथ और श्री कृष्ण दोनों समान है। यद्यपि यह रचना (बौद्धिक) अपक्व और तुच्छ कविता क्यों न हो, हमारे उपकारक प्रभु को प्रिय लगती है। प्रभु की रीति को हम क्या कहें?

## तिरुवाय्मॉऴि - (नम्माळ्वार)

पॉरुळ् कै उण्डाय्च् चॅल्लक्काणिल्, पोर्ट्रि एॅन्ड्रु एर्ट्रु एॅऴुवर;
इरुळ् कॉळ् तुन्पत्तु इन्मै काणिल्, एॅन्ने! एॅन्पारुम् इल्लै;
मरुळ् कोळ् शॅयहै असुरर् मंग, वड मदुरैप् पिरन्दार्कु
अरुळ् कॉळ् आळाय् उय्यल् अल्लाल्, इल्लै कण्डीर्-अरणे ॥ (12)

नम्माळ्वार इस दशक में अष्टाक्षर मंत्र में नारायण शब्द पर प्रकाश डालते हुए, उपदेशपूर्वक यह बताते हैं कि भगवान ही हमारे एक मात्र बंधु हैं। हमारे लौकिक माता, पिता आदि तो बान्धवाभास मात्र हैं। अतः वे हमारी रक्षा नहीं कर सकते। सर्वेश्वर ही आत्मा के निरुपाधिक बन्धु हैं। बाकी सब कर्मवशात् बन्धु हैं। सर्वेश्वर ही प्राप्य एवं प्रापक हैं। इसलिए लौकिक बन्धुओं की आसक्ति छोड़कर सभी प्रकारों से भगवान का आश्रय लेना ही कल्याणकारक है, एक मात्र साधन है।

भगवान श्री कृष्ण को छोड़कर बाकी सब बन्धु अपने कार्य होने तक बन्धुत्व का बहाना करेंगे - अर्थात् मतलबी बन्धु हैं। किसी दूर्दशा में अपने कथित बन्धु की ओर देखेंगे तक नहीं। आपत्काल के रक्षक कृष्ण को छोडकर हमारा कोई दूसरा रक्षक नहीं।

अर्थात् हमारे पास यदि धन एवं द्रव्य दीखेगा तो ये बन्धु (मतलबी) लोग जय-जयकार करते हुए, प्रीति से दिए गए धन को प्राप्त कर चले जाते हैं। गरीबी की अवस्था में - अर्थात् बन्धुओं को दे-देकर गरीब हो जाने पर - ''हाय'' करनेवाला, सहानुभूति दिखानेवाला भी कोई नहीं रहेगा। अतः इनका (कृतघ्न) संग छोडकर, शांति प्रदायक एवं भक्तों के रक्षक, त्रास ही त्रास देनेवाले असुरों के संहारार्थ उत्तर मथुरा नगरी में अवतीर्ण श्री कृष्ण के कृपा-पात्र दास होकर, आत्म कल्याण प्राप्त करना चाहिए। हमारे सर्वविध बन्धु भगवान का आश्रय छोडकर हमारी कोई गति नहीं। दूसरा कोई रक्षक नहीं।

अऱणम् आवर् अर्ट्र कालैक्कु
एन्ड्रु एन्ड्रु अमैक्कप् पट्टार्
इरणम् कॉण्ड तप्पर् आवर्;
इंड्रियिट्टालुम् अह्दे;
वरुणित्तु एन्ड्रे! वडमदुरैप् पिरन्दवन्
वण् पुहळे
शरण् एन्ड्रु उय्यप् पोहल् अल्लाल्
इल्लै कण्डीर्-चतिरे ॥ (13)

भविष्य में हमारी दीन दशा होने पर, हमारी रक्षा के लिए इस आशा से क्षुद्र व्यक्तियों का संग्रह करते हैं कि वे कष्ट दशा में हमारे सहायक होंगे और अपेक्षित कार्य करेंगे। लेकिन वे भी अपने कर्ज़ को वापस लेनेवाले की भांति

(हमारे पहले कृत उपकार को किंचित भी ख्याल किए बिना) आपात काल में प्रत्युपकार किए बिना क्षुद्र होकर निश्चिन्त रह जाते हैं। किसी दशा में उनका वही स्वभाव होगा। ऐसे कृतघ्नों की बात करने से क्या लाभ ? सब को कष्ट के समय सहायता कर रक्षा करने उत्तर मथुरा में अवतीर्ण श्री कृष्ण की दया, क्षमा आदि कल्याण गुणों को गाकर उन्हीं के शीलादि सद्गुणों को ही रक्षक मानकर, आत्म कल्याण पाना ही उत्तम है। यह अनायास अपेक्षित फल पाने की चतुरता है। दूसरा कोई बुद्धिमत्ता का काम नहीं।

चतुरम् एन्डु तम्मैत्तामे चम्मदित्तु, इन्मा ळियार्
मदुर बोहम् तुट्रवरे वैहि, मट्रु आन्डु उरुवर्;
अतिर्काळ् चय्है अशुरर् मंग, वडमदुरैप् पिरन्दार्कु
एदिर्काळ् आळाय् उय्यल् अल्लाल् इल्लै कण्डीर्-इन्बमे ॥ (14)

बन्धुओं में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह माना जाता है कि वह सुख-दुःख आदि सभी अवस्थाओं में सर्वकाल बन्धु एवं हितैषी होती है। अपनी मीठी वाणी से पुरुषों को वशीकरण करते हुए, मन ही मन अपने को चतुर समझती है। जिन लोगों ने उन स्त्रियों से मधुर भोग का आनन्द उठाया, अपने बुढापे में या गरीब होने पर उनका दूसरा विपरीत अनुभव होगा। अर्थात् ऐसे मधुर वाणी सुन्दरियों के मधुर संग करनेवाले जन ही, दूसरी अवस्था में - बुढापे या दुर्भाग्यवश दरिद्रता की अवस्था में, उन्हीं स्त्रियों के अनादर एवं तिरस्कार के पात्र होंगे। अति स्निग्ध एवं भोग्यतम स्री ही विष सदृश हो जाती है। अतः इनमें प्रवणता छोडकर, भयंकर क्रूर कार्य करने में निरत असुरों के संहारार्थ, उत्तर मथुरा में अवतीर्ण सर्वकाल और सभी प्रकार से स्निग्ध रहनेवाले श्रीकृष्ण के अभिमुख हो, दास बनकर, आत्म कल्याण पाये बिना कोई दूसरा आनन्द नहीं रहता।

बन्धुवर्ग द्वारा प्रेम किए जाने पर भी एक विशेष अवस्था में गरीबी में वे ही अनादर व घृणा करने लगते हैं। लेकिन भगवान अपने से द्वेष छोड, किंचित मात्र प्रेम कर, सम्मुख होनेवालों से भी प्रेम करते हुए सर्वत्र एवं सतत रक्षा करते हैं।

इल्लै कण्डीर इन्बम्; अन्दो! उळ्ळदु निनैयादे,
तोल्लैयार्हळ् एत्तनैवर् तोंड्रिक् कळिन्दु आळिन्दार्!
मल्लै मूदुर् वड मदुरैप् पिरन्दवन् वण् पुहळे
शोल्लि उय्यप् पोहल् अल्लाल्, मट्रोन्रु इल्लै-शुरुक्के ॥ (15)

इस लोक में सुखमात्र देनेवाली कोई वस्तु नहीं रहती । हाय ! मुझे इस प्रत्यक्ष तत्व का उपदेश देना पडता है - अर्थात् भगवान ही निरतिशय शाश्वत पुरुषार्थ है । उनको छोड़कर कोई दूसरी शाश्वत सुख देनेवाली वस्तु नहीं है । इस यथार्थ का अनुसन्धान किए बिना अनादि काल से असंख्य जन जन्म पाकर नष्ट हो गए । परम पुरुष का ज्ञान प्राप्त न करने से जनन मृत्यु मात्र ही शेष रही । सब तरह से समृद्ध व भगवान के प्राचीन क्षेत्र (शत्रुघ्न आळ्वान की नगरी) उत्तर मथुरा में अवतीर्ण श्री कृष्ण का गुण-गान करते हुए, आत्म कल्याण पाए बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं रहता । संक्षेप में यही मेरा कथन है । परम तत्व यह है कि सभी सांसारिक पदार्थ अत्यल्प सुख एवं अधिक दुःख देनेवाले हैं । एकमात्र भगवान ही नित्य एवं शाश्वत सुख देनेवाले हैं । उनका गुन-गान ही उज्जीवन का उपाय है ।

> मट्रोन्रु इल्लै; शुरुङ्गच् चान्रोम्; मा निलत्तु एव् उयिर्क्कुम्;
> चिर्द्र वेण्डा; शिन्दिप्पे अमैयुम् कण्डीर्हळ्; अन्दो ।
> कुर्द्रम् अंड्रु; एङ्गल् पट्रत्तायन्, वडमदुरैप् पिरन्दान्
> कुर्द्रम् इल् शीर् कर्द्रु, वैहल् वाळ्दल् कण्डीर्-गुणमे.। (16)

इस विस्तीर्ण भूलोक निवासी सभी जनों को आळ्वार का उपदेश है कि परिश्रम कर हज़ारों प्रवृत्तियों में फंसकर क्लेश मत पाइए । भगवान पर संपूर्ण एवं सुदृढ हार्दिक विश्वास मात्र पर्याप्त है । भगवान का स्मरण मात्र योग-क्षेम प्रदायक है । काश ! लोग इसकी महिमा नहीं जानते । आश्रितों के लिए भव्य मुक्ति क्षेत्रों में से एक- उत्तर मथुरा में अवतीर्ण होकर, गायों का पालन करनेवाले, गोपाल के शुभगुणों का उपदेश प्राप्त कर सतत् उनके गुणानुभव का अभ्यास एवं नाम का कीर्तन कीजिए । यह आत्म कल्याणकारक गुण ही होता है न कि कभी दोष । अर्थात् इसमें कभी दोष नहीं लगता । कई लोग आत्मोद्धार के लिए कई तरह के प्रयत्न करते हुए, बहुत परिश्रम उठाते हैं । परन्तु यह क्लेश अनपेक्षित है । समस्त शास्त्र यही बताते हैं कि "ज्ञानात् मोक्ष है" मानों ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी । दृढ विश्वासपूर्वक भगवान को ही अपना एक मात्र रक्षक मानना और भक्ति करना यही सच्चा ज्ञान है । यही ज्ञान शरणागति का अर्थ है । इसके सिवा दूसरा कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती । हम प्रेम से भगवान का गुण-गान करेंगे । वह सेवा रुपी होने से गुण ही गुण होगा । यही दोषरहित उत्तम ज्ञान है ।

वाळ्दल् कण्डीर् गुणम् इदु; अंदो ! मायवन् अडि परविप्
पोळ्दु पोह उळ्ळहिर्कुम् पुन्मै इलादवर्क्कु
वाळ् तुणैया वडमदुरैप् पिर्न्दवन् वण् पुहळे
वीळ् तुणैयाप् पोम् इदनिल् यादुम् इल्लै - मिककदे ।। (17)

भगवान के अवतार का कारण बताते हुए आळ्वार हमें उपदेश देते हैं कि उनके चरण के बिना इस संसार में हमें कोई दूसरा स्थाई आश्रय नहीं है। यह मनुष्यजीवन ही भगवदानुभव के लिए है। यही भोग्य है। अज्ञानी लोग इस का महत्व नहीं जानते। आळ्वार उपाय बताते हैं - आश्चर्य गुण संपन्न भगवान के पादारविन्दों की प्रीति से स्तुति करते हुए अपना जीवन बिताने के मनोरथवाले, विषयान्तर दोष से मुक्त होकर, सत्पुरुषों के सहायतार्थ ही उत्तर मथुरा में अवतीर्ण श्रीकृष्ण भगवान के कल्याणगुणों को ही अपने पुरुषार्थ का उपाय एवं सहायक मानना चाहिए। इसके अलावा कोई दूसरा कल्याणकारी उत्तम उपाय नहीं है।

यादुम् इल्लै मिक्कु अदनिल् एन्ड्रु एन्ड्रु अदु करुदि,
कादु शय्वान् कूदै शय्दु कडैमुरै वाळ्क्कैयुम् पोम्;
मा तुहिलिन् काडिक्कोळ् माड वडमदुरैप् पिर्न्द
तादु शेर् तोळ् कण्णन् अल्लाल् इल्लै कण्डीर् - शरणे ।। (18)

आळ्वार भगवान को ही समस्त विध बन्धु बताते हैं। इसलिए लौकिक बन्धुओं पर आसक्ति छोडकर स्वाभाविक बन्धु भगवान श्रीकृष्ण को ही समस्त प्रकारों से आश्रय मानकर उनकी सेवा में रहना ही कल्याणकारक है। उन्हीं के शरण में जाकर आत्मकल्याण पाना बुद्धिमत्ता का काम है।

यदि हम भगवान के सिवा दूसरे के आश्रय में जाकर, उसी को श्रेष्ठ मान बैठेंगे तो सांसारिक जीवन की भी हानि ही होगी।

भगवदानुभव का आनन्द कैवल्य सुख से भी बढकर है। यह समझकर कि कैवल्य से भी बढकर कोई दूसरा पुरुषार्थ नहीं है, बहुत समय तक इसका अनुसन्धान कर, उसकी प्राप्ति के लिए उपाय करते रहना, इसके समान होगा कि कुण्डलादि पहनने कान को बढाने की प्रवृत्ति में, कान को काटकर अंगहीन कर लेना है। स्वबुद्धि मन्द होने से इस तरह का अनुसन्धान से पूर्णतया दुःख निवृत्ति के बिना वर्तमान प्राकृत सुख भी जाता रहेगा। इसलिए बडे ध्वजपटों से समलंकृत प्रासादों से परिवृत उत्तर मथुरा में अवतीर्ण मालालंकृत भुजवाले श्री कृष्ण के बिना हमें कोई दूसरी गति नहीं है।

कण्णन् अल्लाल्, इल्लै कण्डीर शरण्; अदु निर्क वन्दु
मण्णिन् बारम् नीक्कुदर्के, बडमदुरैप् पिरन्दान्,
तिण्णमानुम् उडैमै उण्डेल्, अवन् अडि चेर्त्तु उय्म्मिनो;
एण्ण वेण्डा; नुम्मदु आदुम् अवन् अंड्रि - मर्द्र इल्लैये ॥

भगवान श्री कृष्ण के सिवा हमारे कोई दूसरा रक्षक नहीं है। इस तत्व को स्पष्ट कर उसके प्रतिष्ठापनार्थ एवं भू-भार को कम करने, क्षीर सागर के नाग-पर्यंक को छोडकर उत्तर मथुरा में अवतीर्ण हुए। जिस तरह भू-भार परिहार किया, उसी प्रकार वे हमारे संसार-रूपी भार को भी निराकरण करेंगे। संसारियों को आत्म कल्याण के लिए श्री कृष्ण की शरणगति का उपदेश देते हैं।

हम माया-मोह के कारण संसार की वस्तुओं को अपनी मान कर बैठते हैं। आळ्वार संसार के लोगों से कहते हैं कि इस संसार में अपनी कोई वस्तु नहीं है। वास्तव में सब भगवान की है। इसलिए अपनी आत्मा और आत्मीय वस्तुओं को भगवान के चरणारविन्दों में समर्पित कर आत्म कल्याण पाओ। कोई दूसरी चिंता मत करो। फल भी भगवान की देन है। उनकी कृपा के बिना हम आत्म समर्पण भी कैसे कर सकते हैं?

इसमें भगवान के सर्वेश्वरत्व का प्रकाशन ही धर्म संस्थापन एवं साधुपरित्राण का अर्थ बताया गया है। इसके लिए भगवान धरातल पर प्रकट होकर अवतार लेते हैं।

## तिरुआयर्पाडि - गोकुलम्

भगवान का नाम : नवमोहन कृष्णन
मातजी - रुक्मिणी और सत्यभामा

### पॅरियाळ्वार तिरुमॉळि (पॅरियाळ्वार)

विण्णिन् मीदु अमरर्हळ् विरुम्बित् तॉळ
मिरैत्तु आयर्पाडियिल् वीदियूडे
कण्णन् कालिप् पिन्रे एॅळुन्दरुळक्
कण्डु, इळ आय्क् कन्निमार् कामुर्र
वण्णम्, वण्डु अमर् पॉळिर्, पुदुवैयर् कोन्
विट्टुचित्तन् चॉन्न मालै पत्तुम्
पण् इन्पम् वरप् पाडुम् पत्तर् उळ्ळार्
परमान वैकुन्दम् नण्णुवरे ॥ (1)

शाम को श्री कृष्ण गाय बछडों को (जंगल में गाय बछडों को चराने के बाद) लेकर गोकुल वापस आते हैं। गोपियों को दिन भर कृष्ण के दर्शन प्राप्त नहीं हुए थे। अब शाम को ही श्री कृष्ण के दर्शन होते हैं। यहां आळ्वार श्री कृष्ण के दर्शन से गोपियों की मधुर प्रेम दशा का वर्णन करते हैं। अंतरिक्ष में देवतागण बडे प्रेम एवं भक्ति के साथ भगवान के दर्शन कर उत्कंठा से प्रणति करते हैं। उनकी उपेक्षा कर, गोप भूमि आयरपाडि (गोकुल) में, वीथि से होकर, गाय बछडों के साथ (श्री कृष्णको) आते देखकर, तरुण गोप कन्याओं के प्रेम-विह्वल् होने की दशा का, भ्रमरों से गुंजित, उपवनों से घिरे श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्रीविष्णुचित्त ने वर्णन किया है। इस सूक्तिमाला को जो भक्त आनन्द मग्न होकर इस प्रकार लय से गाते हैं, जिससे संगीत का आनन्द आ जाय, वे भक्त परम वैकुंठ को प्राप्त करते हैं।

पुवियुळ् नान् कण्डदु ओर् अर्पुदम् केळीर् !
पूणि मेय्क्कुम् इळङ्कोवलर् कूट्टत्तु
अवैयुळ् नाहत्तु - अणैयान् कुळ्ल् ऊद
अमरलोहत्तु अळवुम् चॅन्दु इशैप्प,
अवियुणा मरन्दु वानवर् एॅल्लाम्,
आयर्-पाडि निरैयप् पुहुन्दु ईण्डिच्

शेवि-उणाविन् शुवै कण्डु महिळ्न्दु
गोविन्दनैक् ताडर्न्दु एन्डुम् विडारे ॥ (2)

इस भूतल पर मैंने एक आश्चर्य देखा । बताता हूँ; सुनिए । गाय चरानेवाले गोप बालकों की गोष्ठी में श्री कृष्ण ने, जो शेषशायी भगवान के अवतार हैं, बंसी बजायी । अब यह सुनिए कि इसे सुननेवालों की क्या दशा हुई? बंसी की ध्वनि अमर लोक तक व्याप्त हो मधुर सुनाई पडी ।

देवों का भोजन हविष्य है । यज्ञों में हवि देते हैं । वे (देवता गण) यज्ञशाला में जाकर हविष्य लेते हैं । परन्तु जब श्रीकृष्ण ने बंसी बजाई तो देवगण, अपना आहार (हवि) लेना भूल गए । झुंड के झुंड गोकुल में जुट गए और अपने कान रुपी रसना से बंसी गीत का रसास्वादन किया । वे गोविन्द के पीछे आनन्द मग्न पडे रहे । गोविन्द का अनुगमन करते हुए, कभी उनको नहीं छोडते । आयरपाडि में श्री कृष्ण का जन्म और वहां उनके सुन्दर बाल लीला के कारण उसका महत्व सुरलोक से भी अधिक हो गया ।

मार्हळित् तिङ्गल् मदि निरैन्द नन्नाळाल्;
नीराडप् पोदुवीर् पोदुमिनो, नेरिळैयीर् !
शीर् मल्हुम् आय्पाडिच् चॅल्वच्-शिरुमीर्हाळ् ।
कूर् वेर् काडुन्ताळिलन् नन्दगोपन् कुमरन्
एर् आर्न्द कण्णि यशोदै इलञ्शिङ्गम्
कार् मेनिच् चॅङ्कण् कदिर्मदियम् पोल् मुहत्तान्
नारायणने नमक्के परै तरुवान्;
पारोर् पुहळप् पडिन्दु - एलोर् एम्पावाय् ॥ (3)

तिरुप्पावै के इस प्रथम सूक्ति में भावना प्रकर्ष से गोपी भावना से विभूषित गोदा देवी मार्गशीर्ष व्रत करने, अपनी सखियों को गोष्ठी में मिलने बुलाती है । इस में आयरपाडि (व्रजभूमि) की महत्ता भी बतायी जाती है । काल गति, स्थान गति को लांघकार आंडाळ के लिए अपना जन्म स्थान ही (व्रजभूमि) आयरपाडि बन जाता है ।

भगवान या भक्तों से संबन्धित होने से कोई स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है । आयरपाडि के विषय में भगवान एवं भागवतों का संबन्ध है, जिससे वह दिव्य देशों में अग्रगण्य बन जाता है । ''ऐश्वर्यश्री से परिपूर्ण आयरपाडि'' (व्रज भूमि) यह आंडाळ की वाणी है । कृष्ण का लीला स्थान होने से इसका महत्व

है। वैसे ही श्री कृष्ण के सम-काल में वहां रहनेवाली श्री विभूषित गोपियों का सौभाग्य भी अद्वितीय है। दिव्य भूषण धारी गोपियां न केवल कृष्ण की अनन्य प्रेमिकाएं थीं; बल्कि, हां, भगवान भी उन पर पूर्ण रूप से आसक्त थे।

स्थानीय मंदिर के भगवान वटपत्रशायी श्रीकृष्ण बन जाते हैं। आंडाळ की सहेलियां गोप बालिकाएं।

यह तो सात्विक धर्नुमास है। मनोहर शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा से युक्त शुभ-दिन है। इस समय इस व्रत के अंगतया स्नान करने इच्छुक/तत्वार्थ - भगवदानुभव करने इच्छुक) सहेलियो ! आ जाओ। (इच्छा मात्र आवश्यक है - न तो दूसरा - कोई देश, काल, योग्यता आदि) भालायुध धारी एवं कठोर कर्मठ (श्रीकृष्ण की रक्षा के लिए) नंदगोप का सुपुत्र श्री कृष्ण अपार करुणासागर है। ''नंदगोप यशोदा का'' सुपुत्र कहने की जगह ''नंदगोपजी का पुत्र और यशोदा का बालसिंह कहना बडा मार्मिक है। सुन्दर नेत्रवाली यशोदा का बालसिंह, कालमेघ सदृश देहवाला, कमलनयन, सीमातीत कारुण्य गुणवाला सूर्य चन्द्र के समान मुखवाला (सूर्य की तरह अत्यन्त तेजस्वी और चन्द्रमा की तरह प्रसन्न व तापहर) श्रीमन्नारायण हम को सब पुरुषार्थ देंगे। नारायण नाम से पुकारना गोपियों के विलक्षण ज्ञान का धोतक है।

भूमंडलवासी सब हमारी प्रशंसा करें। यह अपने सिर्फ लौकिक कार्य की प्रशंसा मात्र नहीं। यह व्रत लोक कल्याण से प्रेरित है। भगवान के अनुग्रह से समय पर वृष्टि हो जाए - अकाल न पडकर पानी के लाभ से सब सुखी बन जाएं। प्रशंसा का मूल लोककल्याण और निष्काम भगवत् कैंकर्य है। भगवदानुभव का स्नान है। एल् और ऐमूपावाय् - तिरुप्पावै की सभी सूक्तियां इन शब्दों से समाप्त की जाती हैं। संतोषवाचक शब्द है।

इस पद में फल साधन और अधिकारी तीनों का उल्लेख है। स्नान करना (अर्थात् भगवदानुभव - भगवान से संयोग) फल है। उसका साधन (अर्थात् उसे देनेवाले) श्रीमन्नारायण ही है। और इस पुरुषार्थ के इच्छुक ही अधिकारी है।

अल्लल् विळैत्त परुमानै, आयरपाडिक्कु अणि-विळक्कै,
विल्लि पुदुवै नगर नंबि विट्टुचित्तन् वियन् कोदै
विल्लैत् ताळैत्त पुरुवत्ताळ् वेट्कै उर्ट्ट मिह विरुम्बुम्
चाल्लैत् तुदिक्क वल्लारहळ् तुन्पक् कडलुळ् तुवळारे ॥ (4)

आण्डाळ अपने प्रिय कण्णन् (कृष्ण) के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रकट करती है। प्रेमी भगवान ने ही उनको व्यथित किया है। अतः व्यथा पहुँचानेवाले भगवान से कहती है - यह व्यथा उनके या उनके अनुगृहीत वस्तु से ही दूर होगी। लेकिन भगवान अब दर्शन तक नहीं देते। इस प्रकार भगवान उसको व्यथा पहुँचा रहे हैं। विपदा देनेवाले - प्रेम की व्यथा पहुँचानेवाले, आयरपाडि के मनोहर मणि-दीप कृष्ण की कामना कर, उनसे अगाध प्रेम करनेवाली श्रीविल्लीपुत्तूर नंबि पट्टर पिरान (अद्भुत स्वभाववाली) गोदा की, जो धनुष को जीतनेवाली भौंहवाली है, अत्यधिक प्रेम से कथित सूक्तियों से भगवान की स्तुति करने में समर्थ, दुःख सागर में पडकर व्यथित नहीं होंगे। इस सूक्ति का पाठ आनन्द प्रदायक है। तात्पर्य है कि श्री कृष्ण के कारण आयरपाडि की शोभा बढती है। सर्वेश्वर श्री कृष्ण का मिलन सुलभ करने से आयरपाडि दिव्य देश है।

## तिरुत् द्वारापति - द्वारका:
## पॅरियाळ्वार तिरुमॉळि - पॅरियाळ्वार

पॉल्ला वडिवु उडैप् पेय्च्चि तुञ्चप् पुणर्मुलै वाय्मडुक्क
वल्लानै मा मणि वण्णनै मरुवुम् इडम् नाडुतिरेल्,
पल्लायिरम् पॅरुन्देविमारोडु पौवम् ए्रि तुवरै
एॅल्लारुम् शूळ्च् चिंड्गासनत्ते इरुन्दानैक् कण्डार् उळर् । (1)

भगवान श्री कृष्ण के कुछ निवास स्थानों की ओर संकेत करते हुए पॅरियाळ्वार ने इस दशक की रचना की है। भगवान के दर्शन की तीव्र कामना एक ओर मानसानुभव की झलक, दूसरी ओर, बारी-बारी से आळ्वार के मानस पटल में उठती है। आळ्वार की वाणी है- भगवान की कुछ लीलाएं बताकर, ऐसी लीलाएं करनेवाले नीलमणिवर्ण जहां रहते हैं, उस स्थान के अन्वेषण की इच्छा हो तो सुनो।

इसमें इसका उत्तर देने की शैली अपनाते हैं। बताते हैं कि पूतना के स्तन्यपान करनेवाले नीलमणि वर्ण श्री कृष्ण द्वारका में सहस्र महादेवियों के संग विराजमान हैं। द्वारका ऐसा सुरम्य स्थल है जिसके चारों ओर समुद्र की लहरें टकराती हैं। ऐसे भक्त हैं जिन्होंने यहां कृष्ण का साक्षात्कार किया है। वे बड़े भाग्यवान हैं। इसमें द्वारका की प्राकृतिक सुन्दरता और भगवत्-संबन्ध दोनों उल्लिखित हैं।

## तिरुवाय्मोळि-नम्माळ्वार

अन्नै एॅन् चॅय्यिल् एॅन्? ऊर् एॅन् चॉल्लिल् एॅन्? तोळिमीर् !
एॅन्नै इनि उमक्कु आशै इल्लै ; अहप्पट्टेन् -
मुन्नै अमरर् मुदल्वन्, वण् तुवरापति,
मन्नन्, मणि वण्णन् वासुदेवन् वलैयुळे ॥ (2)

सहस्रगीति में यह एक परम विलक्षण दशक है। भगवान से आळ्वार का प्रेम इतना अधिक होता है कि वे विश्लेष (भगवान से) का सहन नहीं कर पाते। वे कभी अपना वास्तविक रूप छोड नायिका, माता एवं सखी की भूमिका अपनाते हैं। इसमें नायिका भावना मुख्य है। नायिका अपनी सखी से अपनी असह्य विरह व्यथा प्रकट करती हुई माता की आज्ञा या उपदेश की परवाह न करके, अपनी व्यथा मिटाने कुछ साहसपूर्ण कार्य करने का अपना निर्णय बताती है। अब माता एवं पास पडोसियों का ध्यान नहीं रखती।

भगवान के विरह से तडपती नायिका दूसरों की निन्दा की परवाह न करके, अपने प्रियतम भगवान के पास पहुँचने का निश्चय करती है। माताएँ जो चाहें कहें, गांववाले निंदा करें तो कर लें। अब मुझसे कोई आशा न करें। उससे मेरी कौन सी हानि होगी? मैं आदिपुरुष, नित्यसूरियों के नाथ देवाधिदेव, सुन्दर नीलामणि जैसे वासुदेव - द्वारका के नाथ के प्रेम जाल में फंस गयी हूँ।

## नाच्चियार तिरुमोऴि (आण्डाळ)

कूट्टिल् इरुन्दु किळि एप्पोदुम्
  गोविन्दा ! गोविन्दा ! एन्ड्रु अऴैक्कुम्;
ऊट्टक् कांडादु चेरुप्पनाहिल्
  उलहु अळन्दान् एन्ड्रु उयरक् कूवुम्;
नाट्टिल् तलैप्पऴि एय्दि उङ्गळ्,
  नन्मै इळन्दु तलैयिडादे,
चूट्टु उयर् माडङ्गल् शूऴ्न्दु तोन्ड्रुम्
  तुवरापतिक्कु एन्नै उय्त्तिडुमिन् ॥ (3)

श्री कृष्ण द्वारका में विराजमान हैं। गोदा भगवान के विरह से अत्यन्त विह्वल होती है। असह्य वेदना से वह अपने माता एवं बन्धुओं से कहती है - भगवान श्री कृष्ण जहां २ विराजमान हैं - मथुरा से लेकर भक्त लोचन का वर्तमान निवास स्थान द्वारका तक, जहां कहीं हो, वहीं मुझे पहुंचाओ।

गोदा एक तोता पालती है। वह तोता पिंजडे में रहते हुए, हमेशा "गोविन्दा, गोविन्दा" रटता है। गोदा को, विरह में प्रियतम का नाम सुनना भी पीडादायक है। तोते को चुप करने वह दाना-पानी नहीं देती तो वह और भी ऊंचे स्वर में चिल्लाता है - लोक नापनेवाले ! गोदा अपनी माता से कहती है - तुम्हें अपमान न सहना है - कलंक से बचना है तो मुझे ऊंचे प्रासादों से परिवृत हो, उद्भासित द्वारापति ले चलो, जहां मेरे प्रियतम श्री कृष्ण विराजमान हैं।

## नान्मुहन् तिरुवन्दादि (तिरुमऴिशै आळ्वार)

शेयन्, अणियन्; शिरियन् मिहप् परियन्,
  आयन्, तुवरैक् कोनाय् निन्ड्र मायन्, अंड्रु
ओदिय वाक्कु - अदनैक् कल्लार, उलहत्तिल्
  एदिलर् आम्, मेय्ञ्ज्ञानम् इल्। (4)

तिरुमळिशै आळ्वार अपनी दिव्य सूक्तियों में प्रमाण सहित परतत्व का स्पष्ट निर्णय करते हैं । श्रीमन्नारायण ही परतत्व हैं, परमात्मा हैं । उनको ही तत्व, हित और पुरुषार्थ के रूप में बताते हैं । एक ही परम पुरुष हैं, एक ही देव हैं । वही श्रीमन्नारायण हैं, जो द्वारका में निवास करते हैं और सभी भक्तों का अनुग्रह करते हैं ।

जो बहुत दूर हैं, (प्रतिकूल एवं अनाश्रित लोगों के लिए) जो बहुत निकट हैं - (अनुकूल भक्त लोगों के लिए) वे बहुत छोटे बालक कृष्ण के रूप में सब के लिए सुलभ हैं । अहीर कुल की ज्योति, द्वारकाधीश, आत्याश्चर्य शक्ति एवं महिमावाले, (गोकुल का बालकृष्ण और द्वारकाधीश) मायी भगवान ने (एक दूसरे से विपरीत गुणवाले) युद्धक्षेत्र में अर्जुन को वेदान्तसार (चरम श्लोक) गीता का उपदेश दिया । इस संसार में रहनेवाले भगवान के श्रीमुंह से प्रकट गीता का जो अनुसन्धान नहीं करते, वे तत्वज्ञानहीन हैं । भगवान के अनुकूल व्यक्ति नहीं, प्रतिकूल हैं । सर्वज्ञ सर्वेश्वर ने भगवान अर्जुन को निमित्त बनाकर - अपनी दिव्य वाणी से संसार के लोगों के उज्जीवनार्थ तत्वज्ञान का उत्तम साधन गीता का उपदेश दिया । इसका ज्ञान ही सच्चा एवं उत्तम ज्ञान है ।

भगवान अपने उपरोक्त स्वरूप के अनुसार, भगवत्-प्राप्ति के लिए (अपनी प्राप्ति के लिए) महान भक्तियोग और अत्यन्त सरल शरणागति का उपदेश उस वक्त दिया है । इसका ज्ञान एवं सतत अनुसन्धान कल्याणकारक है ।

## चिंगवेळ्कुंड्रम् (अहोबिलम्)
## तिरुमंगै आळ्वार

अम् कण् ज्ञालम् अञ्ज, अंगु ओर् आळ्
[अरि आय्, अवुणन्
पाड्ग, आहम् वळ् उहिराल् पोळ्न्द पुनिदन् इडम् -
पैङ् कण् आनैक् कोम्बु कोण्डु, पत्तिमैयाल् अडिक्कीळ्
चेङ् कण् आळि इट्टु इरैञ्जुम् चिंगवेळ्कुन्ड्रमे । (1)

भगवान सर्वत्र व्यापक हैं। यह बात अपने पुत्र प्रहलाद के मुंह से सुनकर उसके पिता हिरण्य बडे क्रोधित हुए। प्रहलाद के उक्त कथन का इनकार करते हुए, क्रोधवश पास के एक खंभे को हाथ से प्रहार करते ही, तत्काल उस खंभे से, अपने भक्त प्रहलाद का वचन सत्य बनाकर, उसकी रक्षा करने, भगवान नृसिंह रूप में प्रकट हुए।

कई सुन्दर स्थानों से भरे संसार के सब लोग नृसिंह रूप को देखकर भयभीत हुए। इस प्रकार एक नरहरि का रूप लेकर क्रोध से उबलनेवाले असुर हिरण्य के शरीर को, जिन्होंने अपने तीक्ष्ण नखों से फाड डाला, उस पुनीत भगवान का स्थान चिंगवेळ्कुंड्रम् (अहोबिलम्) है। क्रोध के कारण लाल आंखवाले सिंह, नीले नयन हाथी के दांत तोडकर, भक्ति के साथ उसे लाकर भगवान के (नृसिंह) चरणारविन्द में समर्पित करते हैं और प्रणति करते हैं। यह नृसिंह भगवान का पवित्र पर्वत है। (सिंह मांस लाकर मंदिर के परिसर को गन्दा करना नहीं चाहते।

इसलिए सिंह अपने स्थान से ही मांस को भगवान को निवेदित कर, (यहां यह ध्यान देने की बात है कि जो चीज स्वयं खाते हैं, उसी को पहले भगवान को भी निवेदन करते हैं) बहुमूल्य हाथी दांत को लाकर भक्तिपूर्वक समर्पित करते हैं। एक भयंकर जानवर को भी भगवान को निवेदन करने, और समर्पित करने की इच्छा होना, क्षेत्र की महिमा के कारण है। यह ऐसा दिव्य क्षेत्र है, जहां हिंसक प्राणी भी भगवान की भक्ति करते हैं। जैसे नृसिंह भगवान में उग्रता एवं वात्सल्य है, उसी प्रकार यहां के सिहों में क्रोध एवं भक्ति है।

हे मन !

प्रणति करते, उत्तम सुन्दर सिंह का पर्वत अहोबिलम् पहुँचकर वहां के नृसिंह भगवान के दर्शन करें।

नल्लै, नॆञ्जे ! नाम् तॊऴुदुम्; नम्मुडै नम् पॆरुमान्,
अऴिमादर् पुल्ह निंड्र आयिरन् तोळन्, इडम् –
नॆल्लि मल्हि, कल् उडैप्प, पुल् इलै आर्त्तु, अतर्वाय्
चिऴि चिल् ऍन्डु ऑल् अराद चिंगवेळ् कुंड्रमे । (2)

भक्त प्रह्लाद की स्तुति एवं देवगण और विष्णु भक्तों की सेवा से प्रसन्न दया सागर नृसिंह भगवान को देखकर महालक्ष्मी ने अपने मनोरथ की पूर्ति होने से बहुत संतुष्ट और हर्षित होकर, भगवान का आलिंगन किया । भगवान उसी रूप में लक्ष्मी नृसिंह के रूप में अहोबिलम् में नित्यवास करते हैं । वहां के भगवान के प्रति आळ्वार तल्लीन होकर भक्ति से आप्लावित अपने मन से कहते हैं ।

हे मन ! तुम उत्तम गुणवाले हो । हमारा अपना भगवान चिंगवेळ्कुंड्रम् में विराजमान होकर हमें अत्याश्चर्य पूर्ण विशेष दर्शन देते हैं । उस पवित्र पर्वत की प्रणति करें । (''मन'' संबोधन कर हमें भी आळ्वार चिंगवेळ्कुंड्रम् जाकर भगवान के दर्शन का उपदेश देते हैं, वे हमारे सब के स्वामी हैं । पूर्वजों की रसोक्ति है - यहां स्वयं आश्रितवत्सल होकर, लक्ष्मी का आलिंगन करने, सहस्र भुजावाले भगवान नृसिंह रूप में - इस दिव्य क्षेत्र में विराजमान हैं । (पुरुष सूक्त में - सहस्र शीर्षा पुरुषः) वे हमारे ही अपने भगवान हैं । **''नम्मुडै नम्''** (तमिऴ् शब्द) का अर्थपूर्ण प्रयोग है । भक्तों के रक्षक हैं । पर्वत प्रदेश कैसा है? पर्वत प्रदेश में असंख्य धने आमले के पेड़ जिनके लंबे जड (मूल) पत्थर के अन्दर जाने से पत्थर विदीर्ण हुए हैं । इसके अलावा ताड के पत्रों के आपस में रगडने के कारण सदैव मरमर ध्वनि निकलती है । ऐसा शांत वातावरण है जहां के मार्ग में झींगुर की ''चिल्'' ध्वनि सुनाई देती है, जहां अपना नृसिंह भगवान विराजमान होकर हमें अनुगृह करते हैं । हे मन ! चिंगवेळ्कुंड्रम् पहुंचो एवं वहां विराजमान भगवान की प्रणति करो । पुरुषार्थ प्राप्त करो । चिंगवेळ्कुंड्रम् श्री नृसिंह भगवान की पहाडी है ।

आजकल अहोबिलम के नाम से प्रसिद्ध है । आन्ध्र प्रदेश में है । तिरुमलै-तिरुप्पति एवं अहोबिलम् को भी उत्तरी दिव्य क्षेत्र मानने का संप्रदाय है ।

नृसिंह क्षेत्रों में यह प्रधान है । नृसिंह की नौ मूर्तियां इस दिव्य देश में विराजमान हैं । तिरुमंगै आळ्वार ने इसके पहले कई दिव्य देशों के भगवान के

दर्शन कर मंगलाशासन किया है। इस दशक में अपनी यह भावना प्रकट करते हैं कि उनका मन चिंगवेळ्कुंड्रम् की ओर विशेष रूप से आकृष्ट है। इसके लिए अपने मन की प्रशंसा कर साधुवाद देते हैं।

## नव नृसिंह

ज्वालाहोबिलमालोल क्रोडा कारञ्ज भार्गवा: ।
योगानन्दश्छत्रवट: पावनो नव मूर्तय: ॥

आळ्वार के श्री पादों की जय हो ! जय हो !

## तिरुवेंकटम् (तिरुप्पति-तिरुमलै)

भक्तामृतं विश्वजनानु मोदनं
सर्वार्थदं श्री शठकोप वाङ्मयम् ।
सहस्र शाखोप निषत्समागमं,
नमाम्यहं द्राविड वेदसागरम् ॥

(श्रीमन् नाथमुनि)

(नम्माऴ्वार की श्रीसूक्तियाँ भक्तों के लिए अमृत हैं; सभी जनों को सतत आनन्द-विभोर करते हुए सभी पुरुषार्थ प्रदान करती हैं । इसमें सहस्र शाखाओं के सामवेद और उपनिषदों का समागम है । यह द्राविड वेद सागर है, जिसकी मैं वन्दना करता हूँ ।)

पूज्य बारह आऴ्वारों में (दिव्यसुरि) नम्माऴ्वार का प्रधान स्थान है । ये वैष्णव सिद्धांत के प्रथम आचार्य माने जाते हैं । आचार्यों का मानना है कि ये प्रपत्ति (शरणागति) परंपरा के प्रवर्तक रहे ।

भगवान के कल्याण गुणों की अनुभूतियाँ, भावावेश में, भगवान के संबंध में (हृदय में न समाते हुए) लोक कल्याणार्थ सुन्दर तमिऴ भाषा की सूक्तियों में अवशात् (आऴ्वारों के) मुँह से प्रकट हुई । उपरोक्त सूक्तियाँ चार प्रबंधों में संगृहीत हैं ।

इनमें से तिरुवाय्मॉऴि (सत्यवचन) सबसे प्रधान और महत्त्वपूर्ण माना जाता है । इसमें 100 दशकों के 10 शतक हैं ।

कुल 1102 **पाशुरंगल्** (दिव्य सूक्तियाँ) हैं । **"वाय्मॉऴि"** का **अर्थ "सत्यवचन"** है । **नम्माऴ्वार** ने 36 दिव्य क्षेत्रों के भगवान (अर्चामूर्तियाँ) का मंगलाशासन किया है;

उसमें से यह एक-दशक है, जिसमें आऴ्वार तिरुवेंकटम्-तिरुमलै (तिरुप्पति) में विराजित भगवान श्री वेंकटाचलपति (बालाजी) के दिव्य चरणों में शरणागति करते हैं ।

दिव्य प्रबंध का पाठ एवं अनुशीलन शांति प्रदायक है । इसका मूल संदेश है - भक्ति और प्रपत्ति से मुक्ति की प्राप्ति है ।

## तिरुवाय्मोऴि
## (श्री नम्माऴ्वार द्वारा अनुगृहीत)

तिरुवेंकडमुडैयान् - श्री वेंकटेश भगवान के चरणों में शरणागति ।

उलहम् उण्ड पॅरुवाया !
उलप्पिल् कीर्ति अम्माने ।
निलवुम् शुडर् शूऴ् ऑऴि मूर्ति !
नॅडियाय् ! अडियेन् आर् उयिरे !
तिलदम् उलहुक्कु आय् निंड्र
तिरुवेंकडत्तु ऍम् पॅरुमाने !
कुल तॉल् अडियेन् उन् पादम्
कूडुम् आरु कूराये । (1)

आचार्यों का सिद्धांत है कि तिरुवाय्मोऴि के इस दशक में "द्वय मंत्र" का प्रतिपादन और उसकी व्याख्या है । भगवान की प्राप्ति के लिए उन्हीं के पादारविन्दों में आप शरणागति करते हैं । वेंकटनिवासी भगवान दयासागर हैं । इन गीतियों में प्रधानतः भगवान की दया एवं ज्ञान, शक्ति, स्वामित्व, दिव्य मंगल विग्रह, भोग्यत्व, सौशील्य, सौलभ्य आदि गुण एवं भगवान के प्रति आऴ्वार की अनन्यता प्रकाशित है । इस दशक की यह विशेषता है कि इसकी प्रत्येक दिव्य सूक्ति में "चरण्" शब्द तथा उसके समानार्थक "पाद", "कऴल्" आदि शब्द एवं "अडियेन्" (दास) नियमेन आया करते हैं । यह तो द्वय मंत्र के "चरण्" शब्द का सूचक है । उन्होंने श्री वेंकटाचलपति भगवान को ही "द्वयमंत्र" का लक्ष्य बनाया ।

महाप्रलय के समय, संपूर्ण विश्व को अपने पेट में रखकर उसकी रक्षा करने के उद्देश्य से उसे निगलनेवाले हे विशाल मुँहवाले भगवान ! अनन्त शुभ कीर्तिवाले ! सर्व स्वामिन् ! नित्य तेजोमय एवं शुद्ध सत्वमय और सर्वव्याप्त, लावण्य युक्त, दिव्य मंगल विग्रहवाले ! हे मान्य महापुरुष ! मुझ दास के प्राण भूत ! एवं अखण्ड आत्मा ! विश्व के लिए तिलक रूप से प्रकाशित तिरुमलै में विराजमान हे हमारे नाथ ! हे वैकुण्ठनाथ ! आप से मेरी विनीत प्रार्थना है कि मुझ दास को इसका उपाय बताकर अनुग्रह करें जिससे प्राचीन परंपरागत दास-कुल का दास (मैं) आपका पादारविन्द प्राप्त करूँ ।

उपरोक्त प्रकार इस दशक की दस सूक्तियों में भगवान के शुभ मंगल गुणों का वर्णन एवं (ग्यारहवीं सूक्ति में) सांग सविधि शरणागति की जाती है।

यह शरणागति आळ्वार के भक्तजन एवं सभी आश्रितों की ओर से भी है।

कुरु आय्, नीरु आय्, निलन् आहि,
काडु वल् असुरर् कुलम् एल्लाम्
शीरा एरियुम् तिरु नेमि
वलवा ! देय्वक् - कोमाने !
शेरु आर् शुनैत् तामरै चन्दी
मलरुम् तिरुवेंकडत्ताने !
आरा अन्बिल् अडियेन् उन्
अडिशेर् वण्णम् अरुळाये। (2)

हे देवताओं के नाथ ! देवताओं से और देवतांशवाले आपके भक्तों से आपका बडा प्रेम है और उनको हानि पहुँचानेवाले अतिक्रूर, समस्त असुर कुल को चकनाचूर करके भस्मकर, पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। सर्प की तरह अति कृद्ध (होकर) जाज्वल्यमान, ज्वालायुक्त सुदर्शनचक्र से विभूषित दक्षिण हस्तवाले ! नित्यसूरि नाथ ! मेरे वल्लभ ! पानी एवं कीचड युक्त गिरि स्थलों के सरोवरों में लाल आग के समान पुष्पित कमल पुष्पों से, पानी से निकले विद्युतशक्ति जैसी आग के समान, भरे समृद्ध स्थान तिरुमलै के स्वामी ! आपके प्रति अतृप्त प्रेम का प्यासा, दास के प्रतिबन्धों को निवर्तन कर, ऐसा अनुग्रह कीजिए कि अपने पूर्वजन्म के कर्मों से छुटकारा पाकर आपके चरणों में पहुँच जाऊँ। इसके लिए मेरा उपाय प्रपत्ति ही है।

वण्णम् मरुळ् कॉळ् अणि मेह-
वण्णा ! माय अम्माने !
एण्णम् पुहुन्दु तित्तिक्कुम्
अमुदे ! इमैयोर् अदिपतिए !
तॅळ् नल् अरुवि मणि पॉन् मुत्तु
अलैक्कुम् तिरुवेंकडत्ताने !
अण्णले ! उन् अडि शेर,
अडियेर्क्कु आआ ! एन्नाए। (3)

स्वाभाविक दया से निरतिशय ! रमणीय नीलमेघ सदृश आश्चर्य विशिष्ट दिव्यरूप वाले ! व्यामोहजनक एवं आश्चर्यगुण विभूषित मेरे स्वामी ! मेरे चिन्तन में प्रविष्ट होकर मीठा लगनेवाले और मधुर रससदृश अति-भोग्य ! (अमृत तो खाते वक्त ही मीठा लगता है, लेकिन मन में आपका स्मरण आते ही मिठास का अनुभव होता है ।) स्मरण आते ही मीठा लगना एक माया है ।। इसलिए विलक्षण नित्यसूरियों के नाथ !

विविध मणि, कनक एवं मोती आदि बहानेवाले निर्मल, रमणीय एवं पवित्र पहाडी झरनों से परिवृत तिरुवेंकट में विराजमान ! हे मेरे प्राण ! मेरा पूरा विश्वास है कि आप मुझ दास पर दया कर अपने चरणों में स्थान देंगे । दास पर "आ हा" (हाय-हाय) कर ऐसा अनुग्रह कीजिए जिससे यह दास आप के चरणों में पहुँचकर ऐक्य हो जाए ।

आ आ! एन्नादु उलहत्तै
अलैक्कुम् अशुरर् वाळ्-नाळ् मेल्
ती वाय् वाळि मळै पॉळिन्द
शिलैया ! तिरु मा महळ् केळ्वा !
देवा ! सुरर्हल् मुनिक्कणङ्गल्
विरुम्बुम् तिरुवेंकडत्ताने !
पू आर् कळ्लहळ् अरुविनैयेन्
पॉरुन्दुमारु पुणराये । (4)

दूसरों को परेशान करनेवाले, दूसरों का दुःख देखकर सहानुभूति प्रकट न करनेवाले, लोकहिंसक और साधु जनों को परेशान करनेवाले असुरों की आयु समाप्त करने, उनपर अग्नि-मुख बाण चलानेवाले हे धनुर्धारी ! शार्ङ्ग धनुषधारी मेरे स्वामिन् ! हे लक्ष्मीनाथ ! (वक्षस्थल में लक्ष्मी के निवास के कारण) लोक को निरुपद्रव करनेवाले ! नित्यसिद्ध पुरुष ! नित्यसूरिगण एवं असंख्य देव एवं ऋषिगण जहाँ इकट्ठे होते हैं, उस श्री वेंकटाद्रि पर विराजमान भगवान ! ऐसा कोई उपाय परिकल्पित कर मेरा समस्त दुःख दूरकर अनुग्रह कीजिए कि दास मुझ पापी को सुर एवं मुनिगणों के द्वारा समर्पित, पुष्प से परिपूर्ण आपके श्री चरणों में स्थाई स्थान प्राप्त हो जाए ।

पुणरा निंड्रु मरम् एळ् अंड्रु
एय्द ऑरु विल् वलवा ! ओ !!

पुणर् एय् निंड्र मरम् इरण्डिन्
नडुवे पोन मुदल्वा ! वो !
तिणर् आर् मेहम् एनक् कळिरु
शेरुम् तिरुवेङ्कडत्ताने !
तिण्र् आर् शार्ङ्कत्तु, उन पादम्
शेरवदु अडियेन् एन्नाळे? (5)

एक दूसरे से परस्पर मिले हुए सात साल वृक्षों को उस दिन एक ही तीर से छेदन करने से सुग्रीव को रामचन्द्रजी पर विश्वास हुआ। अद्वितीय धनुर्धर ! परस्पर अति निकट स्थित जुडवे अर्जुन वृक्षों के मध्य से सकुशल होकर, निकलनेवाले संसार के रक्षक हे महापुरुष ! (कृष्णावतार का प्रसंग) इस प्रकार स्वयं रक्षित होकर, मेरे भय को दूर करनेवाले हे कारणभूत ! घने मेघ सदृश अत्यंत मांस, मद भरे झुंड के झुंड हाथियों से पूर्ण स्थान सर्वभूतशरण्य श्री वेंकटगिरि में विराजमान, हे मेरे भगवान ! समर्थ श्री शार्ङ्ग धनुष से विभूषित ! आपके पादारविन्दों को यह दास कब प्राप्त करेगा? हे वेंकटनिवासी ! यह बताकर अनुग्रह कीजिए कि दास को आपके चरणारविन्दों में कब स्थान देकर अपनाएँगे ?

एन्नाळे नाम् मण् अळन्द
इणैत् त्तामरैहळ् काण्पदर्कु एन्डु
एन्नाळुम् निंडु इमैयोरहळ्
एत्ति, इरैंजि, इनम् इनमाय्
मेयन् ना मनत्ताल् वळिपाडु
शय्युम् तिरुवेंकडत्ताने !
मेयन् नान् एय्दि, एन् नाळ् उन्
अडिक्कण् अडियेन् मेवुवदे ।। (6)

भगवान के सुन्दर पादों ने तीनों लोकों को नापा है। भूलोक के सभी लोगों को अनुग्रह करते हुए भूलोक में सर्वत्र व्याप्त है।

नित्यसूरि जन परमपद में लगातार भगवान के परत्व गुणों का नित्य अनुसन्धान करते रहते हैं। वे नित्य एवं मुक्त जन यह रहस्य जानकर कि परमपद की अपेक्षा वेंकटाद्रि में भगवान के सौलभ्य, दया आदि गुण अधिक मात्रा में

प्रकाशित होते हैं; यों इसकी आशा बढ़ाते हुए यहाँ सम्मिलित होते हैं कि लोकनापनेवाले श्रीपादों के हम कब दर्शन करेंगे?

वे इस प्रकार तिरुमलै में भगवान के पादारविन्दों के दर्शन करने की अभिलाषा से, लंबी प्रतीक्षा के बाद, निकट पहुँचकर, एवं स्तुति कर, तन-मन-वाक् से तीनों कालों में जिसका कैंकर्य करते हैं, ऐसे दिव्य क्षेत्र तिरुवेंकट के नाथ ! अनन्यार्ह शेषभूत दास इस मिथ्या शरीर को छोड़कर, दिव्य शरीर प्राप्त करके कब आपके पादारविन्दों का सेवन करेगा? नित्य सेवन में लगा रहेगा। अब आळ्वार को मानसानुभव मात्र प्राप्त है। वे साक्षात्कार करके उनके चरणों में, सर्वकाल, सर्वकरण से नित्य कैंकर्य करना चाहते हैं, अर्थात् भूलोक में ही रहकर परमपद के भोग की कामना करते हैं। यह कब प्राप्त होगा? यहाँ आचार्य लोग यह भाव बताते हैं कि विष्वकसेन की कृपा है कि वे पहले भूतल के लोगों को ही श्रीवेंकटेश भगवान के दर्शन करने का मौका देते हैं - बाद को बचे समय में नित्यसूरियों को, - इसलिए (देवों को) लंबी प्रतीक्षा करनी पडती है। (यहाँ के भगवान श्रीवेंकटनिवासी नित्यसूरियों के भी लक्ष्य हैं। यहाँ भूतलवासियों की भीड ही नहीं, नित्यसूरियों की भीड भी है।)

आळ्वार हमको भी यह उपदेश देते हैं कि इस भाग्य से हमें वंचित नहीं होना चाहिए। भूतल में ही परमपद का भोग प्राप्त है। यह तिरुमलै - तिरुवेंकट की महिमा है।

अडियेन् मेवि अमर्हिंड्र
अमुदे ! इमैयोर् अदिपतिये !
कोडिया अडु पुळ् उडैयाने !
कोलक् कनिवाय्प् परुमाने !
चॅडि आर् विनैहळ् तीर् मरुन्दे !
तिरुवेंकडत्तु एम् परुमाने !
नॉडि आर् पॉळुदुम् उन पादम्
काण नोलादु आर्ट्रेने ! (7)

हे नित्यसूरि नाथ ! शत्रु विनाशक गरुडध्वज वाले ! आश्रित विरोधी निरसन स्वभाववाले ! मेरे लिए तिरुमलै पहुँचकर, मेरे प्रतिबंधों को दूरकर अनुग्रह करनेवाले हे सुन्दर बिंबाधर ! मेरे स्वामी ! दास, मुझ में घने रूप से व्याप्त दुष्कर्म राशि को मिटानेवाले दिव्य औषध ! मेरे भोग्य अमृतस्वरूपिन् ! हे ! वेंकटाचलपते ! दास को

आपने-अपने अधीन कर लिया ! आपके चरणारविन्दों को पाने योग्य कोई व्रत या उपायानुष्ठान किए बिना, अनुष्ठित बहु साधनवाले की भाँति, आपके चरणारविन्दों के दर्शन का अनुभव किए बिना, एक क्षण मात्र भी आपका वियोग सहन नहीं कर सकता। दास में आत्मरक्षण की क्षमता नहीं है। आप ही मेरे लिए परम भोग्य हैं।

नोलादु आर्ट्रेन् उन पादम्
काण एन्डु, नुण् उणर्विन्
नील् आर् कण्डत्तु अम्मानुम्
निरै नान्-मुहनुम्, इन्दिरनुम्-
शेल् एय् कण्णार् पलर् शूळ्-
विरुम्बुम् तिरुवेंकडत्ताने !
मालाय् मयक्कि, अडियेन् पाल्
वन्दाय् पोले वाराये ॥ (8)

पिछली सूक्ति में आळ्वार ने बताया कि नित्यसूरिगण भी तिरुमलै पहुँचकर भगवान की नित्य सेवा करते हैं। इसमें इन्द्र, ब्रह्मा, रुद्रादि भी भगवान के कैंकर्य के लिए तिरुमलै पहुँचने का विवरण है । सर्वज्ञ, सूक्ष्मज्ञानवाले नीलकंठ, ज्ञानशक्ति से पूर्ण ब्रह्मा और देवेन्द्र भी उपाय शून्य रहकर उमा, सरस्वती, शची प्रभृति अपनी-अपनी मीनलोचनी स्त्रीयों के साथ इसकी याचना करते हुए अपने गन्तव्य स्थान तिरुमलै पहुँचते हैं कि हम आपके दर्शन के बिना आत्मरक्षण नहीं कर पाते !" ऐसे वेंकटाचल के स्वामी ! हम आपके दर्शन के अभिलाषी हैं । मेरे प्रभो ! आपके दर्शन के लिए पागल बनकर, व्यामोहित अनन्यार्ह दास के पास, आप जिस तरह गजेन्द्र का आर्तनाद सुनकर पधारे, उसी प्रकार तत्काल पधारकर अनुग्रह कीजिए।

वन्दाय् पोले वारादाय् !
वारादाय् पोल् वरुवाने !
चॆन्तामरैक् कण्, शॆङ्कनि वाय्
नाल् तोळ् अमुदे ! एनदु उयिरे !
चिन्तामणिहळ् पहर् अल्लैप्
पहल् चॆय् तिरुवेंकडत्ताने !
अन्दो ! अडियेन् उन पादम् !
अहलहिल्लेन् इरैयुमे !! (9)

प्रतिकूल लोगों को, सुलभ दीखते हुए, दुर्लभ बननेवाले; अनुकूल लोगों को, दुर्लभ दीखते हुए, सुलभ बननेवाले, मानसिक अनुभव देते हुए बाह्य इन्द्रियों के लिए अगोचर, तिरुमलै में विराजमान मेरे स्वामी ! अरुण कमल लोचनवाले ! हे चतुर्भुज अमृतस्वरूपिन् ! अत्यन्त भोग्य ! हे मेरे जीवित सर्वस्व ! इस तरह अपनी सुन्दरता से, दास को आपका धारक, पोषक और भोग्य बनाया। स्वप्रभा से रात्रि को भी दिवा सदृश बनानेवाले ! चिन्तामणि के जैसे वेंकटगिरि पर, उज्जवल मणि माणिक्यों से विभूषित तिरुवेंकटवासी ! निरुपाधिक मेरे नाथ ! शेषभूत दास, क्षणकाल के लिए भी आपके चरणारविन्दों का वियोग सहन करने में अशक्त है। मैं अपना सर्वस्व छोड चुका हूँ। आपका पादारविन्द ही मेरी गति है।

अहलहिल्लेन् इऱैयुम् एन्ड्रु
अलर्मेल् मंगै उऱै मारपा !
निहर् इल् पुहऴाय् ! उलहम् मूंड्रु
उडैयाय् ! एन्नै आळ्वाने !
निहर् इल् अमरर्, मुनिक्कणङ्गल्
विरुम्बुम् तिरुवेंकडत्ताने !
पुहल् ओन्ड्रु इल्ला अडियेन् उन्
अडिक्कीऴ् अमर्न्दु पुहुन्देने ! (10)

आऴ्वार अपना लक्ष्य प्रकट करते हुए, माताजी अलरमेलमंगै (लक्ष्मी) के पुरुषकार में तिरुवेंकटनाथ के चरणों में सांगोपांग शरणागति का अनुष्ठान करते हैं। इसमें द्वय मंत्र की व्याख्या है, अर्थानुसन्धान है। श्री लक्ष्मी देवी कहती है - मैं एक क्षण के लिए भी निरतिशय भोग्य, इस वक्षस्थल का वियोग सहन नहीं कर सकती। ऐसी लक्ष्मीजी से नित्य अलंकृत श्री वक्षवाले ! आप सर्वस्वामी हैं। भगवान के वक्षस्थल की भोग्यता के कारण लक्ष्मी भी एक क्षण के लिए भी उससे अलग नहीं रह सकती। ऐसे परम भोग्य वक्षस्थलवाले हैं।

समस्त कल्यान गुणों का प्रधान गुण दया से विभूषित ! तीनों लोकों के नाथ ! हे मेरे नाथ ! अत्यन्त हेय दास को अपने अंतरंग दास के रूप में अपनाकर मुझे अपने वश में करनेवाले ! भगवत् कैंकर्य में अनुपम देवगण एवं नित्यसूरिगण और गुणानुभव - निष्ठ ऋषि-मुनियों के द्वारा सेवित तिरुवेंकट के नाथ ! आपके चरणों में शरणागति करता हूँ।

अंधेरे कमरे के उज्जवल दीपक के समान, इस भू-मंडल में ही, भगवान के कारुण्य, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, दया आदि गुण विशिष्ट रूप से प्रकाशित हैं। इसलिए नित्यसूरिगण परमपद से भी बढ़कर तिरुवेंकट के पोषक हैं। तिरुवेंकट में विराजमान हे श्री वेंकटाद्रि के नाथ ! दास को आपके चरण के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। दुःख सागर में निमग्न दास की कोई दूसरी गति नहीं, इसलिए मेरे "रक्षणभार" आपको ही उठाना चाहिए। इस प्रकार प्रयोजनान्तर की इच्छा के बिना, केवल आपके चरण कमल को ही अपना एक मात्र लक्ष्य मानकर और चरणारविन्द की दिव्य रेखा की तरह, आपके चरणों में गाढा अनुरक्त मनवाला दास, आपके पादारविन्दों की सुदृढ शरणागति करता है। मेरा मन निश्चिन्त है कि अपने दास के रक्षण भार को आपने अपना लिया है। आपके श्री चरणों ने उठा लिया है। आऴ्वार का ही नहीं - आऴ्वार के आश्रित एवं सभी भक्तों का भी उठा लिया है।

इस प्रकार प्रकृत गाथा में तिरुवेंकट का बहुमान करते हुए शरणागति मंत्र - द्वय मंत्र (मंत्र रत्न) की व्याख्या है।

अडिक्कीऴ् अमर्न्दु पुहुन्दु, अडियीर् !
वाऴ्मिन् ए॒न्डू ए॒न्डू अरुळ् को॒डुक्कुम्
पडिक्केऴ् इल्लाप् प॒रुमानैप्
पळनक् कुरुडूरच् शठकोपन्
मुडिप्पान् चो॒न्न आयिरत्तुत्
तिरुवेंकडत्तुक्कु इवै पतुम्
पिडित्तार् पिडित्तार् वीर्टिरुन्दु
प॒रिय वानुळ् निलावुवरे। 11

"शर्म-श्लोक" का तात्पर्य "तिरुमलैवासी श्री वेंकटेश भगवान के दाहिने हाथ की मुद्रा से स्पष्ट होता है। अर्थात् तिरुवेंकट निवासी भगवान के दाहिने हस्त की मुद्रा अपने पादारविन्द की ओर है। यह भाव है, भगवान अपने भक्तों को सूचना देते हैं कि मेरे चरण की शरण में आओ- आत्मोद्धार पाओ ! नित्य कैंकर्य करते हुए सभी कल्याण पाओ ! भक्तों के अनुग्रह करने में इनके सदृश कोई दूसरा नहीं। वे लौकिक और पारलौकिक दोनों फल देते हैं। इस तरह अपने आश्रित सभी जनों पर कृपा करनेवाले और आश्रित वात्सल्य में सदृश-रहित भगवान श्री वेंकटनाथ को लक्ष्यकर, जल समृद्ध कुरुकापुरी के श्री

शठकोप के द्वारा, संसार बंधन छुड़ाने के लिए प्रणीत सहस्रगीति के अन्तर्गत श्री वेंकट भगवान को समर्पित इस दशक का पाठ करनेवाले तथा उनके आश्रितजन, शिष्य आदि भी परमपद (श्रीवैकुंठ) में भगवान के कैंकर्य साम्राज्य में अभिषिक्त हो, ब्रह्मानन्द पाएँगे । इस संसार में पुनरावृत्ति के बिना सर्वकाल, सर्वशेषवृत्ति करते हुए नित्य कैंकर्य में लगे रहेंगे ।

प्रकृत दशक में आऴ्वार ने श्री वेंकटेश भगवान के चरणों में शरणागति की है । जो इस दशक का पाठ करेगा, उसे भी शरणागति का फल, अर्थात् मोक्ष प्राप्त होगा ।''

आऴ्वार के श्री पादों की जय हो ।

---

## स्वामी देशिकन

### (प्रबन्ध सारम - 17)

वैयहमण् पायूहै, भूतम् पेयाऴ्वार्
मऴिशैयर् कोन् महिऴ् मारन् मधुरकविहऴ्
पाय्यिल् पुहऴ्क् कोऴियर् कोन् विट्टुचित्तन्
पूङ्कोदै ताण्डरडिप्पोडि पाणाऴ्वार्
ऐयनरुट्कलियनेतिराशर् तम्मोडु
आरिरुवरोरारुवरवर् ताऩ्र्वयूद
तुय्य तमिऴिरुपत्तु नानकिर्पाट्टिन्
ताहै नालायिरमुमडियोङ्गऴ् वाऴ्वे !

(संसार में प्रचलित, पायूहै आऴ्वार, भूतत्ताऴ्वार, पेयाऴ्वार, तिरुमऴिशै के निवासियों के नायक तिरुमऴिशै आऴ्वार, वकुल पुष्प माला से भूषित मारन (नम्माऴ्वार) मधुर कवि आऴ्वार, कोऴिक्कोडु के कुलशेखर आऴ्वार, विष्णु चित्त (पेरियाऴ्वार), सुन्दर आण्डाऴ् ताण्डरडिप्पोडि आऴ्वार, तिरुप्पाणाऴ्वार, हमारे स्वामी तिरुमंगै आऴ्वार, श्री भाष्याकारर् (आचार्य श्री रामानुज) के मुख्य शिष्य तिरुवरंगत्तु अमुदनार को मिलाकर तेरहों (13) द्वारा पवित्र तमिऴ् में अनुगृहीत कुल चौबीस (24) प्रबन्धों की 4,000 सूक्तियाँ हम दासों के उज्जीवन के साधन हैं ।)

## आळ्वारों के द्वारा मंगलाशासित उत्तर के ग्यारह (11) दिव्य क्षेत्रों का विवरण. भगवान और माताजी के नाम सहित

| क्रम संख्या | आळ्वारों के द्वारा मंगलाशासित दिव्य क्षेत्रों का नाम | ज़िला | राज्य | आळ्वारों का मंगक्तियांशासन | | भगवान और माताजी का नाम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | आळ्वार का नाम | कुल | |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 |
| 1. | तिरुक्कण्डङ् कडिनगर (श्रीखंड क्षेत्र) (देव प्रयाग) | उत्तराखंड | उत्तर प्रदेश | 8 | 11 | नीलमेहप् परुमाळ - (पुरुषोत्तमन्) पुण्डरीक वल्लि |
| 2. | तिरुप्पिरिदि (जोषीमठ - नन्दप्रयाग) (प्राचीन मंदिर अब नहीं दीखता) | उत्तराखंड | उत्तर प्रदेश | 12 | 10 | परम्पुरुषन् - परिमळ वल्लि |
| 3 | तिरुबदरि (तिरुबदरि आश्रमम्) | उत्तरखंड | उत्तर प्रदेश | 8,12 | 22 | बदरि नारायणन् अरविन्द वल्लि |
| 4. | तिरुचालक् किरामम् (शालग्राम क्षेत्र) | | नेपाल | 8,12 | 12 | श्रीमूर्ति - श्रीदेवी |
| 5. | तिरुनैमिशारण्यम् (निम्सार) आरण्य को ही भगवान मानते हैं। (अब मंदिर आदि नहीं दीखता) | | उत्तर प्रदेश | 12 | 10 | देवराजन श्री हरि लक्ष्मी |
| 6. | तिरु अयोद्धि (अयोध्या) आजकल मंदिर ''हनुमान टेकरी'' कहा जाता है। | फ़ैज़ाबाद | उत्तर प्रदेश | 5,7,8,10,12 | 13 | (चक्रवर्ति तिरुमहन्) श्रीराम पिरान् सीता देवी |
| 7. | उत्तर मथुरा (तिरुवडमदुरै) बृन्दावन, गोवर्धन भी सम्मिलित | मथुरा | उत्तर प्रदेश | 5,8,9,10,12 | 50 | गोवर्धनेशन सत्यभामा |
| 8. | तिरुआयर पाडि - (गोकुलम्) (आयत्पाडि) | मथुरा | उत्तर प्रदेश | 8,9,12 | 22 | नवमोहन कृष्णन् - रुक्मिणी देवी सत्यभामा |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 9 | तिरु द्वारापति (द्वारका) | | गुजरात | 4,5,8,9,12 | 13 | कल्याण नारायणन्, कल्याण नाच्चियार |
| 10 | तिरु चिंगवेळ् कुन्द्रम् (अहोबिलम्) | कडप्पा | आन्ध्र प्रदेश | 12 | 10 | नरसिंहन (नौ नरसिंहन) लक्ष्मी नाच्चियार. |
| 11 | तिरुवेंकटम् (तिरुपति) तिरुमलै | चित्तूर | आन्ध्र प्रदेश | 1,2,3,4,5,7,8, 9,11,12 | 202 | तिरुवेंकडमुडैयान, श्रीनिवासन (बालाजी, अलर्मेल् मंगैत्तायार) |

*आळ्वारों का नाम ।

1 पोयूहै आळ्वार
2 भूतत्ताळ्वार
3 पेयाळ्वार
4 तिरुमळिशै आळ्वार
5 नम्माळ्वार
6 मधुर कवि आळ्वार
7 कुल शेखर आळ्वार
8 पेरियाळ्वार
9 आण्डाळ
10 तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार
11 तिरुप्पाणाळ्वार
12 तिरुमंगै आळ्वार

नोट : *आळ्वारों के नाम के पहले इसमें (आळ्वारों की सूची) जो क्रम संख्या उल्लिखित है, वही संख्या कालम सं.5 में आळ्वारों के नाम के बदले दी गयी है।

## केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा विभाग)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,

नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित-

मानक हिन्दी वर्तनी - के आधार पर

तमिऴ् शब्दों के अक्षरों को देव नागरी लिपि में लिप्यन्तरण निम्न प्रकार अंकित है। कृपया उच्चारण एवं वर्तनी में इस पर ध्यान दें।

**तमिऴ् - हिन्दी लिप्यंतरण (वर्तनी)**

तमिऴ् वर्णमाला में ''ए'' और ''ओ'' के ह्रस्व होते हैं जो नागरी लिपि में नहीं है। ह्रस्व मात्राएं निम्न प्रकार अंकित हैं।

| दीर्घ | | ह्रस्व | | उदाहरण | |
|---|---|---|---|---|---|
| ஏ | ஓ | எ | ஒ | | |
| ए | ओ | ऎ | ऒ | எங்கள் | ऎङ्गल् |
| | | कॆ | कॊ | எங்கே | ऎङ्गे |
| | | पॆ | पॊ | எடு | ऎडु |
| | | रॆ | रॊ | ஒரு | ऒरु |
| | | | | ஒருமைப்பாடு | ऒरुमैप्पाडु |
| | | | | ஒளி | ऒळि |
| | | | | ஒருவன் | ऒरुवन् |

| ல | ள | ழ | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ल | ळ | ऴ | | | |

तमिऴ् में ''ळ'' का उच्चारण ''ल'' से भिन्न है (''ळ'' नागरी लिपि में होने पर भी अधिक प्रचलित नहीं)।

जैसे Little लिट्टिल् (ल)

कल

Simple सिम्पिळ (ळ) मॆळ्ळ, कळवु, आण्डाळ

ழ ऴ - उदा - तमिऴ, आऴ्वार, पऴम्

ழ 'ळ' के नीचे एक चिह्न - बिन्दु (.) लगाया जाता है। साधारणतः अंग्रेजी में ZH को मिलाकर जो उच्चारण होता है, उसीके (लगभग) समान है।

तमिऴ़ वर्णमाला में दो "र" है।

सामान्य एवं कठोर (बड़ा ऱ (ற) कहते हैं)

ர र, ற ऱ

(ற) ऱ - नीचे एक चिह्न-बिन्दु (.) या (-) लगाया जाता है। (ற) ऱ का उच्चारण अंग्रेजी के Correct शब्द में rr के उच्चारण के (लगभग) बराबर है।

(उदा) - பறை पऱै, மறதி मऱदि, மறுப்பு मऱुप्पु

*ऱ के साथ संयुक्त अक्षर होने पर उसका उच्चारण ट्र जैसे हो जाता है।

(उदा) துயின்ற तुयिन्ड्र, சாற்றி चाट्रि
போற்றி पोट्रि, கன்று कन्ड्रु

तीन अक्षर होते हैं। ண ण (ट वर्ग), ந न (त वर्ग), ன ऩ

ன अक्षर के लिए 'न' के नीचे एक चिह्न बिन्दु (.) या एक (-) लगाया जाता है।

(उदाः) சினம் शिऩम्
முனை मुऩै

* केन्द्रीय निदेशालय के मानक हिन्दी वर्तनी में इसका उल्लेख नहीं है।

**लेखक का परिचय :**

**पा. वेंकटाचारी**
(श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन का एक समर्पित शिष्य।)

64, गाँधी रोड़, चूलैमेडु,
मद्रास - 600 094.

1941 से हिन्दी प्रचार, शिक्षण एवं साहित्य सेवा। (लगभग 53 वर्ष) प्रधानाचार्य, हिन्दी प्रचारक (प्रशिक्षण) विद्यालय, मद्रास। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास और उसकी प्रांतीय शाखाओं में (तमिऴ्नाडु, केरल एवं कर्नाटक) सचिव के पद पर। द.भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास में वित्त सचिव, संयुक्त सचिव एवं (कार्यकारी) प्रधान सचिव के पद पर 1942 से 1981 तक सभा की पूर्ण कालीन सेवा।

संपादक एवं प्रकाशक : 1. हिन्दी पत्रिका, तिरुचि; 2. केरल भारती, एरणाकुलम, 3. हिन्दी प्रचार समाचार, मद्रास 4. प्रबन्ध निदेशक, हिन्दी प्रचार प्रेस, एरणाकुलम।

राज्य स्तर पर (तमिऴ्नाडु, केरल, कर्नाटक) कई हिन्दी प्रचार सम्मेलन, अध्ययन-गोष्ठियों का (प्रचार, साहित्य एवं शिक्षण संबन्धी) एवं राजभाषा अभियान का (केरल में कन्याकुमारी से मंगलूर तक - संपूर्ण केरल क्षेत्र) संगठन एवं संचालन।

तमिऴ्नाडु (तिरुचि) एवं केरल (एरणाकुलम) में माध्यमिक स्कूलों का (सेंट्रल बोर्ड पाठ्य-क्रम) संगठन एवं संचालन।

तमिऴ्नाडु में पूज्य विनोबाजी की यात्राओं के वक्त (भू-दान आदि) उनके साथ यात्रा और उनके हिन्दी भाषणों का तमिऴ् अनुवाद।

सभा की पूर्ण कालीन सेवा से अवकाश-ग्रहण के बाद सृजनात्मक लेखन, (हिन्दी) साहित्य निर्माण - हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन आदि।

अनुवाद सेवाएँ : विशेष रूप से तकनिकी और प्रशासन संबन्धी विषय एवं तमिऴ् साहित्य - अंग्रेज़ी से हिन्दी एवं विलोमतः और तमिऴ् से हिन्दी।

सेवा भारती की स्थापना - उसके द्वारा पुस्तकों का प्रकाशन - प्रधानतः आध्यात्मिकता, भक्ति, भारतीय संस्कृति एवं भावात्मक राष्ट्रीय एकता संबन्धी। सरकारी क्षेत्र के संगठनों में (उपक्रम आदि) राजभाषा हिन्दी के प्रयोग, कार्यान्वयन एवं शिक्षण में सहयोग एवं सेवाएँ।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित "त्रिभाषा कोष" (तमिऴ्-हिन्दी-अंग्रेज़ी) निर्माण समिति का सदस्य।

''भारत के बारह आळ्वार'' (वैभव एवं दर्शन) (स्व लिखित) का प्रकाशन। इसके प्रकाशन के लिए तिरुमलै-तिरुपति देवस्थान से वित्तीय सहायता (लेखकों को देवस्थान की सहायता योजना) प्राप्त। डॉ. शंकर दयाल शर्मा द्वारा मई 1989 में (उस वक्त उप-राष्ट्रपति) नई दिल्ली में द.भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा आयोजित पुस्तक लोकार्पण समारोह में उक्त शीर्षक पुस्तक का लोकार्पण।

''भारत के बारह आळ्वार'' वैभव एवं दर्शन शीर्षक पुस्तक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा, हिन्दीतर भाषा भाषी लेखक पुरस्कार योजना के अंतर्गत, पुरस्कृत (1991-92) राष्ट्रपति भवन में आयोजित पुरस्कार समारोह में (मार्च 1993) पुरस्कृत एवं सम्मानित।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की रजत जयन्ती (1946) के शुभ अवसर पर तमिळ्नाडु में धन-संग्रह की विशेष सेवा के उपलक्ष्य में सभा द्वारा सम्मानित - (प्रमाण पत्र द्वारा)

आळ्वार पाशुरंगल् - 108 का (मूल - तमिळ्) एप्रैल 1994 में प्रकाशन - मद्रास में आयोजित पुस्तक लोकार्पण समारोह में लोकार्पित।

द.भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की प्रार्थना पर ''सरकारी पत्राचार के विविध रूप'' पर ''प्रयोजन मूलक हिन्दी'' शीर्षक पुस्तक के एक भाग का लेखन। सभा द्वारा प्रकाशित।

निम्नलिखित पुस्तकें भी (स्व लिखित एवं अनुवादित) प्रकाशित हैं,

**तिरुप्पावै (श्री व्रत प्रबन्ध)**

आण्डाळ - द्वारा अनुगृहीत। सुबोध हिन्दी व्याख्या एवं **आळ्वार दिव्य सूक्तियाँ - 108** (आळ्वार द्वारा मंगलाशासित उत्तर के दिव्य क्षेत्र (11) संबन्धी) हिन्दी भावानुवाद समेत (पूर्वाचार्यों की व्याख्या के आधार पर - नालायिर (चतुःसहस्र) दिव्य प्रबन्धम् से संकलन। (तिरुमलै-तिरुपति देवस्थान से वित्तीय सहायता प्राप्त)

**भारत के बारह आळ्वार (वैभव एवं दर्शन) का द्वितीय संस्करण श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन आश्रम, श्री रंगम एवं, मद्रास द्वारा प्रकाशित।**

समय-समय पर हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन। आकाशवाणी में भाषण आदि।

जुलाई 1995
मद्रास.

**आळ्वारों का आह्वान्**
**भारत के बारह आळ्वार**
**(वैभव एवं दर्शन)**
**( दूसरा संस्करण)**
**पुनरीक्षित एवं परिवर्धित**
**अब उपलब्ध है ।**

लेखकः **पा. वेंकटाचारी**

इस ग्रन्थ में आळ्वारों (दिव्य-सूक्तियां) के वैभव के साथ हरेक आळ्वार द्वारा अनुगृहीत दिव्य सूक्तियों का उद्धरण भी है । मूल तमिळ्; देवनागरी लिपि में संगृहणीय, शांतिप्रदायक !

**अपनी प्रति मंगाने का पता**

**श्रीरंगम श्रीमदाण्डवन आश्रम्**
(पादुका चैरिटीस)
21, श्री देशिकाचारी रोड़,
मइलापूर, मद्रास 600 004
फोन : 499365